॥ श्रीहरिः ॥

गरुडपुराण-सारोद्धार

Garud Puran Sarodhdaar
Adhyay 10 - Page 132

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची



॥ श्रीहरिः ॥

गरुडपुराण-सारोद्धार

पहला अध्याय

भगवान् विष्णु तथा गरुडके संवादमें गरुडपुराण-सारोद्धारका उपक्रम, पापी मनुष्योंकी इस लोक तथा परलोकमें होनेवाली दुर्गतिका वर्णन, दशगात्रके पिण्डदानसे यातनादेहका निर्माण

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः। क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति॥ १॥
नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः। सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत॥ २॥

धर्म ही जिसका सुदृढ़ मूल है, वेद जिसका स्कन्ध (तना) है, पुराणरूपी शाखाओंसे जो समृद्ध है, यज्ञ जिसका पुष्प है और मोक्ष जिसका फल है, ऐसे भगवान् मधुसूदनरूपी पादप*-कल्पवृक्षकी जय हो॥ १॥ देव-क्षेत्र नैमिषारण्यमें स्वर्गलोककी प्राप्तिकी कामनासे शौनकादि ऋषियोंने (एक बार) सहस्रवर्षमें पूर्ण होनेवाला यज्ञ प्रारम्भ किया॥ २॥

---

* जैसे वृक्ष सबको आश्रय देता है, वैसे ही भगवान् भी अपने चरणारविन्दोंमें आश्रय देकर सबकी रक्षा करते हैं, इसीलिये भगवान् मधुसूदनको यहाँ पादप (पद्भ्यां चरणाभ्यां पाति रक्षतीति पादपः)—वृक्षकी उपमा दी गयी है।



महामुनि सूतजी एवं ऋषिगण



भगवान् श्रीविष्णु एवं पक्षिराज गरुड

[विवरण पृ० ४ पर]

एकदा मुनयः सर्वे प्रातर्हुतहुताग्नयः। सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात्॥ ३॥

एक समय प्रातःकालके हवनादि कृत्योंका सम्पादन करके उन सभी मुनियोंने सत्कार किये गये आसनासीन सूतजी महाराजसे आदरपूर्वक यह पूछा—॥ ३॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सम्यग्देवमार्गः सुखप्रदः। इदानीं श्रोतुमिच्छामो यममार्गं भयप्रदम्॥ ४॥
तथा संसारदुःखानि तत्क्लेशक्षयसाधनम्। ऐहिकामुष्मिकान् क्लेशान् यथावद्वक्तुमर्हसि॥ ५॥

ऋषियोंने कहा—(हे सूतजी महाराज!) आपने सुख देनेवाले देवमार्गका सम्यक् निरूपण किया है। इस समय हम लोग भयावह यममार्गके विषयमें सुनना चाहते हैं। आप सांसारिक दुःखोंको और उस क्लेशके विनाशक साधनको तथा इस लोक और परलोकके क्लेशोंको यथावत् वर्णन करनेमें समर्थ हैं [अतः उसका वर्णन कीजिये]॥ ४-५॥

सूत उवाच

शृणुध्वं भो विवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम्। सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां दुःखदायकम्॥ ६॥
यथा श्रीविष्णुना प्रोक्तं वैनतेयाय पृच्छते। तथैव कथयिष्यामि संदेहच्छेदनाय वः॥ ७॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप लोग सुनें। मैं अत्यन्त दुर्गम यममार्गके विषयमें कहता हूँ, जो पुण्यात्माजनोंके लिये सुखद और पापियोंके लिये दुःखद है। गरुडजीके पूछनेपर भगवान् विष्णुने (उनसे) जैसा कुछ कहा था, मैं उसी प्रकार आप लोगोंके संदेहकी निवृत्तिके लिये कहूँगा॥ ६-७॥

कदाचित् सुखमासीनं वैकुण्ठं श्रीहरिं गुरुम्। विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ विनतासुतः॥ ८॥

किसी समय वैकुण्ठमें सुखपूर्वक विराजमान परम गुरु श्रीहरिसे विनतापुत्र गरुडजीने विनयसे झुककर पूछा— ॥ ८॥

गरुड उवाच

भक्तिमार्गो बहुविधः कथितो भवता मम। तथा च कथिता देव भक्तानां गतिरुत्तमा॥ ९॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि यममार्गं भयंकरम्। त्वद्भक्तिविमुखानां च तत्रैव गमनं श्रुतम्॥ १०॥
सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी। तथापि नरकं यान्ति धिग् धिगस्तु नराधमान्॥ ११॥
अतो मे भगवन् ब्रूहि पापिनां या गतिर्भवेत्। यममार्गस्य दुःखानि यथा ते प्राप्नुवन्ति हि॥ १२॥

गरुडजीने कहा—हे देव! आपने भक्तिमार्गका अनेक प्रकारसे मेरे समक्ष वर्णन किया है और भक्तोंको प्राप्त होनेवाली उत्तम गतिके विषयमें भी कहा है। अब हम भयंकर यममार्गके विषयमें सुनना चाहते हैं। हमने सुना है कि आपकी भक्तिसे विमुख प्राणी वहीं (नरकमें) जाते हैं॥ ९-१०॥ भगवान्‌का नाम सुगमतापूर्वक लिया जा सकता है, जिह्वा प्राणीके अपने वशमें है तो भी लोग नरकको जाते हैं, ऐसे अधम मनुष्योंको बार-बार धिक्कार है। इसलिये हे भगवन्! पापियोंको जो गति प्राप्त होती है तथा यममार्गमें जैसे वे अनेक प्रकारके दुःख प्राप्त करते हैं, उसे आप मुझसे कहें॥ ११-१२॥

श्रीभगवानुवाच

वक्ष्येऽहं शृणु पक्षीन्द्र यममार्गं च येन ये। नरके पापिनो यान्ति शृण्वतामपि भीतिदम्॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे पक्षीन्द्र! सुनो, मैं उस यममार्गके विषयमें कहता हूँ, जिस मार्गसे पापीजन नरककी यात्रा करते हैं और जो सुननेवालोंके लिये भी भयावह है॥ १३॥

ये हि पापरतास्तार्क्ष्य दयाधर्मविवर्जिताः। दुष्टसङ्गाश्च सच्छास्त्रसत्संगतिपराङ्मुखाः॥ १४॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः। आसुरं भावमापन्ना दैवीसम्पद्विवर्जिताः॥ १५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः। प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥ १६॥
ये नरा ज्ञानशीलाश्च ते यान्ति परमां गतिम्। पापशीला नरा यान्ति दुःखेन यमयातनाम्॥ १७॥
पापिनामैहिकं दुःखं यथा भवति तच्छृणु। ततस्ते मरणं प्राप्य यथा गच्छन्ति यातनाम्॥ १८॥

हे तार्क्ष्य! जो प्राणी सदा पापपरायण हैं, दया और धर्मसे रहित हैं, जो दुष्ट लोगोंकी संगतिमें रहते हैं, सत्-शास्त्र और सत्संगतिसे विमुख हैं; जो अपनेको स्वयंप्रतिष्ठित मानते हैं, अहंकारी हैं तथा धन और मानके मदसे चूर हैं, आसुरी शक्तिको प्राप्त हैं तथा दैवी सम्पत्तिसे रहित हैं; जिनका चित्त अनेक विषयोंमें आसक्त होनेसे भ्रान्त है, जो मोहके जालमें फँसे हैं और कामनाओंके भोगमें ही लगे हैं, ऐसे व्यक्ति अपवित्र नरकमें गिरते हैं। जो लोग ज्ञानशील हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। पापी मनुष्य दुःखपूर्वक यम-यातना प्राप्त करते हैं॥ १४—१७॥

पापियोंको इस लोकमें जैसे दुःखकी प्राप्ति होती है और मृत्युके पश्चात् वे जैसी यमयातनाको प्राप्त होते हैं, उसे सुनो॥ १८॥

सुकृतं दुष्कृतं वाऽपि भुक्त्वा पूर्वं यथार्जितम्। कर्मयोगात् तदा तस्य कश्चिद् व्याधिः प्रजायते॥ १९॥

आधिव्याधिसमायुक्तं जीविताशासमुत्सुकम्। कालो बलीयानहिवदज्ञातः प्रतिपद्यते॥ २०॥
तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयम्भृतैः। जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे॥ २१॥
आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन्। आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः॥ २२॥
वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः। कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते॥ २३॥

यथोपार्जित पुण्य और पापके फलोंको पूर्वमें भोगकर कर्मके सम्बन्धसे उसे कोई शारीरिक रोग हो जाता है॥ १९॥ आधि (मानसिक रोग) और व्याधि (शारीरिक रोग)-से युक्त तथा जीवनधारण करनेकी आशासे उत्कण्ठित उस व्यक्तिकी जानकारीके बिना ही सर्पकी भाँति बलवान् काल उसके समीप आ पहुँचता है॥ २०॥ उस मृत्युकी सम्प्राप्तिकी स्थितिमें भी उसे वैराग्य नहीं होता। उसने जिनका भरण-पोषण किया था, उन्हींके द्वारा उसका भरण-पोषण होता है, वृद्धावस्थाके कारण विकृत रूपवाला और मरणाभिमुख वह व्यक्ति घरमें अवमाननापूर्वक दी हुई वस्तुको कुत्तेकी भाँति खाता हुआ जीवन व्यतीत करता है। वह रोगी हो जाता है, उसे मन्दाग्नि हो जाती है और उसका आहार तथा उसकी सभी चेष्टाएँ कम हो जाती हैं॥ २१-२२॥ प्राणवायुके बाहर निकलते समय आँखें उलट जाती हैं, नाडियाँ कफसे रुक जाती हैं, उसे खाँसी और श्वास लेनेमें प्रयत्न करना पड़ता है तथा कण्ठसे घुर्-घुर्-से शब्द निकलने लगते हैं॥ २३॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः। वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशंगतः॥ २४॥
एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः। म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः॥ २५॥
तस्मिन्नन्तक्षणे तार्क्ष्य दैवी दृष्टिः प्रजायते। एकीभूतं जगत्सर्वं न किंचिद्वक्तुमीहते॥ २६॥
विकलेन्द्रियसंघाते चैतन्ये जडतां गते। प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर्निकटवर्तिभिः॥ २७॥
स्वस्थानाच्चलिते श्वासे कल्पाख्यो ह्यातुरक्षणः। शतवृश्चिकदंष्ट्रस्य या पीडा साऽनुभूयते॥ २८॥
फेनमुद्गिरते सोऽथ मुखं लालाकुलं भवेत्। अधोद्वारेण गच्छन्ति पापिनां प्राणवायवः॥ २९॥

चिन्तामग्न स्वजनोंसे घिरा हुआ तथा सोया हुआ वह (व्यक्ति) कालपाशके वशीभूत होनेके कारण बुलानेपर भी नहीं बोलता॥ २४॥ इस प्रकार कुटुम्बके भरण-पोषणमें ही निरन्तर लगा रहनेवाला, अजितेन्द्रिय व्यक्ति (अन्तमें) रोते-बिलखते बन्धु-बान्धवोंके बीच उत्कट वेदनासे संज्ञाशून्य होकर मर जाता है॥ २५॥ हे गरुड! उस अन्तिम क्षणमें प्राणीको व्यापक (दिव्य) दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे वह लोक-परलोकको एकत्र देखने लगता है। अतः चकित होकर वह कुछ भी कहना नहीं चाहता॥ २६॥ यमदूतोंके समीप आनेपर सभी इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं, चेतना जडीभूत हो जाती है और प्राण चलायमान हो जाते हैं॥ २७॥ आतुरकालमें प्राणवायुके अपने स्थानसे चल देनेपर एक क्षण भी एक कल्पके समान प्रतीत होता है और सौ बिच्छुओंके डंक मारनेसे जैसी पीडा होती है, वैसी पीडाका उस समय (उसे) अनुभव होने लगता है॥ २८॥ वह मरणासन्न व्यक्ति फेन उगलने लगता है और उसका मुख लारसे भर जाता है। पापीजनोंके प्राणवायु अधोद्वार (गुदामार्ग)-से निकलते हैं॥ २९॥

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ। पाशदण्डधरौ नग्नौ दन्तैः कटकटायितौ॥ ३०॥

ऊर्ध्वकेशौ काककृष्णौ वक्रतुण्डौ नखायुधौ। स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः सकृन्मूत्रं विमुञ्चति॥ ३१॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन् कलेवरात्। तदैव गृह्यते दूतैर्याम्यैः पश्यन् स्वकं गृहम्॥ ३२॥
यातनादेहमावृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात्। नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा॥ ३३॥
तस्यैवं नीयमानस्य दूताः संतर्जयन्ति च। प्रवदन्ति भयं तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः॥ ३४॥

उस समय दोनों हाथोंमें पाश और दण्ड धारण किये, नग्न, दाँतोंको कटकटाते हुए क्रोधपूर्ण नेत्रवाले यमके दो भयंकर दूत समीपमें आते हैं॥ ३०॥ उनके केश ऊपरकी ओर उठे होते हैं, वे कौएके समान काले होते हैं और टेढ़े मुखवाले होते हैं तथा उनके नख आयुधकी भाँति होते हैं। उन्हें देखकर भयभीत हृदयवाला वह मरणासन्न प्राणी मल-मूत्रका विसर्जन करने लगता है॥ ३१॥ अपने पाञ्चभौतिक शरीरसे हाय-हाय करते हुए निकलता हुआ तथा यमदूतोंके द्वारा पकड़ा हुआ वह अङ्गुष्ठमात्र प्रमाणका पुरुष अपने घरको देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा यातनादेहसे ढक करके गलेमें बलपूर्वक पाशोंसे बाँधकर सुदूर यममार्गपर यातनाके लिये उसी प्रकार ले जाया जाता है, जिस प्रकार राजपुरुष दण्डनीय अपराधीको ले जाते हैं॥ ३२-३३॥ इस प्रकार ले जाये जाते हुए उस जीवको यमके दूत तर्जना करके डराते हैं और नरकोंके तीव्र भयका पुनः-पुनः वर्णन करते हैं (सुनाते हैं)— ॥ ३४॥

शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् यास्यसि त्वं यमालयम्। कुम्भीपाकादिनरकांस्त्वां नयावोऽद्य मा चिरम्॥ ३५॥



भयंकर यमदूत



[विवरण पृ० २० पर]

यममार्गकी यातना

[यमदूत कहते हैं—] रे दुष्ट! शीघ्र चल, तुम यमलोक जाओगे। आज तुम्हें हम सब कुम्भीपाक आदि नरकोंमें शीघ्र ही ले जायँगे॥ ३५॥

एवं वाचस्तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा। उच्चैर्हाहेति विलपंस्ताड्यते यमकिङ्करैः॥ ३६॥
तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः। पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन्॥ ३७॥
क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तबालुके।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके॥ ३८॥
तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः। यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम्॥ ३९॥

इस प्रकार यमदूतोंकी वाणी तथा बन्धु-बान्धवोंका रुदन सुनता हुआ वह जीव जोरसे हाहाकार करके विलाप करता है और यमदूतोंके द्वारा प्रताडित किया जाता है॥ ३६॥ यमदूतोंकी तर्जनाओंसे उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है, वह काँपने लगता है, रास्तेमें उसे कुत्ते काटते हैं और अपने पापोंका स्मरण करता हुआ वह पीडित जीव (यममार्गमें) चलता है॥ ३७॥ भूख और प्याससे पीडित होकर सूर्य, दावाग्नि एवं वायु (-के झोंकों)-से संतप्त होते हुए और यमदूतोंके द्वारा पीठपर कोड़ेसे पीटे जाते हुए उस जीवको तपी हुई बालुकासे पूर्ण तथा विश्रामरहित और जलरहित मार्गपर असमर्थ होते हुए भी बड़ी कठिनाईसे चलना पड़ता है॥ ३८॥ थककर जगह-जगह गिरता और मूर्च्छित होता हुआ वह पुनः उठकर पापीजनोंकी भाँति अन्धकारपूर्ण यमलोकमें ले जाया जाता है॥ ३९॥

त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीयते तत्र मानवः। प्रदर्शयन्ति दूतास्ताः घोरा नरकयातनाः॥ ४०॥
मुहूर्तमात्रात् त्वरितं यमं वीक्ष्य भयं पुमान्। यमाज्ञया समं दूतैः पुनरायाति खेचरः॥ ४१॥
आगम्य वासनाबद्धो देहमिच्छन् यमानुगैः। धृतः पाशेन रुदति क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितः॥ ४२॥

दो अथवा तीन मुहूर्तमें वह मनुष्य वहाँ पहुँचाया जाता है और यमदूत उसे घोर नरकयातनाओंको दिखाते हैं॥ ४०॥ मुहूर्तमात्रमें यमको और नारकीय यातनाओंके भयको देखकर वह व्यक्ति यमकी आज्ञासे आकाशमार्गसे यमदूतोंके साथ पुनः इस लोक (मनुष्यलोक)-में चला आता है॥ ४१॥ मनुष्यलोकमें आकर अनादि वासनासे बद्ध वह जीव देहमें प्रविष्ट होनेकी इच्छा रखता है, किंतु यमदूतोंद्वारा पकड़कर पाशमें बाँध दिये जानेसे भूख और प्याससे अत्यन्त पीडित होकर रोता है॥ ४२॥

भुङ्क्ते पिण्डं सुतैर्दत्तं दानं चातुरकालिकम्। तथापि नास्तिकस्तार्क्ष्य तृप्तिं याति न पातकी॥ ४३॥
पापिनां नोपतिष्ठन्ति दानं श्राद्धं जलाञ्जलिः। अतः क्षुद्व्याकुला यान्ति पिण्डदानभुजोऽपि ते॥ ४४॥
भवन्ति प्रेतरूपास्ते पिण्डदानविवर्जिताः। आकल्पं निर्जनारण्ये भ्रमन्ति बहुदुःखिताः॥ ४५॥

हे तार्क्ष्य! वह पातकी प्राणी पुत्रोंसे दिये हुए पिण्ड तथा आतुरकालमें दिये हुए दानको प्राप्त करता है तो भी उस नास्तिकको तृप्ति नहीं होती॥ ४३॥ पुत्रादिके द्वारा पापियोंके उद्देश्यसे किये गये श्राद्ध, दान तथा जलाञ्जलि उनके पास ठहरती नहीं। अतः पिण्डदानका भोग करनेपर भी वे क्षुधासे व्याकुल होकर (यममार्गमें) जाते हैं॥ ४४॥ जिनका

पिण्डदान नहीं होता, वे प्रेतरूपमें होकर कल्पपर्यन्त निर्जन वनमें बहुत दुःखी होकर भ्रमण करते रहते हैं॥ ४५॥

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अभुक्त्वा यातनां जन्तुर्मानुष्यं लभते न हि॥ ४६॥

अतो दद्यात् सुतः पिण्डान् दिनेषु दशसु द्विज। प्रत्यहं ते विभाज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम॥ ४७॥

भागद्वयं तु देहस्य पुष्टिदं भूतपञ्चके। तृतीयं यमदूतानां चतुर्थं सोपजीवति॥ ४८॥

अहोरात्रैश्च नवभिः प्रेतः पिण्डमवाप्नुयात्। जन्तुर्निष्पन्नदेहश्च दशमे बलमाप्नुयात्॥ ४९॥

दग्धे देहे पुनर्देहः पिण्डैरुत्पद्यते खग। हस्तमात्रः पुमान् येन पथि भुंक्ते शुभाशुभम्॥ ५०॥

सैकड़ों करोड़ कल्प बीत जानेपर भी बिना भोग किये कर्मफलका नाश नहीं होता और जबतक वह पापी जीव यातनाओंका भोग नहीं कर लेता, तबतक उसे मनुष्य-शरीर भी प्राप्त नहीं होता॥ ४६॥ हे पक्षी! इसलिये पुत्रको चाहिये कि वह दस दिनोंतक प्रतिदिन पिण्डदान करे। हे पक्षिश्रेष्ठ! वे पिण्ड प्रतिदिन चार भागोंमें विभक्त होते हैं। उनमें दो भाग तो प्रेतके देहके पञ्चभूतोंकी पुष्टिके लिये होते हैं, तीसरा भाग यमदूतोंको प्राप्त होता है और चौथे भागसे उस जीवको आहार प्राप्त होता है॥ ४७-४८॥ नौ रात-दिनोंमें पिण्डको प्राप्त करके प्रेतका शरीर बन जाता है और दसवें दिन उसमें बलकी प्राप्ति होती है॥ ४९॥ हे खग! मृत व्यक्तिके देहके जल जानेपर पिण्डके द्वारा पुनः एक हाथ लम्बा शरीर प्राप्त होता है, जिसके द्वारा वह प्राणी (यमलोकके) रास्तेमें शुभ और अशुभ कर्मोंके फलको भोगता है॥ ५०॥

प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते। ग्रीवास्कन्धौ द्वितीयेन तृतीयाद्धृदयं भवेत्॥ ५१॥
चतुर्थेन भवेत् पृष्ठं पञ्चमान्नाभिरेव च। षष्ठे च सप्तमे चैव कटी गुह्यं प्रजायते॥ ५२॥
ऊरुश्चाष्टमे चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा। नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि क्षुधा तृषा॥ ५३॥
पिण्डजं देहमाश्रित्य क्षुधाविष्टस्तृषार्दितः। एकादशं द्वादशं च प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम्॥ ५४॥
त्रयोदशेऽहनि प्रेतो यन्त्रितो यमकिङ्करैः। तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः॥ ५५॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। यममार्गस्य विस्तारो विना वैतरणीं खग॥ ५६॥

पहले दिन जो पिण्ड दिया जाता है, उससे उसका सिर बनता है, दूसरे दिनके पिण्डसे ग्रीवा (गरदन) और स्कन्ध (कंधे) तथा तीसरे पिण्डसे हृदय बनता है॥ ५१॥ चौथे पिण्डसे पृष्ठभाग (पीठ), पाँचवेंसे नाभि, छठे तथा सातवें पिण्डसे क्रमशः कटि (कमर) और गुह्याङ्ग उत्पन्न होते हैं॥ ५२॥ आठवें पिण्डसे ऊरु (जाँघें) और नौवें पिण्डसे जानु (घुटने) तथा पैर बनते हैं। इस प्रकार नौ पिण्डोंसे देहको प्राप्त करके दसवें पिण्डसे उसकी क्षुधा और तृषा (भूख-प्यास)—ये दोनों जाग्रत् होती हैं॥ ५३॥ इस पिण्डज शरीरको प्राप्त करके भूख और प्याससे पीडित जीव ग्यारहवें तथा बारहवें—दो दिन भोजन करता है॥ ५४॥ तेरहवें दिन यमदूतोंके द्वारा बन्दरकी तरह बँधा हुआ वह प्राणी अकेला उस यममार्गमें जाता है॥ ५५॥ हे खग! (मार्गमें मिलनेवाली) वैतरणीको छोड़कर यमलोकके मार्गकी दूरीका प्रमाण छियासी हजार योजन है॥ ५६॥

अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम्। चत्वारिंशत् तथा सप्त दिवारात्रेण गच्छति ॥ ५७ ॥

अतीत्य क्रमशो मार्गे पुराणीमानि षोडश। प्रयाति धर्मराजस्य भवनं पातकी जनः ॥ ५८ ॥

सौम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमौ क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्।
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं शीताढ्यं बहुभीति धर्मभवनं याम्यं पुरं चाग्रतः ॥ ५९ ॥

याम्यपाशैर्धृतः पापी हाहेति प्ररुदन् पथि। स्वगृहं तु परित्यज्य पुरं याम्यमनुव्रजेत् ॥ ६० ॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे पापिनामैहिकामुष्मिकदुःखनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



वह प्रेत प्रतिदिन रात-दिनमें दो सौ सैंतालीस योजन चलता है ॥ ५७ ॥ मार्गमें आये हुए इन सोलह पुरों (नगरों)-को पार करके पातकी व्यक्ति धर्मराजके भवनमें जाता है। (१) सौम्यपुर, (२) सौरिपुर, (३) नगेन्द्रभवन, (४) गन्धर्वपुर, (५) शैलागम, (६) क्रौञ्चपुर, (७) क्रूरपुर, (८) विचित्रभवन, (९) बह्वापदपुर, (१०) दुःखदपुर, (११) नानाक्रन्दपुर, (१२) सुतप्तभवन, (१३) रौद्रपुर, (१४) पयोवर्षणपुर, (१५) शीताढ्यपुर तथा (१६) बहुभीतिपुरको पार करके इनके आगे यमपुरीमें धर्मराजका भवन स्थित है ॥ ५८-५९ ॥ यमराजके दूतोंके पाशोंसे बँधा हुआ पापी जीव रास्तेभर हाहाकार करता—रोता हुआ अपने घरको छोड़ करके यमपुरीको जाता है ॥ ६० ॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'पापियोंके इस लोक तथा परलोकके दुःखका निरूपण' नामका पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥



दूसरा अध्याय

यममार्गकी यातनाओंका वर्णन, वैतरणी नदीका स्वरूप, यममार्गके सोलह पुरोंमें क्रमशः गमन तथा वहाँ पुत्रादिकोंद्वारा दिये गये पिण्डदानको ग्रहण करना

गरुड उवाच

कीदृशो यमलोकस्य पन्था भवति दुःखदः। तत्र यान्ति यथा पापास्तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! यमलोकका मार्ग किस प्रकार दुःखदायी होता है। पापीलोग वहाँ जिस प्रकार जाते हैं, वह मुझे बताइये॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

यममार्गं महद्दुःखप्रदं ते कथयाम्यहम्। मम भक्तोऽपि तच्छ्रुत्वा त्वं भविष्यसि कम्पितः॥ २ ॥
वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः। यस्मिन् मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् समुद्धरेत्॥ ३ ॥
न जलं दृश्यते क्वापि तृषितोऽतीव यः पिबेत्। तप्यन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा खग॥ ४ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड! महान् दुःख प्रदान करनेवाले यममार्गके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ, मेरा भक्त होनेपर भी तुम उसे सुनकर काँप उठोगे॥ २ ॥ यममार्गमें वृक्षकी छाया नहीं है, जहाँ प्राणी विश्राम कर सके। उस यममार्गमें अन्न आदि भी नहीं हैं, जिनसे कि वह अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके॥ ३ ॥ वहाँ कहीं जल भी नहीं

दीखता, जिसे अत्यन्त तृषातुर वह (जीव) पी सके। वहाँ प्रलयकालकी भाँति बारहों सूर्य तपते रहते हैं॥ ४॥

तस्मिन् गच्छति पापात्मा शीतवातेन पीडितः। कण्टकैर्विध्यते क्वापि क्वचित्सर्पैर्महाविषैः॥ ५ ॥
सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिर्घोरैर्भक्ष्यते क्वापि पापकृत्। वृश्चिकैर्दंश्यते क्वापि क्वचिद्दह्यति वह्निना॥ ६ ॥
ततः क्वचिन्महाघोरमसिपत्रवनं महत्। योजनानां सहस्रे द्वे विस्तारायामतः स्मृतम्॥ ७ ॥

उस मार्गमें जाता हुआ पापी कभी बर्फीली हवासे पीडित होता है तथा कभी काँटे चुभते हैं और कभी महाविषधर सर्पोंके द्वारा डँसा जाता है॥ ५॥ (वह) पापी कहीं सिंहों, व्याघ्रों और भयंकर कुत्तोंद्वारा खाया जाता है, कहीं बिच्छुओंद्वारा डँसा जाता है और कहीं उसे आगसे जलाया जाता है॥ ६॥ तब कहीं अति भयंकर महान् असिपत्रवन नामक नरकमें वह पहुँचता है, जो दो हजार योजन विस्तारवाला कहा गया है॥ ७॥

काकोलूकवटगृध्रसरघादंशसंकुलम्। सदावाग्नि च तत्पत्रैश्छिन्नभिन्नः प्रजायते॥ ८ ॥
क्वचित् पतत्यन्धकूपे विकटात् पर्वतात् क्वचित्। गच्छते क्षुरधारासु शंकूनामुपरि क्वचित्॥ ९ ॥
स्खलत्यन्धे तमस्युग्रे जले निपतति क्वचित्। क्वचित् पङ्कजलौकाढ्ये क्वचित् संतप्तकर्दमे॥ १०॥

वह वन कौओं, उल्लुओं, वटों (पक्षिविशेषों), गीधों, सरघों तथा डाँसोंसे व्याप्त है। उसमें चारों ओर दावाग्नि व्याप्त है, असिपत्रके पत्तोंसे वह (जीव) उस वनमें छिन्न-भिन्न हो जाता है॥ ८॥ कहीं अंधे कुँएमें गिरता है, कहीं विकट पर्वतसे गिरता है, कहीं छूरेकी धारपर चलता है तो कहीं कीलोंके ऊपर चलता है॥ ९॥

कहीं घने अन्धकारमें गिरता है, कहीं उग्र (भय उत्पन्न करनेवाले) जलमें गिरता है, कहीं जोंकोंसे भरे हुए कीचड़में गिरता है तो कहीं जलते हुए कीचड़में गिरता है॥ १०॥

संतप्तवालुकाकीर्णे ध्माततात्रमये क्वचित्। क्वचिदङ्गारराशौ च महाधूमाकुले क्वचित्॥ ११॥
क्वचिदङ्गारवृष्टिश्च शिलावृष्टिः सवज्रका। रक्तवृष्टिः शस्त्रवृष्टिः क्वचिदुष्णाम्बुवर्षणम्॥ १२॥
क्षारकर्दमवृष्टिश्च महानिम्नानि च क्वचित्। वप्रप्ररोहणं क्वापि कन्दरेषु प्रवेशनम्॥ १३॥

कहीं तपी हुई बालुकासे व्याप्त और कहीं धधकते हुए ताम्रमय मार्ग, कहीं अंगारकी राशि और कहीं अत्यधिक धुएँसे भरे हुए मार्गपर उसे चलना पड़ता है॥ ११॥ कहीं अंगारकी वृष्टि होती है, कहीं बिजली गिरनेके साथ शिलावृष्टि होती है, कहीं रक्तकी, कहीं शस्त्रकी और कहीं गर्मजलकी वृष्टि होती है॥ १२॥ कहीं खारे कीचड़की वृष्टि होती है, (मार्गमें) कहीं गहरी खाई है, कहीं पर्वत-शिखरोंकी चढ़ाई है और कहीं कन्दराओंमें प्रवेश करना पड़ता है॥ १३॥

गाढान्धकारस्तत्रास्ति दुःखारोहशिलाः क्वचित्। पूयशोणितपूर्णाश्च विष्ठापूर्णह्रदाः क्वचित्॥ १४॥
मार्गमध्ये वहत्युग्रा घोरा वैतरणी नदी। सा दृष्टा दुःखदा किं वा यस्या वार्ता भयावहा॥ १५॥
शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितवाहिनी। अस्थिवृन्दतटा दुर्गा मांसशोणितकर्दमा॥ १६॥

वहाँ (मार्गमें) कहीं घना अंधकार है तो कहीं दुःखसे चढ़ी जानेयोग्य शिलाएँ हैं, कहीं मवाद, रक्त तथा

विष्ठासे भरे हुए तालाब हैं॥ १४॥ (यम) मार्गके बीचोबीच अत्यन्त उग्र और घोर वैतरणी नदी बहती है। वह देखनेपर दुःखदायिनी हो तो क्या आश्चर्य? उसकी वार्ता ही भय पैदा करनेवाली है॥ १५॥ वह सौ योजन चौड़ी है, उसमें पूय (पीब-मवाद) और शोणित (रक्त) बहते रहते हैं। हड्डियोंके समूहसे तट बने हैं अर्थात् उसके तटपर हड्डियोंका ढेर लगा रहता है। मांस और रक्तके कीचड़वाली वह (नदी) दुःखसे पार की जानेवाली है॥ १६॥

अगाधा दुस्तरा पापैः केशशैवालदुर्गमा। महाग्राहसमाकीर्णा घोरपक्षिशतैर्वृता॥ १७॥
आगतं पापिनं दृष्ट्वा ज्वालाधूमसमाकुला। क्वथ्यते सा नदी तार्क्ष्य कटाहान्तर्घृतं यथा॥ १८॥
कृमिभिः संकुला घोरैः सूचीवक्त्रैः समन्ततः। वज्रतुण्डैर्महागृध्रैर्वायसैः परिवारिता॥ १९॥
शिशुमारैश्च मकरैर्जलौकामत्स्यकच्छपैः। अन्यैर्जलस्थैर्जीवैश्च पूरिता मांसभेदकैः॥ २०॥
पतितास्तत्प्रवाहे च क्रन्दन्ति बहुपापिनः। हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः॥ २१॥
क्षुधितास्तृषिताः पापाः पिबन्ति किल शोणितम्। सा सरिद्रुधिरापूरं वहन्ती फेनिलं बहु॥ २२॥
महाघोरातिगर्जन्ती दुर्निरीक्ष्या भयावहा। तस्या दर्शनमात्रेण पापाः स्युर्गतचेतनाः॥ २३॥

अथाह गहरी और पापियोंके द्वारा दुःखपूर्वक पार की जानेवाली वह नदी केशरूपी सेवारसे भरी होनेके कारण दुर्गम है। वह विशालकाय ग्राहों (घड़ियालों)-से व्याप्त है और सैकड़ों प्रकारके घोर पक्षियोंसे आवृत है॥ १७॥ हे गरुड! आये हुए पापीको देखकर वह नदी ज्वाला और धूमसे भरकर कड़ाहमें रखे घृतकी भाँति खौलने लगती

है॥ १८॥ वह नदी सूईके समान मुखवाले भयानक कीड़ोंसे चारों ओर व्याप्त है। वज्रके समान चोंचवाले बड़े-बड़े गीध एवं कौओंसे घिरी हुई है॥ १९॥ वह नदी शिशुमार, मगर, जोंक, मछली, कछुए तथा अन्य मांसभक्षी जलचर-जीवोंसे भरी पड़ी है॥ २०॥ उसके प्रवाहमें गिरे हुए बहुत-से पापी रोते-चिल्लाते हैं और हे भाई, हा पुत्र!, हा तात!—इस प्रकार कहते हुए बार-बार विलाप करते हैं॥ २१॥ भूख और प्याससे व्याकुल होकर पापी जीव रक्तका पान करते हैं। वह नदी झागपूर्ण रक्तके प्रवाहसे व्याप्त, महाघोर, अत्यन्त गर्जना करनेवाली, देखनेमें दुःख पैदा करनेवाली तथा भयावह है। उसके दर्शनमात्रसे पापी चेतनाशून्य हो जाते हैं॥ २२-२३॥

बहुवृश्चिकसंकीर्णा सेविता कृष्णपन्नगैः। तन्मध्ये पतितानां च त्राता कोऽपि न विद्यते॥ २४॥
आवर्तशतसाहस्त्रैः पाताले यान्ति पापिनः। क्षणं तिष्ठन्ति पाताले क्षणादुपरिवर्तिनः॥ २५॥
पापिनां पतनायैव निर्मिता सा नदी खग। न पारं दृश्यते तस्या दुस्तरा बहुदुःखदा॥ २६॥

बहुत-से बिच्छू तथा काले सर्पोंसे व्याप्त उस नदीके बीचमें गिरे हुए पापियोंकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है॥ २४॥ उसके सैकड़ों, हजारों, भँवरोंमें पड़कर पापी पातालमें चले जाते हैं। क्षणभर पातालमें रहते हैं और एक क्षणमें ही ऊपर चले आते हैं॥ २५॥ हे खग! वह नदी पापियोंके गिरनेके लिये ही बनायी गयी है। उसका पार नहीं दीखता। वह अत्यन्त दुःखपूर्वक तरनेयोग्य तथा बहुत दुःख देनेवाली है॥ २६॥

एवं बहुविधक्लेशे यममार्गेऽतिदुःखदे। क्रोशन्तश्च रुदन्तश्च दुःखिता यान्ति पापिनः॥ २७॥

पाशेन यन्त्रिताः केचित् कृष्यमाणास्तथांकुशैः। शस्त्राग्रैः पृष्ठतः प्रोतैर्नीयमानाश्च पापिनः॥ २८॥

नासाग्रपाशकृष्टाश्च कर्णपाशैस्तथापरे। कालपाशैः कृष्यमाणाः काकैः कृष्यास्तथापरे॥ २९॥

इस प्रकार बहुत प्रकारके क्लेशोंसे व्याप्त अत्यन्त दुःखप्रद यममार्गमें रोते-चिल्लाते हुए दुःखी पापी जाते हैं॥ २७॥ कुछ पापी पाशसे बँधे होते हैं, कुछ अंकुशमें फँसाकर खींचे जाते हैं, और कुछ शस्त्रके अग्रभागसे पीठमें छेदते हुए ले जाये जाते हैं॥ २८॥ कुछ नाकके अग्रभागमें लगे हुए पाशसे और कुछ कानमें लगे हुए पाशसे खींचे जाते हैं। कुछ कालपाशसे खींचे जाते हैं और कुछ कौओंसे खींचे जाते हैं॥ २९॥

ग्रीवाबाहुषु पादेषु बद्धाः पृष्ठे च शृङ्खलैः। अयोभारचयं केचिद्वहन्तः पथि यान्ति ते॥ ३०॥
यमदूतैर्महाघोरैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः। वमन्तो रुधिरं वक्त्रात् तदेवाश्नन्ति ते पुनः॥ ३१॥
शोचन्तः स्वानि कर्माणि ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः। अतीव दुःखसम्पन्नाः प्रयान्ति यममन्दिरम्॥ ३२॥

वे पापी गरदन, हाथ तथा पैरमें जंजीरसे बँधे हुए तथा अपनी पीठपर लोहेके भारको ढोते हुए मार्गपर चलते हैं॥ ३०॥ अत्यन्त घोर यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे पीटे जाते हुए वे मुखसे रक्त वमन करते हुए तथा वमन किये हुए रक्तको पुनः पीते (हुए जाते) हैं॥ ३१॥ (उस समय) अपने दुष्कर्मोंको सोचते हुए प्राणी अत्यन्त ग्लानिका अनुभव करते हैं और अतीव दुःखित होकर यमलोकको जाते हैं॥ ३२॥

तथापि स व्रजन् मार्गे पुत्र पौत्र इति ब्रुवन्। हा हेति प्ररुदन् नित्यमनुतप्यति मन्दधीः॥ ३३॥

महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते। तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम्॥ ३४॥

मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः।
न तीर्थसेवा विहिता विधानतो देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३५॥

इस प्रकार यममार्गमें जाता हुआ वह मन्दबुद्धि प्राणी हा पुत्र! हा पौत्र! इस प्रकार पुत्र और पौत्रोंको पुकारते हुए, हाय-हाय इस प्रकार विलाप करते हुए पश्चात्तापकी ज्वालासे जलता रहता है॥ ३३॥ (वह विचार करता है कि) महान् पुण्यके सम्बन्धसे मनुष्य-जन्म प्राप्त होता है, उसे प्राप्तकर भी मैंने धर्माचरण नहीं किया, यह मैंने क्या किया॥ ३४॥ मैंने दान दिया नहीं, अग्निमें हवन किया नहीं, तपस्या की नहीं, देवताओंकी भी पूजा की नहीं, विधि-विधानसे तीर्थसेवा की नहीं, अतः हे जीव! जो तुमने किया है, उसीका फल भोगो॥ ३५॥

न पूजिता विप्रगणाः सुरापगा न चाश्रिताः सत्पुरुषा न सेविताः।
परोपकारो न कृतः कदाचन देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३६॥
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे।
गोविप्रवृत्त्यर्थमकारि नाण्वपि देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३७॥

(हे देही! तुमने) ब्राह्मणोंकी पूजा की नहीं, देवनदी गङ्गाका सहारा लिया नहीं, सत्पुरुषोंकी सेवा की नहीं, कभी भी दूसरेका उपकार किया नहीं, इसलिये हे जीव! जो तुमने किया है, अब उसीका फल भोगो॥ ३६॥ मनुष्यों और

पशु-पक्षियोंके लिये जलहीन प्रदेशमें जलाशयका निर्माण किया नहीं। गौओं और ब्राह्मणोंकी आजीविकाके लिये थोड़ा भी प्रयास किया नहीं, इसलिये हे देही! तुमने जो किया है, उसीसे अपना निर्वाह करो॥ ३७॥

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेदशास्त्रार्थवचः प्रमाणितम्।
श्रुतं पुराणं न च पूजितो ज्ञो देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥ ३८॥

तुमने नित्य-दान किया नहीं, गौओंके दैनिक भरण-पोषणकी व्यवस्था की नहीं, वेदों और शास्त्रोंके वचनोंको प्रमाण माना नहीं, पुराणोंको सुना नहीं, विद्वानोंकी पूजा की नहीं, इसलिये हे देही! जो तुमने किया है, उन्हीं दुष्कर्मोंके फलको अब भोगो॥ ३८॥

भर्तुर्मया नैव कृतं हितं वचः पतिव्रतं नैव कदापि पालितम्।
न गौरवं क्वापि कृतं गुरूचितं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३९॥
न धर्मबुद्ध्या पतिरेव सेवितो वह्निप्रवेशो न कृतो मृते पतौ।
वैधव्यमासाद्य तपो न सेवितं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ४०॥
मासोपवासैर्न विशोषितं मया चान्द्रायणैर्वा नियमैः सविस्तरैः।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः॥ ४१॥

(नारी-जीव भी पश्चात्ताप करते हुए कहता है) मैंने पतिकी हितकर आज्ञाका पालन किया नहीं, पातिव्रत्य धर्मका कभी पालन किया नहीं और गुरुजनोंको गौरवोचित सम्मान कभी दिया नहीं, इसलिये हे देहिन्! जो तुमने

किया, उसीका अब फल भोगो॥ ३९॥ धर्मकी बुद्धिसे एकमात्र पतिकी सेवा की नहीं और पतिकी मृत्यु हो जानेपर वह्निप्रवेश करके उनका अनुगमन किया नहीं, वैधव्य प्राप्त करके त्यागमय जीवन व्यतीत किया नहीं, इसलिये हे देहिन्! जैसा किया, उसका फल अब भोगो॥ ४०॥ मासपर्यन्त किये जानेवाले उपवासोंसे तथा चान्द्रायण-व्रतों[1] आदि सुविस्तीर्ण नियमोंके पालनसे शरीरको सुखाया नहीं। पूर्वजन्ममें किये हुए दुष्कर्मोंसे बहुत प्रकारके दुःखोंको प्राप्त करनेके लिये नारी-शरीर प्राप्त किया था॥ ४१॥

एवं विलप्य बहुशो संस्मरन् पूर्वदैहिकम्। मानुषत्वं मम कुत इति क्रोशन् प्रसर्पति॥ ४२॥
दशसप्तदिनान्येको वायुवेगेन गच्छति। अष्टादशे दिने तार्क्ष्य प्रेतः सौम्यपुरं व्रजेत्॥ ४३॥
तस्मिन् पुरवरे रम्ये प्रेतानां च गणो महान्। पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः॥ ४४॥

इस तरह बहुत प्रकारसे विलाप करके पूर्वदेहका स्मरण करते हुए 'मेरा मानव-जन्म (शरीर) कहाँ चला गया' इस प्रकार चिल्लाता हुआ वह यममार्गमें चलता है॥ ४२॥ हे तार्क्ष्य! (इस प्रकार) सतरह दिनतक अकेले वायुवेगसे चलते हुए अठारहवें दिन वह प्रेत सौम्यपुरमें जाता है॥ ४३॥ उस रमणीय श्रेष्ठ सौम्यपुरमें प्रेतोंका महान् गण रहता है। वहाँ पुष्पभद्रा नदी और अत्यन्त प्रिय दिखनेवाला वटवृक्ष है॥ ४४॥

१. चान्द्रायण-व्रत—चन्द्रमाकी कलाओंके ह्रास एवं वृद्धिके अनुसार उतने ही ग्रास ग्रहण करके किया जानेवाला व्रत 'चान्द्रायण-व्रत' कहलाता है, यह 'पिपीलिका-मध्य' और 'यव-मध्य'—इन नामोंसे दो प्रकारका होता है।

पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः। दारपुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दुःखितः॥ ४५॥
धनानि भृत्यपौत्राणि सर्वं शोचति वै यदा। तदा प्रेतास्तु तत्रत्याः किङ्कराश्चेदमब्रुवन्॥ ४६॥
क्व धनं क्व सुतो जाया क्व सुहृत् क्व च बान्धवाः। स्वकर्मोपार्जितं भोक्ता मूढ याहि चिरं पथि॥ ४७॥

उस पुरमें यमदूतोंके द्वारा उसे विश्राम कराया जाता है। वहाँ दुःखी होकर वह स्त्री-पुत्रोंके द्वारा प्राप्त सुखोंका स्मरण करता है॥ ४५॥ वह अपने धन, भृत्य और पौत्र आदिके विषयमें जब सोचने लगता है तो वहाँ रहनेवाले यमके किंकर उससे इस प्रकार कहते हैं— ॥ ४६॥ धन कहाँ है? पुत्र कहाँ है? पत्नी कहाँ है? मित्र कहाँ है? बन्धु-बान्धव कहाँ हैं? हे मूढ! जीव अपने कर्मोपार्जित फलको ही भोगता है, इसलिये सुदीर्घ कालतक इस यममार्गपर चलो॥ ४७॥

जानासि संबलबलं बलमध्वगानां नो संबलाय यतसे परलोकपान्थ।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन मार्गेण यत्र भवतः क्रयविक्रयौ न॥ ४८॥

आबालख्यातमार्गोऽयं नैव मर्त्य श्रुतस्त्वया। पुराणसम्भवं वाक्यं किं द्विजेभ्योऽपि न श्रुतम्॥ ४९॥
एवमुक्तस्ततो दूतैस्ताड्यमानश्च मुद्गरैः। निपतन्नुत्पतन् धावन् पाशैराकृष्यते बलात्॥ ५०॥

हे परलोकके राही! तू यह जानता है कि राहगीरोंका बल और संबल पाथेय ही होता है, जिसके लिये तूने प्रयास तो किया नहीं। तू यह भी जानता था कि तुम्हें निश्चित ही उस मार्गपर चलना है और उस रास्तेपर कोई

भी लेन-देन हो नहीं सकता॥ ४८॥ यह मार्ग तो बालकोंको भी विदित रहता है। हे मनुष्य! क्या तुमने इसे सुना नहीं था? क्या तुमने ब्राह्मणोंके मुखसे पुराणोंके वचन सुने नहीं थे॥ ४९॥ इस प्रकार कहकर मुद्गरोंसे पीटा जाता हुआ वह जीव गिरते-पड़ते-दौड़ते हुए बलपूर्वक पाशोंसे खींचा जाता है॥ ५०॥

अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाथवा। मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत्॥ ५१॥
तत्र नाम्नास्ति राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक्। तद्दृष्ट्वा भयभीतोऽसौ विश्रामे कुरुते मतिम्॥ ५२॥
उदकं चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तत्र पुरे गतः। त्रैपाक्षिके वै यद्दत्तं स तत्पुरमतिक्रमेत्॥ ५३॥

यहाँ स्नेह अथवा कृपाके कारण पुत्र-पौत्रोंद्वारा दिये हुए मासिक पिण्डको खाता है। उसके बाद वह जीव सौरिपुरको प्रस्थान करता है॥ ५१॥ उस सौरिपुरमें कालके रूपको धारण करनेवाला जङ्गम नामक राजा (रहता) है। उसे देखकर वह जीव भयभीत होकर विश्राम करना चाहता है॥ ५२॥ उस पुरमें गया हुआ वह जीव अपने स्वजनोंके द्वारा दिये हुए त्रैपाक्षिक अन्न-जलको खाकर उस पुरको पार करता है॥ ५३॥

ततो नगेन्द्रभवनं प्रेतो याति त्वरान्वितः। बनानि तत्र रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति दुःखितः॥ ५४॥
निर्घृणैः कृष्यमाणस्तु रुदते च पुनः पुनः। मासद्वयावसाने तु तत्पुरं व्यथितो व्रजेत्॥ ५५॥
भुक्त्वा पिण्डं जलं वस्त्रं दत्तं यद्बान्धवैरिह। कृष्यमाणः पुनः पाशैर्नीयतेऽग्रे च किङ्करैः॥ ५६॥

उसके बाद शीघ्रतापूर्वक वह प्रेत नगेन्द्र-भवनकी ओर जाता है और वहाँ भयंकर वनोंको देखकर दुःखी होकर

रोता है॥ ५४॥ दयारहित दूतोंके द्वारा खींचे जानेपर वह बार-बार रोता है और दो मासके अन्तमें वह दुःखी होकर वहाँ जाता है॥ ५५॥ बान्धवोंद्वारा दिये गये पिण्ड, जल, वस्त्रका उपभोग करके यमकिंकरोंके द्वारा पाशसे बार-बार खींचकर पुनः आगे ले जाया जाता है॥ ५६॥

मासे तृतीये सम्प्राप्ते प्राप्य गन्धर्वपत्तनम्। तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति॥ ५७॥
शैलागमं चतुर्थे च मासि प्राप्नोति वै पुरम्। पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि भूरिशः॥ ५८॥
चतुर्थमासिकं पिण्डं भुक्त्वा किञ्चित् सुखी भवेत्। ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्चं मासेऽथ पञ्चमे॥ ५९॥

तीसरे मासमें वह गन्धर्वनगरको प्राप्त होता है और वहाँ त्रैमासिक पिण्ड खाकर आगे चलता है॥ ५७॥ चौथे मासमें वह शैलागमपुरमें पहुँचता है और वहाँ प्रेतके ऊपर बहुत अधिक पत्थरोंकी वर्षा होती है॥ ५८॥ (वहाँ) चौथे मासिक पिण्डको खाकर वह कुछ सुखी होता है। उसके बाद पाँचवें महीनेमें वह प्रेत क्रौञ्चपुर पहुँचता है॥ ५९॥

हस्तदत्तं तदा भुङ्क्ते प्रेतः क्रौञ्चपुरे स्थितः। यत्पञ्चमासिकं पिण्डं भुक्त्वा क्रूरपुरं व्रजेत्॥ ६०॥
सार्धकैः पञ्चभिर्मासैर्न्यूनषाण्मासिकं व्रजेत्। तत्र दत्तेन पिण्डेन घटेनाप्यायितः स्थितः॥ ६१॥
मुहूर्तार्धं तु विश्रम्य कम्पमानः सुदुःखितः। तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः॥ ६२॥

प्रयाति चित्रभवनं विचित्रो नाम पार्थिवः। यमस्यैवानुजो भ्राता यत्र राज्यं प्रशास्ति हि॥ ६३॥

क्रौञ्चपुरमें स्थित वह प्रेत वहाँ बान्धवोंद्वारा हाथसे दिये गये पाँचवें मासिक पिण्डको खाकर आगे क्रूरपुरकी ओर चलता है॥ ६०॥ साढ़े पाँच मासके बाद (बान्धवोंद्वारा प्रदत्त) ऊनषाण्मासिक पिण्ड और घटदानसे तृप्त होकर वह वहाँ आधे मुहूर्ततक विश्राम करके यमदूतोंके द्वारा डराये जानेपर दुःखसे काँपता हुआ उस पुरको छोड़कर—॥ ६१-६२॥ चित्रभवन नामक पुरको जाता है, जहाँ यमका छोटा भाई विचित्र नामवाला राजा राज्य करता है॥ ६३॥

तं विलोक्य महाकायं यदा भीतः पलायते। तदा सम्मुखमागत्य कैवर्ता इदमब्रुवन्॥ ६४॥
वयं ते तर्तुकामाय महावैतरणीं नदीम्। नावमादाय सम्प्राप्ता यदि ते पुण्यमीदृशम्॥ ६५॥
दानं वितरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। इयं सा तीर्यते यस्मात् तस्माद्वैतरणी स्मृता॥ ६६॥

उस विशाल शरीरवाले राजाको देखकर जब वह (जीव) डरसे भागता है, तब सामने आकर कैवर्त (धीवर) उससे यह कहते हैं—॥ ६४॥ हम इस महावैतरणी नदीको पार करनेवालोंके लिये नाव लेकर आये हैं, यदि तुम्हारा इस प्रकारका पुण्य हो तो (इसमें बैठ सकते हो)॥ ६५॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने दानको ही वितरण (देना या बाँटना) कहा है। यह वैतरणी नदी वितरणके द्वारा ही पार की जा सकती है, इसलिये इसको वैतरणी कहा जाता है॥ ६६॥

यदि त्वया प्रदत्ता गौस्तदा नौरुपसर्पति। नाऽन्यथेति वचस्तेषां श्रुत्वा हा दैव भाषते॥ ६७॥

तं दृष्ट्वा क्वथते सा तु तां दृष्ट्वा सोऽतिक्रन्दते। अदत्तदानः पापात्मा तस्यामेव निमज्जति॥ ६८॥
तन्मुखे कण्टकं दत्त्वा दूतैराकाशसंस्थितैः। बडिशेन यथा मत्स्यस्तथा पारं प्रणीयते॥ ६९॥

यदि तुमने वैतरणी गौका दान किया हो तो नौका तुम्हारे पास आयेगी अन्यथा नहीं। उनके ऐसे वचन सुनकर प्रेत 'हा दैव!' ऐसा कहता है॥ ६७॥ उस प्रेतको देखकर वह नदी खौलने लगती है और उसे देखकर प्रेत अत्यन्त क्रन्दन (विलाप) करने लगता है। जिसने अपने जीवनमें कभी दान दिया ही नहीं है, ऐसा पापात्मा उसी (वैतरणी)-में डूबता है॥ ६८॥ तब आकाशमार्गसे चलनेवाले दूत उसके मुखमें काँटा लगाकर वंशीसे मछलीकी भाँति उसे खींचते हुए पार ले जाते हैं॥ ६९॥

षाण्मासिकं च यत्पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति। मार्गे स विलपन् याति बुभुक्षापीडितो ह्यलम्॥ ७०॥
सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बह्वापदं व्रजेत्। तत्र भुङ्क्ते प्रदत्तं तत् सप्तमे मासि पुत्रकैः॥ ७१॥
तत्पुरं तु व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमृच्छति। महद्दुःखमवाप्नोति खे गच्छन् खेचरेश्वर॥ ७२॥

वहाँ षाण्मासिक पिण्ड खाकर वह अत्यधिक भूखसे पीडित होकर विलाप करता हुआ आगेके रास्तेपर चलता है॥ ७०॥ सातवें मासमें वह बह्वापदपुरको जाता है और वहाँ अपने पुत्रोंद्वारा दिये हुए सप्तम मासिक पिण्डको खाता है॥ ७१॥ हे पक्षिराज गरुड! उस पुरको पारकर वह दुःखद नामक पुरको जाता है। आकाशमार्गसे जाता हुआ वह महान् दुःख प्राप्त करता है॥ ७२॥

मास्यष्टमे प्रदत्तं यत्पिण्डं भुक्त्वा प्रसर्पति। नवमे मासि सम्पूर्णे नानाक्रन्दपुरं व्रजेत्॥ ७३॥

नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान्। स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः॥ ७४॥

विहाय तत्पुरं प्रेतस्तर्जितो यमकिङ्करैः। सुतप्तभवनं गच्छेद्दशमे मासि कृच्छ्रतः॥ ७५॥

वहाँ आठवें मासमें दिये हुए पिण्डको खाकर आगे बढ़ता है और नवाँ मास पूर्ण होनेपर नानाक्रन्दपुरको प्राप्त होता है॥ ७३॥ वहाँ क्रन्दन करते हुए अनेक भयावह क्रन्दगणोंको देखकर स्वयं शून्य हृदयवाला वह जीव दुःखी होकर आक्रन्दन करने लगता है॥ ७४॥ उस पुरको छोड़कर वह यमदूतोंके द्वारा भयभीत किया जाता हुआ दसवें महीनेमें अत्यन्त कठिनाईसे सुतप्तभवन नामक नगरमें पहुँचता है॥ ७५॥

पिण्डदानं जलं तत्र भुक्त्वाऽपि न सुखी भवेत्। मासि चैकादशे पूर्णे पुरं रौद्रं स गच्छति॥ ७६॥

दशैकमासिकं तत्र भुङ्क्ते दत्तं सुतादिभिः। सार्धे चैकादशे मासि पयोवर्षणमृच्छति॥ ७७॥

मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः। न्यूनाब्दिकं च यच्छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते स दुःखितः॥ ७८॥

वहाँ पुत्रादिसे पिण्डदान और जलाञ्जलि प्राप्त करके भी सुखी नहीं होता। ग्यारहवाँ मास पूरा होनेपर वह रौद्रपुरको जाता है॥ ७६॥ और पुत्रादिके द्वारा दिये हुए एकादश मासिक पिण्डको वहाँ खाता है। साढ़े ग्यारह मास बीतनेपर वह जीव पयोवर्षण नामक नगरमें पहुँचता है॥ ७७॥ वहाँ प्रेतोंको दुःख देनेवाले मेघ घनघोर वर्षा करते हैं, वहाँपर दुःखी वह प्रेत ऊनाब्दिक श्राद्ध (के पिण्ड)-को खाता है॥ ७८॥

सम्पूर्णे तु ततो वर्षे शीताढ्यं नगरं व्रजेत्। हिमाच्छतगुणं तत्र महाशीतं तपत्यपि॥ ७९॥
शीतार्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश। तिष्ठते बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति॥ ८०॥
किङ्करास्ते वदन्त्यत्र क्व ते पुण्यं हि तादृशम्। भुक्त्वा च वार्षिकं पिण्डं धैर्यमालम्बते पुनः॥ ८१॥

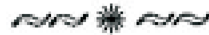
इसके बाद वर्ष पूरा होनेपर वह जीव शीताढ्य नामक नगरको प्राप्त होता है, वहाँ हिमसे भी सौ गुनी अधिक (महान्) ठंड पड़ती है॥ ७९॥ शीतसे दुःखी तथा क्षुधित वह जीव (इस आशासे) दसों दिशाओंमें देखता है कि शायद कहीं कोई हमारा बान्धव हो, जो मेरे दुःखको दूर कर सके॥ ८०॥ तब यमके दूत कहते हैं—तुम्हारा ऐसा पुण्य कहाँ है? फिर वार्षिक पिण्डको खाकर वह धैर्य धारण करता है॥ ८१॥

ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये। बहुभीतिपुरे गत्वा हस्तमात्रं समुत्सृजेत्॥ ८२॥
अङ्गुष्ठमात्रो वायुश्च कर्मभोगाय खेचर। यातनादेहमासाद्य सह याम्यैः प्रयाति च॥ ८३॥
और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप। कष्टेन ते पुरं यान्ति गृहीत्वा दृढबन्धनैः॥ ८४॥

उसके बाद वर्षके अन्तमें यमपुरके निकट पहुँचनेपर वह प्रेत बहुभीतिपुरमें जाकर हाथभर मापके अपने शरीरको छोड़ देता है॥ ८२॥ हे पक्षी! पुनः कर्मभोगके लिये अङ्गुष्ठमात्रके वायुस्वरूप यातनादेहको प्राप्त करके वह यमदूतोंके साथ जाता है॥ ८३॥ हे कश्यपात्मज! जिन्होंने और्ध्वदैहिक (मरणकालिक) दान नहीं दिये हैं, वे यमदूतोंके द्वारा दृढ़ बन्धनोंसे बँधे हुए अत्यन्त कष्टसे यमपुरको जाते हैं॥ ८४॥

धर्मराजपुरे सन्ति चतुर्द्वाराणि खेचर। यत्रायं दक्षिणद्वारमार्गस्ते परिकीर्तितः॥ ८५॥
अस्मिन् पथि महाघोरे क्षुत्तृषाश्रमपीडिताः। यथा यान्ति तथा प्रोक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ८६॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे यममार्गनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥



हे आकाशगामी! धर्मराजपुरमें चार द्वार हैं, जिनमेंसे दक्षिण द्वारके मार्गका तुमसे वर्णन कर दिया॥ ८५॥ इस महान् भयंकर मार्गमें भूख-प्यास और श्रमसे दुःखी जीव जिस प्रकार जाते हैं, वह सब मैंने बतला दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो॥ ८६॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'यममार्गनिरूपण' नामका दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥



तीसरा अध्याय

यमयातनाका वर्णन, चित्रगुप्तद्वारा श्रवणोंसे प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मके विषयमें पूछना, श्रवणोंद्वारा वह सब धर्मराजको बताना और धर्मराजद्वारा दण्डका निर्धारण

गरुड उवाच

यममार्गमतिक्रम्य गत्वा पापी यमालये। कीदृशीं यातनां भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! यममार्गकी यात्रा पूरी करके यमके भवनमें जाकर पापी किस प्रकारकी यातनाको भोगता है? वह मुझे बतलाइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

आद्यन्तं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व विनतात्मज। कथ्यमानेऽपि नरके त्वं भविष्यसि कम्पितः॥ २ ॥

चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि काश्यप। बहुभीतिपुरादग्रे धर्मराजपुरं महत्॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे विनताके पुत्र गरुड! मैं (नरकयातनाको) आदिसे अन्ततक कहूँगा, सुनो। मेरे द्वारा नरकका वर्णन किये जानेपर (उसे सुननेमात्रसे ही) तुम काँप उठोगे॥ २॥ हे कश्यपनन्दन! बहुभीतिपुरके आगे चौवालीस योजनमें फैला हुआ धर्मराजका विशाल पुर है॥ ३॥

हाहाकारसमायुक्तं दृष्ट्वा क्रन्दति पातकी। तत्क्रन्दनं समाकर्ण्य यमस्य पुरचारिणः॥ ४ ॥

गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि। धर्मध्वजः प्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा॥ ५ ॥
स गत्वा चित्रगुप्ताय ब्रूते तस्य शुभाशुभम्। ततस्तं चित्रगुप्तोऽपि धर्मराजं निवेदयेत्॥ ६ ॥

हाहाकारसे परिपूर्ण उस पुरको देखकर पापी प्राणी क्रन्दन करने लगता है। उसके क्रन्दनको सुनकर यमपुरमें विचरण करनेवाले (यमके गण)—॥ ४॥ प्रतीहार (द्वारपाल)-के पास जाकर उस (पापी)-के विषयमें बताते हैं। धर्मराजके द्वारपर सर्वदा धर्मध्वज नामक प्रतीहार स्थित रहता है॥ ५॥ वह (द्वारपाल) जाकर चित्रगुप्तसे उस प्राणीके शुभ और अशुभ कर्मको बताता है। उसके बाद चित्रगुप्त भी उसके विषयमें धर्मराजसे निवेदन करते हैं॥ ६॥

नास्तिका ये नरास्तार्क्ष्य महापापरताः सदा। तांश्च सर्वान् यथायोग्यं सम्यग्जानाति धर्मराट्॥ ७ ॥
तथापि चित्रगुप्ताय तेषां पापं स पृच्छति। चित्रगुप्तोऽपि सर्वज्ञः श्रवणान् परिपृच्छति॥ ८ ॥
श्रवणा ब्रह्मणः पुत्राः स्वर्भूपातालचारिणः। दूरश्रवणविज्ञाना दूरदर्शनचक्षुषः॥ ९ ॥

हे तार्क्ष्य! जो नास्तिक और महापापी प्राणी हैं, उन सभीके विषयमें धर्मराज यथार्थरूपसे भलीभाँति जानते हैं॥ ७॥ तो भी (वे) चित्रगुप्तसे उन प्राणियोंके पापके विषयमें पूछते हैं और सर्वज्ञ चित्रगुप्त भी श्रवणोंसे पूछते हैं॥ ८॥ श्रवण ब्रह्माके पुत्र हैं। वे स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालमें विचरण करनेवाले तथा दूरसे ही सुन एवं जान

लेनेवाले हैं। उनके नेत्र सुदूरके दृश्योंको भी देख लेनेवाले हैं॥ ९॥

तेषां पत्न्यस्तथाभूताः श्रवण्यः पृथगाह्वयाः। स्त्रीणां विचेष्टितं सर्वं तां विजानन्ति तत्त्वतः॥ १०॥
नरैः प्रच्छन्नं प्रत्यक्षं यत्प्रोक्तं च कृतं च यत्। सर्वमावेदयन्त्येव चित्रगुप्ताय ते च ताः॥ ११॥
चारास्ते धर्मराजस्य मनुष्याणां शुभाशुभम्। मनोवाक्कायजं कर्म सर्वं जानन्ति तत्त्वतः॥ १२॥

श्रवणी नामकी उनकी पृथक्-पृथक् पत्नियाँ भी उसी प्रकारके स्वरूपवाली हैं अर्थात् श्रवणोंके समान ही हैं। वे स्त्रियोंकी सभी प्रकारकी चेष्टाओंको तत्त्वतः जानती हैं॥ १०॥ मनुष्य छिपकर अथवा प्रत्यक्षरूपसे जो कुछ करता और कहता है, वह सब श्रवण एवं श्रवणियाँ चित्रगुप्तसे बताते हैं॥ ११॥ वे श्रवण और श्रवणियाँ धर्मराजके गुप्तचर हैं, जो मनुष्यके मानसिक, वाचिक और कायिक—सभी प्रकारके शुभ और अशुभ कर्मोंको ठीक-ठीक जानते हैं॥ १२॥

एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्यामर्त्याधिकारिणाम्। कथयन्ति नृणां कर्म श्रवणाः सत्यवादिनः॥ १३॥
व्रतैर्दानैश्च सत्योक्त्या यस्तोषयति तान्नरः। भवन्ति तस्य ते सौम्याः स्वर्गमोक्षप्रदायिनः॥ १४॥
पापिनां पापकर्माणि ज्ञात्वा ते सत्यवादिनः। धर्मराजपुरः प्रोक्ता जायन्ते दुःखदायिनः॥ १५॥

मनुष्य और देवताओंके अधिकारी वे श्रवण और श्रवणियाँ सत्यवादी हैं। उनके पास ऐसी शक्ति है, जिसके बलपर वे मनुष्यकृत कर्मोंको बतलाते हैं॥ १३॥ व्रत, दान और सत्य वचनसे जो मनुष्य उन्हें प्रसन्न करता है,

उसके प्रति वे सौम्य तथा स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हो जाते हैं॥ १४॥ वे सत्यवादी श्रवण पापियोंके पापकर्मोंको जानकर धर्मराजके सम्मुख यथावत् कह देनेके कारण (पापियोंके लिये) दुःखदायी हो जाते हैं॥ १५॥

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥ १६॥
धर्मराजश्चित्रगुप्तः श्रवणा भास्करादयः। कायस्थं तत्र पश्यन्ति पापं पुण्यं च सर्वशः॥ १७॥
एवं सुनिश्चयं कृत्वा पापिनां पातकं यमः। आहूय तन्निजं रूपं दर्शयत्यति भीषणम्॥ १८॥

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यम, दिन, रात, दोनों संध्याएँ और धर्म—ये मनुष्यके वृत्तान्तको जानते हैं॥ १६॥ धर्मराज, चित्रगुप्त, श्रवण और सूर्य आदि मनुष्यके शरीरमें स्थित सभी पाप और पुण्योंको पूर्णतया देखते हैं॥ १७॥ इस प्रकार पापियोंके पापके विषयमें सुनिश्चित जानकारी प्राप्त करके यम उन्हें बुलाकर अपना अत्यन्त भयंकर रूप दिखाते हैं॥ १८॥

पापिष्ठास्ते प्रपश्यन्ति यमरूपं भयङ्करम्। दण्डहस्तं महाकायं महिषोपरिसंस्थितम्॥ १९॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषकज्जलाचलसन्निभम्। विद्युत्प्रभायुधैर्भीमं द्वात्रिंशद्भुजसंयुतम्॥ २०॥
योजनत्रयविस्तारं वापीतुल्यविलोचनम्। दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताक्षं दीर्घनासिकम्॥ २१॥

वे पापी यमके ऐसे भयंकर रूपको देखते हैं—जो हाथमें दण्ड लिये हुए, बहुत बड़ी कायावाले, भैंसेके ऊपर

संस्थित, प्रलयकालीन मेघके समान आवाजवाले, काजलके पर्वतके समान, बिजलीकी प्रभावाले, आयुधोंके कारण भयंकर, बत्तीस भुजाओंवाले, तीन योजनके लम्बे-चौड़े विस्तारवाले, बावलीके समान गोल नेत्रवाले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंके कारण भयंकर मुखवाले, लाल-लाल आँखोंवाले और लम्बी नाकवाले हैं॥ १९—२१॥

मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः। सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यास्तदन्तिके॥ २२॥
तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हा हेति वदते खलः। अदत्तदानः पापात्मा कम्पते क्रन्दते पुनः॥ २३॥
ततो वदति तान्सर्वान् क्रन्दमानांश्च पापिनः। शोचन्तः स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया॥ २४॥

मृत्यु और ज्वर आदिसे संयुक्त होनेके कारण चित्रगुप्त भी भयावह हैं। यमके समान भयानक सभी दूत उनके समीप (पापियोंको डरानेके लिये) गरजते रहते हैं॥ २२॥ उन (चित्रगुप्त)-को देखकर भयभीत होकर पापी हाहाकार करने लगता है। दान न करनेवाला वह पापात्मा काँपता है और बार-बार विलाप करता है॥ २३॥ तब चित्रगुप्त यमकी आज्ञासे क्रन्दन करते हुए और अपने पापकर्मोंके विषयमें सोचते हुए उन सभी प्राणियोंसे कहते हैं॥ २४॥

भो भोः पापा दुराचारा अहङ्कारप्रदूषिताः। किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरविवेकिभिः॥ २५॥
कामक्रोधाद्युत्पन्नं सङ्गमेन च पापिनाम्। तत्पापं दुःखदं मूढाः किमर्थं चरितं जनाः॥ २६॥
कृतवन्तः पुरा यूयं पापान्यत्यन्तहर्षिताः। तथैव यातना भोग्याः किमिदानीं पराङ्मुखाः॥ २७॥

अरे पापियो! दुराचारियो! अहंकारसे दूषितो! तुम अविवेकियोंने क्यों पाप कमाया है?॥ २५॥ कामसे,

क्रोधसे तथा पापियोंकी संगतिसे जो पाप तुमने किया है, वह दुःख देनेवाला है, फिर हे मूर्खजनो! तुमने वह (पापकर्म) क्यों किया?॥ २६॥ पूर्वजन्ममें तुम लोगोंने जिस प्रकार अत्यन्त हर्षपूर्वक पापकर्मोंको किया है, उसी प्रकार यातना भी भोगनी चाहिये। इस समय (यातना भोगनेसे) क्यों पराङ्मुख हो रहे हो?॥ २७॥

कृतानि यानि पापानि युष्माभिः सुबहून्यपि। तानि पापानि दुःखस्य कारणं न वयं जनाः॥ २८॥
मूर्खेऽपि पण्डिते वापि दरिद्रे वा श्रियान्विते। सबले निर्बले वापि समवर्ती यमः स्मृतः॥ २९॥
चित्रगुप्तस्येति वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा। शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः॥ ३०॥

तुम लोगोंने जो बहुत-से पाप किये हैं, वे पाप ही तुम्हारे दुःखके कारण हैं। इसमें हमलोग कारण नहीं हैं॥ २८॥ मूर्ख हो या पण्डित, दरिद्र हो या धनवान् और सबल हो या निर्बल—यमराज सभीसे समान व्यवहार करनेवाले कहे गये हैं॥ २९॥ चित्रगुप्तके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर वे पापी अपने कर्मोंके विषयमें सोचते हुए निश्चेष्ट होकर चुपचाप बैठ जाते हैं॥ ३०॥

धर्मराजोऽपि तान् दृष्ट्वा चोरवन्निश्चलान् स्थितान्। आज्ञापयति पापानां शास्ति चैव यथोचितम्॥ ३१॥
ततस्ते निर्दया दूतास्ताडयित्वा वदन्ति च। गच्छ पापिन् महाघोरान् नरकानतिभीषणान्॥ ३२॥
यमाज्ञाकारिणो दूताः प्रचण्डचण्डकादयः। एकपाशेन तान् बद्ध्वा नयन्ति नरकान् प्रति॥ ३३॥

धर्मराज भी चोरकी भाँति निश्चल बैठे हुए उन पापियोंको देखकर उनके पापोंका मार्जन करनेके लिये यथोचित

दण्ड देनेकी आज्ञा करते हैं॥ ३१॥ इसके बाद वे निर्दयी दूत (उन्हें) पीटते हुए कहते हैं—हे पापी! महान् घोर और अत्यन्त भयानक नरकोंमें चलो॥ ३२॥ यमके आज्ञाकारी प्रचण्ड और चण्डक आदि नामवाले दूत एक पाशसे उन्हें बाँधकर नरककी ओर ले जाते हैं॥ ३३॥

तत्र वृक्षो महानेको ज्वलदग्निसमप्रभः। पञ्चयोजनविस्तीर्ण: एकयोजनमुच्छ्रितः॥ ३४॥
तद्वृक्षे शृङ्खलैर्बद्ध्वाऽधोमुखं ताडयन्ति ते। रुदन्ति ज्वलितास्तत्र तेषां त्राता न विद्यते॥ ३५॥
तस्मिन्नेव शाल्मलीवृक्षे लम्बन्तेऽनेकपापिनः। क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता यमदूतैश्च ताडिताः॥ ३६॥
क्षमध्वं भोऽपराधं मे कृताञ्जलिपुटा इति। विज्ञापयन्ति तान् दूतान् पापिष्ठास्ते निराश्रयाः॥ ३७॥

वहाँ जलती हुई अग्निके समान प्रभावाला एक विशाल वृक्ष है, जो पाँच योजनमें फैला हुआ है तथा एक योजन ऊँचा है॥ ३४॥ उस वृक्षमें नीचे मुख करके उसे साँकलोंसे बाँधकर वे दूत पीटते हैं। वहाँ जलते हुए वे रोते हैं, (पर वहाँ) उनका कोई रक्षक नहीं होता॥ ३५॥ उसी शाल्मली-वृक्षमें भूख और प्याससे पीडित तथा यमदूतोंद्वारा पीटे जाते हुए अनेक पापी लटकते रहते हैं॥ ३६॥ वे आश्रयविहीन पापी अञ्जलि बाँधकर—'हे यमदूतो! मेरे अपराधको क्षमा कर दो', ऐसा उन दूतोंसे निवेदन करते हैं॥ ३७॥

पुनः पुनश्च ते दूतैर्हन्यन्ते लौहयष्टिभिः। मुद्गरैस्तोमरैः कुन्तैर्गदाभिर्मुसलैर्भृशम्॥ ३८॥
ताडनाच्चैव निश्चेष्टा मूर्च्छिताश्च भवन्ति ते। तथा निश्चेष्टितान् दृष्ट्वा किङ्करास्ते वदन्ति हि॥ ३९॥

भो भोः पापा दुराचाराः किमर्थं दुष्टचेष्टितम्। सुलभानि न दत्तानि जलान्यन्नान्यपि क्वचित्॥ ४०॥

बार-बार लोहेकी लाठियों, मुद्‌गरों, भालों, बर्छियों, गदाओं और मूसलोंसे उन दूतोंके द्वारा वे अत्यधिक मारे जाते हैं॥ ३८॥ मारनेसे (जब) वे चेष्टारहित और मूर्च्छित हो जाते हैं, तब उन निश्चेष्ट पापियोंको देखकर यमके दूत कहते हैं॥ ३९॥ अरे दुराचारियो! पापियो! तुमलोगोंने दुराचरण क्यों किया? सुलभ होनेवाले भी जल और अन्नका दान कभी क्यों नहीं दिया?॥ ४०॥

ग्रासार्द्धमपि नो दत्तं न श्ववायसयोर्बलिम्। नमस्कृता नातिथयो न कृतं पितृतर्पणम्॥ ४१॥
यमस्य चित्रगुप्तस्य न कृतं ध्यानमुत्तमम्। न जप्तश्च तयोर्मन्त्रो न भवेद्येन यातना॥ ४२॥
नापि किञ्चित्कृतं तीर्थं पूजिता नैव देवताः। गृहाश्रमस्थितेनापि हन्तकारोऽपि नोद्धृतः॥ ४३॥

(तुमलोगोंने) आधा ग्रास भी कभी किसीको नहीं दिया और न ही कुत्ते तथा कौएके लिये बलि ही दी। अतिथियोंको नमस्कार नहीं किया और पितरोंका तर्पण नहीं किया॥ ४१॥ यमराज तथा चित्रगुप्तका उत्तम ध्यान भी नहीं किया और उनके मन्त्रोंका जप नहीं किया, जिससे तुम्हें यह यातना नहीं होती॥ ४२॥ कभी कोई तीर्थ-यात्रा नहीं की, देवताओंकी पूजा भी नहीं की। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी तुमने हन्तकार[1] नहीं निकाला॥ ४३॥

१. हन्तकार—भोजनके पूर्व चौकेमें बलिवैश्वदेव तथा पञ्चबलिकी विधि है। पञ्चबलिमें गाय, कुत्ते, कौए, कीट (कीड़े-मकोड़े) तथा अतिथिदेव—इन पाँचोंके निमित्त भोजनका कुछ अंश निकालनेका विधान है। इसे हन्तकार कहा जाता है। जहाँ बलिवैश्वदेव सम्भव नहीं होता, वहाँ माताएँ अग्निमें अन्नकी आहुति देकर गौ आदिके लिये कुछ भोजनसामग्री निकाल देती हैं।

शुश्रूषिताश्च नो सन्तो भुङ्क्ष्व पापफलं स्वयम्। यतस्त्वं धर्महीनोऽसि ततः संताड्यसे भृशम्॥ ४४॥
क्षमापराधं कुरुते भगवान् हरिरीश्वरः। वयं तु सापराधानां दण्डदा हि तदाज्ञया॥ ४५॥
एवमुक्त्वा च ते दूता निर्दयं ताडयन्ति तान्। ज्वलदङ्गारसदृशाः पतितास्ताडनादधः॥ ४६॥

संतोंकी सेवा की नहीं, इसलिये (अब) स्वयं किये गये पापका फल भोगो। चूँकि तुम धर्महीन हो, इसलिये तुम्हें बहुत अधिक पीटा जा रहा है॥ ४४॥ भगवान् हरि ही ईश्वर हैं, वे ही अपराधोंको क्षमा करनेमें समर्थ हैं, हम तो उन्हींकी आज्ञासे अपराधियोंको दण्ड देनेवाले हैं॥ ४५॥ ऐसा कहकर वे दूत निर्दयतापूर्वक उन्हें पीटते हैं और उनसे पीटे जानेके कारण वे जलते हुए अंगारके समान नीचे गिर जाते हैं॥ ४६॥

पतनात्तस्य पत्रैश्च गात्रच्छेदो भवेत्ततः। तानधः पतिताञ्श्वानो भक्षयन्ति रुदन्ति ते॥ ४७॥
रुदन्तस्ते ततो दूतैर्मुखमापूर्य रेणुभिः। निबद्ध्य विविधैः पाशैर्हन्यन्ते केऽपि मुद्गरैः॥ ४८॥
पापिनः केऽपि भिद्यन्ते क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा। क्षिप्त्वा चाऽन्ये धरापृष्ठे कुठारैः खण्डशः कृताः॥ ४९॥

गिरनेसे उस (शाल्मली) वृक्षके पत्तोंसे उनका शरीर कट जाता है। नीचे गिरे हुए उन प्राणियोंको कुत्ते खाते हैं और वे रोते हैं॥ ४७॥ रोते हुए उन पापियोंके मुखमें यमदूत धूल भर देते हैं तथा कुछ पापियोंको विविध पाशोंसे बाँधकर मुद्गरोंसे पीटते हैं॥ ४८॥ कुछ पापी आरेसे काष्ठकी भाँति दो टुकड़ोंमें किये जाते हैं और कुछ भूमिपर गिराकर कुल्हाड़ीसे खण्ड-खण्ड किये जाते हैं॥ ४९॥

अर्धं खात्वाऽवटे केचिद्भिद्यन्ते मूर्ध्नि सायकैः। अपरे यन्त्रमध्यस्थाः पीड्यन्ते चेक्षुदण्डवत्॥ ५०॥

केचित् प्रज्वलमानैस्तु साङ्गारैः परितो भृशम्। उल्मुकैर्वेष्टयित्वा च ध्मायन्ते लौहपिण्डवत्॥ ५१॥
केचिद्घृतमये पाके तैलपाके तथाऽपरे। कटाहे क्षिप्तवटवत्प्रक्षिप्यन्ते यतस्ततः॥ ५२॥

कुछको गड्ढेमें आधा गाड़कर सिरमें बाणोंसे भेदन किया जाता है। कुछ दूसरे, पेरनेवाले यन्त्रमें डालकर इक्षुदण्ड (गन्ने)-की भाँति पेरे जाते हैं॥ ५०॥ कुछको चारों ओरसे जलते हुए अंगारोंसे युक्त उल्मुक (जलती हुई लकड़ी)-से ढक करके लौहपिण्डकी भाँति धधकाया जाता है॥ ५१॥ कुछको घीके खौलते हुए कड़ाहेमें, कुछको तेलके कड़ाहेमें तले जाते हुए बड़ेकी भाँति इधर-उधर चलाया जाता है॥ ५२॥

केचिन्मत्तगजेन्द्राणां क्षिप्यन्ते पुरतः पथि। बद्ध्वा हस्तौ च पादौ च क्रियन्ते केऽप्यधोमुखाः॥ ५३॥
क्षिप्यन्ते केऽपि कूपेषु पात्यन्ते केऽपि पर्वतात्। निमग्नाः कृमिकुण्डेषु तुद्यन्ते कृमिभिः परे॥ ५४॥
वज्रतुण्डैर्महाकाकैर्गृध्रैरामिषगृध्नुभिः। निष्कृष्यन्ते शिरोदेशे नेत्रे वास्ये च चञ्चुभिः॥ ५५॥

किन्हींको मतवाले गजेन्द्रोंके सम्मुख रास्तेमें फेंक दिया जाता है, किन्हींको हाथ और पैर बाँधकर अधोमुख लटकाया जाता है॥ ५३॥ किन्हींको कुँएमें फेंका जाता है, किन्हींको पर्वतोंसे गिराया जाता है, कुछ दूसरे कीड़ोंसे युक्त कुण्डोंमें डुबो दिये जाते हैं, जहाँ वे कीड़ोंके द्वारा व्यथित होते हैं॥ ५४॥ कुछ (पापी) वज्रके समान चोंचवाले बड़े-बड़े कौओं, गीधों और मांसभोजी पक्षियोंद्वारा शिरोदेशमें, नेत्रमें और मुखमें चोंचोंसे आघात करके नोंचे जाते हैं॥ ५५॥

ऋणं वै प्रार्थयन्त्यन्ये देहि देहि धनं मम। यमलोके मया दृष्टो धनं मे भक्षितं त्वया॥ ५६॥
एवं विवदमानानां पापिनां नरकालये। छित्त्वा संदंशकैर्दूता मांसखण्डान् ददन्ति च॥ ५७॥
एवं संताड्य तान् दूताः संकृष्य यमशासनात्। तामिस्रादिषु घोरेषु क्षिपन्ति नरकेषु च॥ ५८॥

कुछ दूसरे पापियोंसे ऋणको वापस करनेकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—'मेरा धन दो, मेरा धन दो। यमलोकमें मैंने तुम्हें देख लिया है, मेरा धन तुम्हींने लिया है'॥ ५६॥ नरकमें इस प्रकार विवाद करते हुए पापियोंके अङ्गोंसे सड़सियोंद्वारा मांस नोंचकर (यमदूत) उन्हें देते हैं॥ ५७॥ इस प्रकार उन पापियोंको सम्यक् प्रताडित करके यमकी आज्ञासे यमदूत खींचकर तामिस्र आदि घोर नरकोंमें फेंक देते हैं॥ ५८॥

नरका दुःखबहुलास्तत्र वृक्षसमीपतः। तेष्वस्ति यन्महद्दुःखं तद्वाचामप्यगोचरम्॥ ५९॥
चतुरशीतिलक्षाणि नरकाः सन्ति खेचर। तेषां मध्ये घोरतमा धौरेयास्त्वेकविंशतिः॥ ६०॥

उस वृक्षके समीपमें ही बहुत दुःखोंसे परिपूर्ण नरक हैं, जिनमें प्राप्त होनेवाले महान् दुःखोंका वर्णन वाणीसे नहीं किया जा सकता॥ ५९॥ हे आकाशचारिन् गरुड! नरकोंकी संख्या चौरासी लाख है, उनमेंसे अत्यन्त भयंकर और प्रमुख नरकोंकी संख्या इक्कीस है॥ ६०॥

तामिस्रो लोहशंकुश्च महारौरवशाल्मली। रौरवः कुड्मलः कालसूत्रकः पूतिमृत्तिकः॥ ६१॥

संघातो लोहितोदश्च सविषः संप्रतापनः। महानिरयकाकोलौ सञ्जीवनमहापथौ॥ ६२॥

अवीचिरन्धतामिस्त्रः कुम्भीपाकस्तथैव च। सम्प्रतापननामैकस्तपनस्त्वेकविंशतिः॥ ६३॥
नानापीडामयाः सर्वे नानाभेदैः प्रकल्पिताः। नानापापविपाकाश्च किङ्करौघैरधिष्ठिताः॥ ६४॥

तामिस्त्र, लोहशंकु, महारौरव, शाल्मली, रौरव, कुड्मल, कालसूत्रक, पूतिमृत्तिक, संघात, लोहितोद, सविष, संप्रतापन, महानिरय, काकोल, संजीवन, महापथ, अवीचि, अन्धतामिस्त्र, कुम्भीपाक, सम्प्रतापन तथा तपन—ये इक्कीस नरक हैं॥ ६१—६३॥ ये सभी अनेक प्रकारकी यातनाओंसे परिपूर्ण होनेके कारण अनेक भेदोंसे परिकल्पित हैं। अनेक प्रकारके पापोंका फल इनमें प्राप्त होता है और ये यमके दूतोंसे अधिष्ठित हैं॥ ६४॥

एतेषु पतिता मूढाः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः। यत्र भुञ्जन्ति कल्पान्तः तास्ता नरकयातनाः॥ ६५॥
यास्तामिस्त्रान्धतामिस्त्ररौरवाद्याश्च यातनाः। भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः॥ ६६॥
एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा। विसृज्येहोभयं प्रेत्यभुङ्क्ते तत्फलमीदृशम्॥ ६७॥

इन नरकोंमें गिरे हुए मूर्ख, पापी, अधर्मी जीव कल्पपर्यन्त उन-उन नरक-यातनाओंको भोगते हैं॥ ६५॥ तामिस्त्र और अन्धतामिस्त्र तथा रौरवादि नरकोंकी जो यातनाएँ हैं, उन्हें स्त्री और पुरुष पारस्परिक संगसे निर्मितकर भोगते हैं॥ ६६॥ इस प्रकार कुटुम्बका भरण-पोषण करनेवाला अथवा केवल अपना पेट भरनेवाला भी यहाँ कुटुम्ब और शरीर दोनों छोड़कर मृत्युके अनन्तर इस प्रकारका फल भोगता है॥ ६७॥



रौरव नरक



महारौरव नरक

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम्। कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम्॥ ६८॥

दैवेनासादितं तस्य शमले निरये पुमान्। भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृतद्रव्य इवातुरः॥ ६९॥

प्राणियोंके साथ द्रोह करके भरण-पोषण किये गये अपने (स्थूल) शरीरको यहीं छोड़कर पापकर्मरूपी पाथेयके साथ पापी अकेला ही अंधकारपूर्ण नरकमें जाता है॥ ६८॥ जिसका द्रव्य चोरी चला गया है ऐसे व्यक्तिकी भाँति पापीपुरुष दैवसे प्राप्त (अधर्मपूर्वक) कुटुम्बपोषणके फलको नरकमें आतुर होकर भोगता है॥ ६९॥

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः। याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम्॥ ७०॥

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः। क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्रा व्रजेच्छुचिः॥ ७१॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे यमयातनानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥



केवल अधर्मसे कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये प्रयत्नशील व्यक्ति अंधकारकी पराकाष्ठा अन्धतामिस्र नामक नरकमें जाता है॥ ७०॥ मनुष्यलोकके नीचे नरकोंकी जितनी यातनाएँ हैं, क्रमशः उनका भोग भोगते हुए (वह पापी) शुद्ध होकर पुनः इस मर्त्यलोकमें जन्म पाता है॥ ७१॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'यमयातनानिरूपण' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥



चौथा अध्याय

नरक प्रदान करानेवाले पापकर्म

गरुड उवाच

कैर्गच्छन्ति महामार्गे वैतरण्यां पतन्ति कैः । कैः पापैर्नरके यान्ति तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! किन पापोंके कारण पापी मनुष्य यमलोकके महामार्गमें जाते हैं और किन पापोंसे वैतरणीमें गिरते हैं तथा किन पापोंके कारण नरकमें जाते हैं? वह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

सदैवाकर्मनिरताः शुभकर्मपराङ्मुखाः। नरकान्नरकं यान्ति दुःखाद्दुःखं भयाद्भयम्॥ २ ॥

धर्मराजपुरे यान्ति त्रिभिर्द्वारैस्तु धार्मिकाः। पापास्तु दक्षिणद्वारमार्गेणैव व्रजन्ति तत्॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले—सदा पापकर्मोंमें लगे हुए, शुभ कर्मसे विमुख प्राणी एक नरकसे दूसरे नरकको, एक दुःखके बाद दूसरे दुःखको तथा एक भयके बाद दूसरे भयको प्राप्त होते हैं॥ २॥ धार्मिक जन धर्मराजपुरमें तीन दिशाओंमें स्थित द्वारोंसे जाते हैं और पापी पुरुष दक्षिण-द्वारके मार्गसे वहाँ जाते हैं॥ ३॥

अस्मिन्नेव महादुःखे मार्गे वैतरणी नदी। तत्र ये पापिनो यान्ति तानहं कथयामि ते॥ ४ ॥

ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च गोघ्ना वा बालघातकाः। स्त्रीघाती गर्भपाती च ये च प्रच्छन्नपापिनः॥ ५ ॥

ये हरन्ति गुरोर्द्रव्यं देवद्रव्यं द्विजस्य वा। स्त्रीद्रव्यहारिणो ये च बालद्रव्यहराश्च ये॥ ६ ॥

ये ऋणं न प्रयच्छन्ति ये वै न्यासापहारकाः। विश्वासघातका ये च सविषान्नेन मारकाः॥ ७ ॥
दोषग्राही गुणाश्लाघी गुणवत्सु समत्सराः। नीचानुरागिणो मूढाः सत्सङ्गतिपराङ्मुखाः॥ ८ ॥
तीर्थसज्जनसत्कर्मगुरुदेवविनिन्दकाः। पुराणवेदमीमांसान्यायवेदान्तदूषकाः॥ ९ ॥
हर्षिता दुःखितं दृष्ट्वा हर्षिते दुःखदायकाः। दुष्टवाक्यस्य वक्तारो दुष्टचित्ताश्च ये सदा॥ १० ॥

इसी महादुःखदायी (दक्षिण) मार्गमें वैतरणी नदी है; उसमें जो पापी पुरुष जाते हैं, उन्हें मैं तुम्हें बताता हूँ— ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले, सुरापान करनेवाले, गोघाती, बालहत्यारे, स्त्रीकी हत्या करनेवाले, गर्भपात करनेवाले और गुप्तरूपसे पाप करनेवाले हैं, जो गुरुके धनको हरण करनेवाले, देवता अथवा ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले, स्त्रीद्रव्यहारी, बालद्रव्यहारी हैं, जो ऋण लेकर उसे न लौटानेवाले, धरोहरका अपहरण करनेवाले, विश्वासघात करनेवाले, विषान्न देकर मार डालनेवाले, दूसरेके दोषको ग्रहण करनेवाले, गुणोंकी प्रशंसा न करनेवाले, गुणवानोंके साथ डाह रखनेवाले, नीचोंके साथ अनुराग रखनेवाले, मूढ, सत्संगतिसे दूर रहनेवाले हैं, जो तीर्थों, सज्जनों, सत्कर्मों, गुरुजनों और देवताओंकी निन्दा करनेवाले हैं, पुराण, वेद, मीमांसा, न्याय और वेदान्तको दूषित करनेवाले हैं ॥ ५—९ ॥ दुःखी व्यक्तिको देखकर प्रसन्न होनेवाले, प्रसन्नको दुःख देनेवाले, दुर्वचन बोलनेवाले तथा सदा दूषित चित्तवृत्तिवाले हैं ॥ १० ॥

न शृण्वन्ति हितं वाक्यं शास्त्रवार्तां कदापि न। आत्मसम्भाविताः स्तब्धा मूढाः पण्डितमानिनः॥ ११॥
एते चान्ये च बहवः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः। गच्छन्ति यममार्गे हि रोदमाना दिवानिशम्॥ १२॥
यमदूतैस्ताड्यमाना यान्ति वैतरणीं प्रति। तस्यां पतन्ति ये पापास्तानहं कथयामि ते॥ १३॥

जो हितकर वाक्य और शास्त्रीय वचनोंको कभी न सुननेवाले, अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले, घमण्डी, मूर्ख होते हुए अपनेको विद्वान् समझनेवाले हैं—ये तथा अन्य बहुत पापोंका अर्जन करनेवाले अधर्मी जीव रात-दिन रोते हुए यममार्गमें जाते हैं॥ ११-१२॥ यमदूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए (वे पापी) वैतरणीकी ओर जाते हैं और उसमें गिरते हैं, ऐसे उन पापियोंके विषयमें मैं तुम्हें बताता हूँ—॥ १३॥

मातरं येऽवमन्यन्ते पितरं गुरुमेव च। आचार्यं चापि पूज्यं च तस्यां मज्जन्ति ते नराः॥ १४॥
पतिव्रतां साधुशीलां कुलीनां विनयान्विताम्। स्त्रियं त्यजन्ति ये द्वेषाद्वैतरण्यां पतन्ति ते॥ १५॥
सतां गुणसहस्रेषु दोषानारोपयन्ति ये। तेष्ववज्ञां च कुर्वन्ति वैतरण्यां पतन्ति ते॥ १६॥

जो माता, पिता, गुरु, आचार्य तथा पूज्यजनोंको अपमानित करते हैं, वे मनुष्य वैतरणीमें डूबते हैं॥ १४॥ जो पुरुष पतिव्रता, सच्चरित्र, उत्तम कुलमें उत्पन्न, विनयसे युक्त स्त्रीको द्वेषके कारण छोड़ देते हैं, वे वैतरणीमें पड़ते हैं॥ १५॥ जो हजारों गुणोंके होनेपर भी सत्पुरुषोंमें दोषका आरोपण करते हैं और उनकी अवहेलना करते हैं, वे वैतरणीमें पड़ते हैं॥ १६॥

ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः। आहूय नास्ति यो ब्रूयात्तयोर्वासश्च सन्ततम्॥ १७॥

स्वयं दत्ताऽपहर्ता च दानं दत्वाऽनुतापकः। परवृत्तिहरश्चैव दाने दत्ते निवारकः॥ १८॥
यज्ञविध्वंसकश्चैव कथाभङ्गकरश्च यः। क्षेत्रसीमाहरश्चैव यश्च गोचरकर्षकः॥ १९॥
ब्राह्मणो रसविक्रेता यदि स्याद् वृषलीपतिः। वेदोक्तयज्ञादन्यत्र स्वात्मार्थं पशुमारकः॥ २०॥
ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टो मांसभोक्ता च मद्यपः। उच्छृङ्खलस्वभावो यः शास्त्राध्ययनवर्जितः॥ २१॥
वेदाक्षरं पठेच्छूद्रः कापिलं यः पयः पिबेत्। धारयेद् ब्रह्मसूत्रं च भवेद्वा ब्राह्मणीपतिः॥ २२॥
राजभार्याऽभिलाषी च परदारापहारकः। कन्यायां कामुकश्चैव सतीनां दूषकश्च यः॥ २३॥

वचन दे करके जो ब्राह्मणको यथार्थरूपमें दान नहीं देता है और बुला करके जो व्यक्ति 'नहीं है' ऐसा कहता है, वे दोनों सदा वैतरणीमें निवास करते हैं॥ १७॥ स्वयं दी हुई वस्तुका जो अपहरण कर लेता है, दान देकर पश्चात्ताप करता है, जो दूसरेकी आजीविकाका हरण करता है, दान देनेसे रोकता है, यज्ञका विध्वंस करता है, कथा-भङ्ग करता है, क्षेत्रकी सीमाका हरण कर लेता है और जो गोचरभूमिको जोतता है, वह वैतरणीमें पड़ता है। ब्राह्मण होकर रसविक्रय करनेवाला, वृषलीका पति (शूद्र स्त्रीका ब्राह्मणपति), वेदप्रतिपादित यज्ञके अतिरिक्त अपने लिये पशुओंकी हत्या करनेवाला, ब्रह्मकर्मसे च्युत, मांसभोजी, मद्य पीनेवाला, उच्छृङ्खल स्वभाववाला, शास्त्रके अध्ययनसे रहित (ब्राह्मण), वेद पढ़नेवाला शूद्र, कपिलाका दूध पीनेवाला शूद्र, यज्ञोपवीत धारण

करनेवाला शूद्र, ब्राह्मणीका पति बननेवाला शूद्र, राजमहिषीके साथ व्यभिचार करनेवाला, परायी स्त्रीका अपहरण करनेवाला, कन्याके साथ कामाचारकी इच्छा रखनेवाला तथा जो सतीत्व नष्ट करनेवाला है— ॥ १८—२३ ॥

एते चाऽन्ये च बहवो निषिद्धाचरणोत्सुकाः। विहितत्यागिनो मूढा वैतरण्यां पतन्ति ते॥ २४॥
सर्वं मार्गमतिक्रम्य यान्ति पापा यमालये। पुनर्यमाज्ञयाऽऽगत्य दूतास्तस्यां क्षिपन्ति तान्॥ २५॥
या वै धुरन्धरा सर्वधौरेयाणां खगाधिप। अतस्तस्यां प्रक्षिपन्ति वैतरण्यां च पापिनः॥ २६॥

ये सभी तथा इसी प्रकार और भी बहुत निषिद्धाचरण करनेमें उत्सुक तथा शास्त्रविहित कर्मोंको त्यागनेवाले वे मूढजन वैतरणीमें गिरते हैं॥ २४॥ सभी मार्गोंको पार करके पापी यमके भवनमें पहुँचते हैं और पुनः यमकी आज्ञासे आकर दूत लोग उन्हें वैतरणीमें फेंक देते हैं॥ २५॥ हे खगराज! यह वैतरणी नदी (कष्ट प्रदान करनेवाले) सभी प्रमुख नरकोंमें भी सर्वाधिक कष्टप्रद है। इसलिये यमदूत पापियोंको उस वैतरणीमें फेंकते हैं॥ २६॥

कृष्णा गौर्यदि नो दत्ता नौर्ध्वदेहक्रियाकृताः। तस्यां भुक्त्वा महद् दुःखं यान्ति वृक्षं तटोद्भवम्॥ २७॥
कूटसाक्ष्यप्रदातारः कूटधर्मपरायणाः। छलेनार्जनसंसक्ताश्चौर्यवृत्त्या च जीविनः॥ २८॥
छेदयन्त्यतिवृक्षांश्च वनारामविभञ्जकाः। व्रतं तीर्थं परित्यज्य विधवाशीलनाशकाः॥ २९॥

जिसने अपने जीवनकालमें कृष्णा (काली) गौका दान नहीं किया अथवा मृत्युके पश्चात् जिसके उद्देश्यसे बान्धवोंद्वारा कृष्णा गौ नहीं दी गयी तथा जिसने अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं कर ली या जिसके उद्देश्यसे

और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं की गयी हो, वे वैतरणीमें महान् दुःख भोग करके वैतरणी तटस्थित शाल्मली-वृक्षमें जाते हैं॥ २७॥ जो झूठी गवाही देनेवाले, धर्मपालनका ढोंग करनेवाले, छलसे धनका अर्जन करनेवाले, चोरीद्वारा आजीविका चलानेवाले, अत्यधिक वृक्षोंको काटनेवाले, बन और वाटिकाको नष्ट करनेवाले, व्रत और तीर्थका परित्याग करनेवाले, विधवाके शीलको नष्ट करनेवाले हैं॥ २८-२९॥

भर्तारं दूषयेन्नारी परं मनसि धारयेत्। इत्याद्याः शाल्मलीवृक्षे भुञ्जन्ते बहुताडनम्॥ ३०॥
ताडनात् पतितान् दूताः क्षिपन्ति नरकेषु तान्। पतन्ति तेषु ये पापास्तानहं कथयामि ते॥ ३१॥
नास्तिका भिन्नमर्यादाः कदर्या विषयात्मकाः। दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै नरकगामिनः॥ ३२॥
कूपानां च तडागानां वापीनां देवसद्मनाम्। प्रजागृहाणां भेत्तारस्ते वै नरकगामिनः॥ ३३॥

जो स्त्री अपने पतिको दोष लगाकर परपुरुषमें आसक्त होनेवाली है—ये सभी और इस प्रकारके अन्य पापी भी शाल्मली-वृक्षद्वारा बहुत ताडना प्राप्त करते हैं॥ ३०॥ पीटनेसे नीचे गिरे हुए उन पापियोंको यमदूत नरकोंमें फेंकते हैं। उन नरकोंमें जो पापी गिरते हैं, उनके विषयमें मैं तुम्हें बतलाता हूँ—॥ ३१॥ (वेदकी निन्दा करनेवाले) नास्तिक, मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले, कंजूस, विषयोंमें डूबे रहनेवाले, दम्भी तथा कृतघ्न मनुष्य निश्चय ही नरकोंमें गिरते हैं॥ ३२॥ जो कुँआ, तालाब, बावली, देवालय तथा सार्वजनिक स्थान (धर्मशाला आदि)-को नष्ट

* इन पाँचों देवोंको शास्त्रमें परब्रह्म माना गया है। इसीलिये पञ्चदेवोपासनाका विधान है।

करते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं ॥ ३३ ॥

विसृज्याश्नन्ति ये दाराञ्छिशून् भृत्यांस्तथा गुरून्। उत्सृज्य पितृदेवेज्यां ते वै नरकगामिनः ॥ ३४ ॥

शंकुभिः सेतुभिः काष्ठैः पाषाणैः कण्टकैस्तथा। ये मार्गमुपरुन्धन्ति ते वै नरकगामिनः ॥ ३५ ॥

स्त्रियों, छोटे बच्चों, नौकरों तथा श्रेष्ठजनोंको छोड़कर एवं पितरों और देवताओंकी पूजाका परित्याग करके जो भोजन करते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥ ३४ ॥ जो मार्गको कीलोंसे, पुलोंसे, लकड़ियोंसे तथा पत्थरों एवं काँटोंसे रोकते हैं, निश्चय ही वे नरकगामी होते हैं ॥ ३५ ॥

शिवं शिवां हरिं सूर्यं गणेशं सद्गुरुं बुधम्। न पूजयन्ति ये मन्दास्ते वै नरकगामिनः ॥ ३६ ॥

आरोप्य दासीं शयने विप्रो गच्छेदधोगतिम्। प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ३७ ॥

न नमस्कारयोग्यो हि स कदापि द्विजोऽधमः। तं पूजयन्ति ये मूढास्ते वै नरकगामिनः ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणानां च कलहं गोयुद्धं कलहप्रियाः। न वर्जन्त्यनुमोदन्ते ते वै नरकगामिनः ॥ ३९ ॥

अनन्यशरणास्त्रीणां ऋतुकालव्यतिक्रमम्। ये प्रकुर्वन्ति विद्वेषात्ते वै नरकगामिनः ॥ ४० ॥

येऽपि गच्छन्ति कामान्धा नरा नारीं रजस्वलाम्। पर्वस्वप्सु दिवा श्राद्धे ते वै नरकगामिनः ॥ ४१ ॥

जो मन्द पुरुष भगवान् शिव, भगवती शक्ति, नारायण, सूर्य, गणेश,* सद्गुरु और विद्वान्—इनकी पूजा नहीं करते, वे नरकमें जाते हैं ॥ ३६ ॥ दासीको अपनी शय्यापर आरोपित करनेसे ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है

और शूद्रामें संतान उत्पन्न करनेसे वह ब्राह्मणत्वसे ही च्युत हो जाता है। वह ब्राह्मणाधम कभी भी नमस्कारके योग्य नहीं होता। जो मूर्ख ऐसे ब्राह्मणकी पूजा करते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ३७-३८॥ दूसरोंके कलहसे प्रसन्न होनेवाले जो मनुष्य ब्राह्मणोंके कलह तथा गौओंकी लड़ाईको नहीं रुकवाते हैं (प्रत्युत ऐसा देखकर प्रसन्न होते हैं) अथवा उसका समर्थन करते हैं, बढ़ावा देते हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं॥ ३९॥ जिसका कोई दूसरा शरण नहीं है, ऐसी पतिपरायणा स्त्रीके ऋतुकालकी द्वेषवश उपेक्षा करनेवाले निश्चित ही नरकगामी होते हैं॥ ४०॥ जो कामान्ध पुरुष रजस्वला स्त्रीसे गमन करते हैं अथवा पर्वके दिनों (अमावास्या, पूर्णिमा आदि)-में, जलमें, दिनमें तथा श्राद्धके दिन कामुक होकर स्त्रीसंग करते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४१॥

ये शारीरं मलं वह्नौ प्रक्षिपन्ति जलेऽपि च। आरामे पथि गोष्ठे वा ते वै नरकगामिनः॥ ४२॥
शस्त्राणां ये च कर्तारः शराणां धनुषां तथा। विक्रेतारश्च ये तेषां ते वै नरकगामिनः॥ ४३॥
चर्मविक्रयिणो वैश्याः केशविक्रेयकाः स्त्रियः। विषविक्रयिणः सर्वे ते वै नरकगामिनः॥ ४४॥

जो अपने शरीरके मलको आग, जल, उपवन, मार्ग अथवा गोशालामें फेंकते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं॥ ४२॥ जो हथियार बनानेवाले, बाण और धनुषका निर्माण करनेवाले तथा इनका विक्रय करनेवाले हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४३॥ चमड़ा बेचनेवाले वैश्य, केश (योनि)-का विक्रय करनेवाली स्त्रियाँ तथा विषका विक्रय करनेवाले—ये सभी नरकमें जाते हैं॥ ४४॥

अनाथं नाऽनुकम्पन्ति ये सतां द्वेषकारकाः। विनाऽपराधं दण्डन्ति ते वै नरकगामिनः॥ ४५॥

आशया समनुप्राप्तान् ब्राह्मणानर्थिनो गृहे। न भोजयन्ति पाकेऽपि ते वै नरकगामिनः॥ ४६॥
सर्वभूतेष्वविश्वस्तास्तथा तेषु विनिर्दयाः। सर्वभूतेषु जिह्मा ये ते वै नरकगामिनः॥ ४७॥
नियमान्समुपादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः। विग्लापयन्ति तान् भूयस्ते वै नरकगामिनः॥ ४८॥

जो अनाथके ऊपर कृपा नहीं करते हैं, सत्पुरुषोंसे द्वेष करते हैं और निरपराधको दण्ड देते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४५॥ आशा लगाकर घरपर आये हुए ब्राह्मणों और याचकोंको पाकसम्पन्न (भोजनके बने) रहनेपर भी जो भोजन नहीं कराते, वे निश्चय ही नरक प्राप्त करनेवाले होते हैं॥ ४६॥ जो सभी प्राणियोंमें विश्वास नहीं करते और उनपर दया नहीं करते तथा जो सभी प्राणियोंके प्रति कुटिलताका व्यवहार करते हैं, वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं॥ ४७॥ जो अजितेन्द्रिय पुरुष नियमोंको स्वीकार करके बादमें उन्हें त्याग देते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४८॥

अध्यात्मविद्यादातारं नैव मन्यन्ति ये गुरुम्। तथा पुराणवक्तारं ते वै नरकगामिनः॥ ४९॥
मित्रद्रोहकरा ये च प्रीतिच्छेदकराश्च ये। आशाच्छेदकरा ये च ते वै नरकगामिनः॥ ५०॥
विवाहं देवयात्रां च तीर्थसार्थान्विलुम्पति। स वसेन्नरके घोरे तस्मान्नावर्तनं पुनः॥ ५१॥

जो अध्यात्मविद्या प्रदान करनेवाले गुरुको नहीं मानते और जो पुराणवक्ताको नहीं मानते, वे नरकमें जाते हैं॥ ४९॥ जो व्यक्ति मित्रसे द्रोह करते हैं, जो व्यक्तियोंकी आपसी प्रीतिका भेदन करते हैं तथा जो दूसरेकी

आशाको नष्ट करते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं॥ ५०॥ विवाहको भङ्ग करनेवाला, देवयात्रामें विघ्न करनेवाला तथा तीर्थयात्रियोंको लूटनेवाला घोर नरकमें वास करता है और वहाँसे उसका पुनरावर्तन नहीं होता॥ ५१॥

अग्निं दद्यान्महापापी गृहे ग्रामे तथा वने। स नीतो यमदूतैश्च वह्निकुण्डेषु पच्यते॥ ५२॥
अग्निना दग्धगात्रोऽसौ यदा छायां प्रयाचते। नीयते च तदा दूतैरसिपत्रवनान्तरे॥ ५३॥
खड्गतीक्ष्णैश्च तत्पत्रैर्गात्रच्छेदो यदा भवेत्। तदोचुः शीतलच्छाये सुखनिद्रां कुरुष्व भो॥ ५४॥

जो महापापी घर, गाँव तथा जंगलमें आग लगाता है, यमदूत उसे ले जाकर अग्निकुण्डोंमें पकाते हैं॥ ५२॥ इस अग्निसे जले हुए अङ्गवाला वह पापी जब छायाकी याचना करता है तो यमदूत उसे असिपत्र नामक वनमें ले जाते हैं॥ ५३॥ जहाँ तलवारके समान तीक्ष्ण पत्तोंसे उसके अङ्ग जब कट जाते हैं, तब यमदूत उससे कहते हैं—रे पापी! शीतल छायामें सुखकी नींद सो॥ ५४॥

पानीयं पातुमिच्छन्वै तृषार्तो यदि याचते। पानार्थं तैलमत्युष्णं तदा दूतैः प्रदीयते॥ ५५॥
पीयतां भुज्यतां पानमन्नमूचुस्तदेति ते। पीतमात्रेण तेनैव दग्धान्त्रा निपतन्ति ते॥ ५६॥
कथञ्चित्पुनरुत्थाय प्रलपन्ति सुदीनवत्। विवशा उच्छ्वसन्तश्च ते वक्तुमपि नाशकन्॥ ५७॥

जब वह प्याससे व्याकुल होकर जल पीनेकी इच्छासे पानी माँगता है तो दूतोंके द्वारा उसे खौलता हुआ तेल पीनेके लिये दिया जाता है॥ ५५॥ 'पानी पीयो और अन्न खाओ'—ऐसा उस समय उनके द्वारा कहा जाता है।

उस अति उष्ण तेलके पीते ही उनकी आँतें जल जाती हैं और वे गिर पड़ते हैं॥ ५६॥ किसी प्रकार पुनः उठकर अत्यन्त दीनकी भाँति प्रलाप करते हैं। विवश होकर ऊर्ध्व श्वास लेते हुए वे कुछ कहनेमें भी समर्थ नहीं होते॥ ५७॥

इत्येवं बहुशस्तार्क्ष्य यातनाः पापिनां स्मृताः। किमेतैर्विस्तरात्प्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः॥ ५८॥
एवं वै क्लिश्यमानास्ते नरा नार्यः सहस्रशः। पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ५९॥
तस्याक्षयं फलं भुक्त्वा तत्रैवोत्पद्यते पुनः। यमाज्ञया महीं प्राप्य भवन्ति स्थावरादयः॥ ६०॥

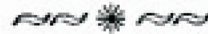
हे तार्क्ष्य! इस प्रकारकी पापियोंकी बहुत-सी यातनाएँ बतायी गयी हैं। विस्तारपूर्वक इन्हें कहनेकी क्या आवश्यकता? इनके सम्बन्धमें सभी शास्त्रोंमें कहा गया है॥ ५८॥ इस प्रकार हजारों नर-नारी नारकीय यातनाको भोगते हुए प्रलयपर्यन्त घोर नरकोंमें पकते रहते हैं॥ ५९॥ उस पापका अक्षय फल भोगकर पुनः वहीं पैदा होते हैं और यमकी आज्ञासे पृथ्वीपर आकर स्थावर आदि योनियोंको प्राप्त करते हैं॥ ६०॥

वृक्षगुल्मलतावल्लीगिरयश्च तृणानि च। स्थावरा इति विख्याता महामोहतमावृताः॥ ६१॥
कीटाश्च पशवश्चैव पक्षिणश्च जलेचराः। चतुरशीतिलक्षेषु कथिता देवयोनयः॥ ६२॥

वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, गिरि (पर्वत) तथा तृण आदि ये स्थावर योनियाँ कही गयी हैं; ये अत्यन्त मोहसे आवृत हैं॥ ६१॥ कीट, पशु-पक्षी, जलचर तथा देव—इन योनियोंको मिलाकर चौरासी लाख योनियाँ कही गयी हैं॥ ६२॥

एताः सर्वाः परिभ्रम्य ततो यान्ति मनुष्यताम्।
मानुषेऽपि श्वपाकेषु जायन्ते नरकागताः। तत्रापि पापचिह्नैस्ते भवन्ति बहुदुःखिताः॥ ६३॥
गलत्कुष्ठाश्च जन्मान्धा महारोगसमाकुलाः। भवन्त्येवं नरा नार्यः पापचिह्नोपलक्षिताः॥ ६४॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे नरकप्रदपापचिह्ननिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥



इन सभी योनियोंमें घूमते हुए जीव मनुष्ययोनि प्राप्त करते हैं और मनुष्ययोनिमें भी नरकसे आये व्यक्ति चाण्डालके घरमें जन्म लेते हैं तथा उसमें भी (कुष्ठ आदि) पापचिह्नोंसे वे बहुत दुःखी रहते हैं। किसीको गलित कुष्ठ हो जाता है, कोई जन्मसे अन्धे होते हैं और कोई महारोगसे व्यथित होते हैं। इस प्रकार पुरुष और स्त्रीमें पापके चिह्न दिखायी पड़ते हैं॥ ६३-६४॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'नरकप्रदपापचिह्ननिरूपण' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥



पाँचवाँ अध्याय

कर्मविपाकवश मनुष्यको अनेक योनियों और विविध रोगोंकी प्राप्ति

गरुड उवाच

येन येन च पापेन यद्यच्चिह्नं प्रजायते। यां यां योनिं च गच्छन्ति तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! जिस-जिस पापसे जो-जो चिह्न प्राप्त होते हैं और जिन-जिन योनियोंमें जीव जाते हैं, वह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

यैः पापैर्यान्ति यां योनिं पापिनो नरकागताः। येन पापेन यच्चिह्नं जायते मम तच्छृणु॥ २ ॥
ब्रह्महा क्षयरोगी स्याद् गोघ्नः स्यात्कुब्जको जडः। कन्याघाती भवेत्कुष्ठी त्रयश्चाण्डालयोनिषु॥ ३ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—नरकसे आये हुए पापी जिन पापोंके द्वारा जिस योनिमें जाते हैं और जिस पापसे जो चिह्न होता है, वह मुझसे सुनो॥ २॥ ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होता है, गायकी हत्या करनेवाला मूर्ख और कुबड़ा होता है। कन्याकी हत्या करनेवाला कोढ़ी होता है और ये तीनों पापी चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं॥ ३॥

realpatidar.com

स्त्रीघाती गर्भपाती च पुलिन्दो रोगवान् भवेत्। अगम्यागमनात्षण्ढो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः॥ ४ ॥

मांसभोक्ताऽतिरक्ताङ्गः श्यावदन्तस्तु मद्यपः। अभक्ष्यभक्षको लौल्याद् ब्राह्मणः स्यान्महोदरः॥ ५ ॥
अदत्त्वा मिष्टमश्नाति स भवेद्गलगण्डवान्। श्राद्धेऽन्नमशुचिं दत्त्वा श्वित्रकुष्ठी प्रजायते॥ ६ ॥

स्त्रीकी हत्या करनेवाला तथा गर्भपात करानेवाला पुलिन्द (भिल्ल) होकर रोगी होता है। परस्त्रीगमन करनेवाला नपुंसक और गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला चर्मरोगी होता है॥ ४॥ मांसका भोजन करनेवालेका अङ्ग अत्यन्त लाल होता है, मद्य पीनेवालेके दाँत काले (कपिशवर्णके) होते हैं, लालचवश अभक्ष्यभक्षण करनेवाले ब्राह्मणको महोदररोग होता है॥ ५॥ जो दूसरेको दिये बिना मिष्टान्न खाता है, उसे गलेमें गण्डमाला-रोग होता है, श्राद्धमें अपवित्र अन्न देनेवाला श्वेतकुष्ठी होता है॥ ६॥

गुरोर्गर्वेणावमानादपस्मारी भवेन्नरः। निन्दको वेदशास्त्राणां पाण्डुरोगी भवेद् ध्रुवम्॥ ७ ॥
कूटसाक्षी भवेन्मूकः काणः स्यात्पंक्तिभेदकः। अनोष्ठः स्याद्विवाहघ्नो जन्मान्धः पुस्तकं हरेत्॥ ८ ॥
गोब्राह्मणपदाघातात्खञ्जः पङ्गुश्च जायते। गद्गदोऽनृतवादी स्यात्तच्छ्रोता बधिरो भवेत्॥ ९ ॥

गर्वसे गुरुका अपमान करनेवाला मनुष्य मिरगीका रोगी होता है। वेदशास्त्रकी निन्दा करनेवाला निश्चित ही पाण्डुरोगी होता है॥ ७॥ झूठी गवाही देनेवाला गूँगा, पंक्तिभेद[1] करनेवाला काना, विवाहमें विघ्न करनेवाला व्यक्ति

१. जनसमूहमें किसी भी व्यक्ति-विशेषके प्रति किया जानेवाला पक्षपात पंक्तिभेद है।





किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

ओष्ठरहित और पुस्तक चुरानेवाला जन्मान्ध होता है॥ ८॥ गाय और ब्राह्मणको पैरसे मारनेवाला लूला-लँगड़ा होता है, झूठ बोलनेवाला हकलाकर बोलता है तथा झूठी बात सुननेवाला बहरा होता है॥ ९॥

गरदः स्याज्जडोन्मत्तः खल्वाटोऽग्निप्रदायकः। दुर्भगः पलविक्रेता रोगवान् परमांसभुक्॥ १०॥
हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः। कुनखी स्वर्णहर्ता स्याद्धातुमात्रहरोऽधनः॥ ११॥
अन्नहर्ता भवेदाखुः शलभो धान्यहारकः। चातको जलहर्ता स्याद्विषहर्ता च वृश्चिकः॥ १२॥
शाकं पत्रं शिखी हृत्वा गन्धांश्छुच्छुन्दरी शुभान्। मधुदंशः पलं गृध्रो लवणं च पिपीलिका॥ १३॥

विष देनेवाला मूर्ख और उन्मत्त (पागल) तथा आग लगानेवाला खल्वाट (गंजा) होता है। पल (मांस) बेचनेवाला अभागा और दूसरेका मांस खानेवाला रोगी होता है॥ १०॥ रत्नोंका अपहरण करनेवाला हीनजातिमें उत्पन्न होता है, सोना चुरानेवाला नखरोगी और अन्य धातुओंको चुरानेवाला निर्धन होता है॥ ११॥ अन्न चुरानेवाला चूहा और धान चुरानेवाला शलभ (टिड्डी) होता है। जलकी चोरी करनेवाला चातक और विषका व्यवहार करनेवाला वृश्चिक (बिच्छू) होता है॥ १२॥ शाक-पात चुरानेवाला मयूर होता है, शुभ गन्धवाली वस्तुओंको चुरानेवाला छुछुन्दरी होता है, मधु चुरानेवाला डाँस, मांस चुरानेवाला गीध और नमक चुरानेवाला चींटी होता है॥ १३॥

ताम्बूलफलपुष्पादिहर्ता स्याद्वानरो वने। उपानत्तृणकार्पासहर्ता स्यान्मेषयोनिषु॥ १४॥
यश्च रौद्रोपजीवी च मार्गे सार्थान्विलुम्पति। मृगयाव्यसनीयस्तु छागः स्याद्वधिके गृहे॥ १५॥





किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

ताम्बूल, फल तथा पुष्प आदिकी चोरी करनेवाला वनमें बंदर होता है। जूता, घास तथा कपासको चुरानेवाला भेड़योनिमें उत्पन्न होता है॥ १४॥ जो रौद्रकर्मों (क्रूरकर्मों)-से आजीविका चलानेवाला है, मार्गमें यात्रियोंको लूटता है और जो आखेटका व्यसन रखनेवाला है, वह कसाईके घरका बकरा होता है॥ १५॥

यो मृतो विषपानेन कृष्णसर्पो भवेद् गिरौ। निरंकुशस्वभावः स्यात् कुञ्जरो निर्जने वने॥ १६॥
वैश्वदेवमकर्तारः सर्वभक्षाश्च ये द्विजाः। अपरीक्षितभोक्तारो व्याघ्राः स्युर्निर्जने वने॥ १७॥
गायत्रीं न स्मरेद्यस्तु यो न सन्ध्यामुपासते। अन्तर्दुष्टो बहिः साधुः स भवेद् ब्राह्मणो बकः॥ १८॥

विष पीकर मरनेवाला पर्वतपर काला नाग होता है। जिसका स्वभाव अमर्यादित है, वह निर्जन वनमें हाथी होता है॥ १६॥ बलिवैश्वदेव न करनेवाले तथा सब कुछ खा लेनेवाले द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) और बिना परीक्षण किये भोजन कर लेनेवाले व्यक्ति निर्जन वनमें व्याघ्र होते हैं॥ १७॥ जो ब्राह्मण गायत्रीका स्मरण नहीं करता और जो संध्योपासन नहीं करता, जिसका अन्तःस्वरूप दूषित तथा बाह्य स्वरूप साधुकी तरह प्रतीत होता है, वह ब्राह्मण बगुला होता है॥ १८॥

अयाज्ययाजको विप्रः स भवेद् ग्रामसूकरः। खरो वै बहुयाजित्वात्काकोऽनिर्मन्त्रभोजनात्॥ १९॥
पात्रे विद्यामदाता च बलीवर्दो भवेद् द्विजः। गुरुसेवामकर्ता च शिष्यः स्याद् गोखरः पशुः॥ २०॥
गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। अरण्ये निर्जले देशे जायते ब्रह्मराक्षसः॥ २१॥

जिनको यज्ञ नहीं करना चाहिये, उनके यहाँ यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण गाँवका सूअर होता है, क्षमतासे अधिक यज्ञ करानेवाला गर्दभ तथा बिना आमन्त्रणके भोजन करनेवाला कौआ होता है॥ १९॥ जो सत्पात्र शिष्यको विद्या नहीं प्रदान करता, वह ब्राह्मण बैल होता है। गुरुकी सेवा न करनेवाला शिष्य बैल और गधा होता है॥ २०॥ गुरुके प्रति (अपमानके तात्पर्यसे) हुं या तुं शब्दोंका उच्चारण करनेवाला और वाद-विवादमें ब्राह्मणको पराजित करनेवाला जलविहीन अरण्यमें ब्रह्मराक्षस होता है॥ २१॥

प्रतिश्रुतं द्विजे दानमदत्त्वा जम्बुको भवेत्। सतामसत्कारकरः फेत्कारोऽग्निमुखो भवेत्॥ २२॥
मित्रध्रुग्गिरिगृध्रः स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात्। वर्णाश्रमपरीवादात्कपोतो जायते वने॥ २३॥
आशाच्छेदकरो यस्तु स्नेहच्छेदकरस्तु यः। यो द्वेषात् स्त्रीपरित्यागी चक्रवाकश्चिरं भवेत्॥ २४॥

प्रतिज्ञा करके द्विजको दान न देनेवाला सियार होता है। सत्पुरुषोंका अनादर करनेवाला व्यक्ति अग्निमुख सियार होता है॥ २२॥ मित्रसे द्रोह करनेवाला पर्वतका गीध होता है और क्रयमें धोखा देनेवाला उल्लू होता है। वर्णाश्रमकी निन्दा करनेवाला वनमें कपोत होता है॥ २३॥ आशाको तोड़नेवाला और स्नेहको नष्ट करनेवाला, द्वेषवश स्त्रीका परित्याग कर देनेवाला बहुत कालतक चक्रवाक (चकोर) होता है॥ २४॥

मातृपितृगुरुद्वेषी भगिनीभ्रातृवैरकृत्। गर्भे योनौ विनष्टः स्याद्यावद्योनिसहस्रशः॥ २५॥
श्वश्रोऽपशब्ददा नारी नित्यं कलहकारिणी। सा जलौका च यूका स्याद्भर्तारं भर्त्सते च या॥ २६॥

स्वपतिं च परित्यज्य परपुंसानुवर्तिनी। वल्गुनी गृहगोधा स्याद् द्विमुखी वाऽथ सर्पिणी॥ २७॥

माता-पिता, गुरुसे द्वेष करनेवाला तथा बहन और भाईसे शत्रुता करनेवाला हजारों जन्मोंतक गर्भमें या योनिमें नष्ट होता रहता है॥ २५॥ सास-श्वशुरको अपशब्द कहनेवाली स्त्री तथा नित्य कलह करनेवाली स्त्री जलौका (जलजोंक) होती है और पतिकी भर्त्सना करनेवाली नारी जूँ होती है॥ २६॥ अपने पतिका परित्याग करके परपुरुषका सेवन करनेवाली स्त्री वल्गुनी (चमगीदड़ी), छिपकली अथवा दो मुँहवाली सर्पिणी होती है॥ २७॥

यः स्वगोत्रोपघाती च स्वगोत्रस्त्रीनिषेवणात्। तरक्षः शल्लको भूत्वा ऋक्षयोनिषु जायते॥ २८॥
तापसीगमनात् कामी भवेन्मरुपिशाचकः। अप्राप्तयौवनासंगाद् भवेदजगरो वने॥ २९॥
गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेन्नरः। राज्ञीं गत्वा भवेदुष्ट्रो मित्रपत्नीं च गर्दभः॥ ३०॥

सगोत्रकी स्त्रीके साथ सम्बन्ध बनाकर अपने गोत्रको विनष्ट करनेवाला तरक्ष (लकड़बग्घा) और शल्लक (शाही) होकर रीछ-योनिमें जन्म लेता है॥ २८॥ तापसीके साथ व्यभिचार करनेवाला कामी पुरुष मरुप्रदेशमें पिशाच होता है और अप्राप्तयौवनासे सम्बन्ध करनेवाला वनमें अजगर होता है॥ २९॥ गुरुपत्नीके साथ गमनकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य कृकलास (गिरगिट) होता है। राजपत्नीके साथ गमन करनेवाला ऊँट तथा मित्रकी पत्नीके साथ गमन करनेवाला गधा होता है॥ ३०॥

गुदगो विड्वराहः स्याद् वृषः स्याद् वृषलीपतिः। महाकामी भवेद् यस्तु स्यादश्वः कामलम्पटः॥ ३१॥
मृतस्यैकादशाहं तु भुञ्जानः श्वा विजायते। लभेद्देवलको विप्रो योनिं कुक्कुटसंज्ञकाम्॥ ३२॥
द्रव्यार्थं देवतापूजां यः करोति द्विजाधमः। स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः॥ ३३॥

गुदा-गमन करनेवाला विष्ठाभोगी सूअर तथा शूद्रागामी बैल होता है। जो महाकामी होता है, वह कामलम्पट घोड़ा होता है॥ ३१॥ किसीके मरणाशौचमें एकादशाहतक भोजन करनेवाला कुत्ता होता है। देवद्रव्यभोक्ता देवलक ब्राह्मण मुर्गेकी योनि प्राप्त करता है॥ ३२॥ जो ब्राह्मणाधम द्रव्यार्जनके लिये देवताकी पूजा करता है, वह देवलक कहलाता है। वह देवकार्य तथा पितृकार्यके लिये निन्दनीय है॥ ३३॥

महापातकजान् घोरान्नरकान् प्राप्य दारुणान्। कर्मक्षये प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह॥ ३४॥
खरोष्ट्रमहिषीणां हि ब्रह्महा योनिमृच्छति। वृकश्वानशृगालानां सुरापा यान्ति योनिषु॥ ३५॥
कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णस्तेयी समाप्नुयात्। तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः॥ ३६॥

महापातकसे प्राप्त अत्यन्त घोर एवं दारुण नरकोंका भोग प्राप्त करके महापातकी (व्यक्ति) कर्मके क्षय होनेपर पुनः इस (मर्त्य) लोकमें जन्म लेते हैं॥ ३४॥ ब्रह्महत्यारा गधा, ऊँट और महिषीकी योनि प्राप्त करता है तथा सुरापान करनेवाले भेड़िया, कुत्ता एवं सियारकी योनिमें जाते हैं॥ ३५॥ स्वर्ण चुरानेवाला कृमि, कीट तथा पतंगकी योनि प्राप्त करता है। गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला क्रमशः तृण, गुल्म तथा

लता होता है ॥ ३६ ॥

परस्य योषितं हत्वा न्यासापहरणेन च। ब्रह्मस्वहरणाच्चैव जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ ३७ ॥
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम्। बलात्कारेण चौर्येण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥ ३८ ॥

परस्त्रीका हरण करनेवाला, धरोहरका हरण करनेवाला तथा ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणका धन कपट-स्नेहसे खानेवाला सात पीढ़ियोंतक अपने कुलका विनाश करता है और बलात्कार तथा चोरीके द्वारा खानेपर जबतक चन्द्रमा और तारकोंकी स्थिति होती है तबतक वह अपने कुलको जलाता है ॥ ३८ ॥

लौहचूर्णाश्मचूर्णौ च विषं च जरयेन्नरः। ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ३९ ॥
ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च। युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा ॥ ४० ॥
देवद्रव्योपभोगेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ४१ ॥

लोहे और पत्थरके चूर्ण तथा विषको व्यक्ति पचा सकता है, पर तीनों लोकोंमें ऐसा कौन व्यक्ति है, जो ब्रह्मस्व (ब्राह्मणके धन)-को पचा सकता है? ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणके धनसे पोषित की गयी सेना तथा वाहन युद्धकालमें बालूसे बने सेतु—बाँधके समान नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ४० ॥ देवद्रव्यका उपभोग करनेसे अथवा ब्रह्मस्वका हरण करनेसे या ब्राह्मणका अतिक्रमण करनेसे कुल पतित हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

स्वमाश्रितं परित्यज्य वेदशास्त्रपरायणम्। अन्येभ्यो दीयते दानं कथ्यतेऽयमतिक्रमः॥ ४२॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥ ४३॥
अतिक्रमे कृते तार्क्ष्य भुक्त्वा च नरकान् क्रमात्। जन्मान्धः सन्दरिद्रः स्यान्न दाता किंतु याचकः॥ ४४॥

अपने आश्रित वेद-शास्त्रपरायण ब्राह्मणको छोड़कर अन्य ब्राह्मणको दान देना (ब्राह्मणका) अतिक्रमण करना कहलाता है॥ ४२॥ वेदवेदाङ्गके ज्ञानसे रहित ब्राह्मणको छोड़ना अतिक्रमण नहीं कहलाता है; क्योंकि जलती हुई आगको छोड़कर भस्ममें आहुति नहीं दी जाती॥ ४३॥ हे तार्क्ष्य! ब्राह्मणका अतिक्रमण करनेवाला व्यक्ति नरकोंको भोगकर क्रमशः जन्मान्ध एवं दरिद्र होता है, वह कभी दाता नहीं बन सकता अपितु याचक ही रहता है॥ ४४॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥ ४५॥
स्वयमेव च यो दत्त्वा स्वयमेवापकर्षति। स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ४६॥
दत्त्वा वृत्तिं भूमिदानं यत्नतः परिपालयेत्। न रक्षति हरेद्यस्तु स पङ्गुः श्वाऽभिजायते॥ ४७॥

अपने द्वारा दी हुई अथवा दूसरे द्वारा दी गयी पृथ्वीको जो छीन लेता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है॥ ४५॥ जो स्वयं (कुछ) देकर पुनः स्वयं ले भी लेता है, वह पापी एक कल्पतक नरकमें रहता है॥ ४६॥ जीविका अथवा भूमिका दान देकर यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिये; जो रक्षा नहीं करता प्रत्युत

उसे हर लेता है, वह पंगु (लँगड़ा) कुत्ता होता है॥ ४७॥

विप्रस्य वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलं भवेत्। विप्रस्य वृत्तिहरणान्मर्कटः श्वा कपिर्भवेत्॥ ४८॥
एवमादीनि चिह्नानि योनयश्च खगेश्वर। स्वकर्मविहिता लोके दृश्यन्तेऽत्र शरीरिणाम्॥ ४९॥
एवं दुष्कर्मकर्तारो भुक्त्वा निरययातनाम्। जायन्ते पापशेषेण प्रोक्तास्वेतासु योनिषु॥ ५०॥

ब्राह्मणको आजीविका देनेवाला व्यक्ति एक लाख गोदानका फल प्राप्त करता है और ब्राह्मणकी वृत्तिका हरण करनेवाला बन्दर, कुत्ता तथा लंगूर होता है॥ ४८॥ हे खगेश्वर! प्राणियोंको अपने कर्मके अनुसार लोकमें पूर्वोक्त योनियाँ तथा शरीरपर चिह्न देखनेको मिलते हैं॥ ४९॥ इस प्रकार दुष्कर्म (पाप) करनेवाले जीव नारकीय यातनाओंको भोगकर अवशिष्ट पापोंको भोगनेके लिये इन पूर्वोक्त योनियोंमें जाते हैं॥ ५०॥

ततो जन्मसहस्रेषु प्राप्य तिर्यक्शरीरताम्। दुःखानि भारवहनोद्भवादीनि लभन्ति ते॥ ५१॥
पक्षिदुःखं ततो भुक्त्वा वृष्टिशीतातपोद्भवम्। मानुषं लभते पश्चात् समीभूते शुभाशुभे॥ ५२॥
स्त्रीपुंसोऽस्तु प्रसङ्गेन भूत्वा गर्भे क्रमादसौ। गर्भादिमरणान्तं च प्राप्य दुःखं म्रियेत्पुनः॥ ५३॥

इसके बाद हजारों जन्मोंतक तिर्यक् (पशु-पक्षी)-का शरीर प्राप्त करके वे बोझा ढोने आदि कार्योंसे दुःख प्राप्त करते हैं॥ ५१॥ फिर पक्षी बनकर वर्षा, शीत तथा आतप (घाम)-से दुःखी होते हैं। इसके बाद अन्तमें जब पुण्य और पाप बराबर हो जाते हैं तब मनुष्यकी योनि मिलती है॥ ५२॥ स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे (वह) गर्भमें

उत्पन्न होकर क्रमशः गर्भसे लेकर मृत्युतकके दुःख प्राप्त करके पुनः मर जाता है॥ ५३॥

समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते सर्वदेहिनाम्। एवं प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे॥ ५४॥
घटीयन्त्रं यथा मर्त्या भ्रमन्ति मम मायया। भूमौ कदाचिन्नरके कर्मपाशसमावृताः॥ ५५॥

इस प्रकार सभी प्राणियोंका जन्म और विनाश होता है। यह जन्म-मरणका चक्र चारों* प्रकारकी सृष्टिमें चलता रहता है॥ ५४॥ मेरी मायासे प्राणी रहट (घटीयन्त्र)-की भाँति ऊपर-नीचेकी योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं। कर्मपाशसे बँधे रहकर कभी वे नरकमें और कभी भूमिपर जन्म लेते हैं॥ ५५॥

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरके प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥ ५६॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥ ५७॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे पापचिह्ननिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥



* चतुर्विध प्राणिसमूहमें (१) उद्भिज्ज (वृक्ष, लता, गुल्म आदि), (२) स्वेदज (खटमल, जूँ आदि), (३) अण्डज (पक्षी आदि) तथा (४) जरायुज (मनुष्य आदि)-की गणना होती है।

दान न देनेसे प्राणी दरिद्र होता है। दरिद्र हो जानेपर फिर पाप करता है। पापके प्रभावसे नरकमें जाता है और नरकसे लौटकर पुनः दरिद्र और पुनः पापी होता है॥ ५६॥ प्राणीके द्वारा किये गये शुभ और अशुभ कर्मोंका फलभोग उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है; क्योंकि सैकड़ों कल्पोंके बीत जानेपर भी बिना भोगके कर्मफलका नाश नहीं होता॥ ५७॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'पापचिह्ननिरूपण' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५ ॥



छठा अध्याय

जीवकी गर्भावस्थाका दुःख, गर्भमें पूर्वजन्मोंके ज्ञानकी स्मृति, जीवद्वारा भगवान्से अब आगे दुष्कर्मोंको न करनेकी प्रतिज्ञा, गर्भवाससे बाहर आते ही वैष्णवी मायाद्वारा उसका मोहित होना तथा गर्भावस्थाकी प्रतिज्ञाको भुला देना

गरुड उवाच

कथमुत्पद्यते मातुर्जठरे नरकागतः। गर्भादिदुःखं यद्भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव॥ १॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! नरकसे आया हुआ जीव माताके गर्भमें कैसे उत्पन्न होता है? वह गर्भवास आदिके दुःखको जिस प्रकार भोगता है, वह (सब भी) मुझे बताइये॥ १॥

विष्णुरुवाच

स्त्रीपुंसोस्तु प्रसङ्गेन निरुद्धे शुक्रशोणिते। यथाऽयं जायते मर्त्यस्तथा वक्ष्याम्यहं तव॥ २॥

भगवान् विष्णुने कहा—स्त्री और पुरुषके संयोगसे वीर्य और रजके स्थिर हो जानेपर जैसे मनुष्यकी उत्पत्ति होती है, उसे मैं तुम्हें कहूँगा॥ २॥

ऋतुमध्ये हि पापानां देहोत्पत्तिः प्रजायते। इन्द्रस्य ब्रह्महत्याऽस्ति यस्मिन् तस्मिन् दिनत्रये॥ ३॥

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी ह्येता नरकागतमातरः॥ ४॥

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये। स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः॥ ५॥
कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्। दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥ ६॥

ऋतुकालमें आरम्भके तीन दिनोंतक इन्द्रको लगी ब्रह्महत्याका* चतुर्थांश रजस्वला स्त्रियोंमें रहता है, उस ऋतुकालके मध्यमें किये गये गर्भाधानके फलस्वरूप पापात्माओंके देहकी उत्पत्ति होती है॥ ३॥ रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन रजकी (धोबिन) कहलाती है। (तदनुसार उनमें स्पर्शदोष रहता है) नरकसे आये हुए प्राणियोंकी ये ही तीन माताएँ होती हैं॥ ४॥ दैवकी प्रेरणासे कर्मानुरोधी शरीर प्राप्त करनेके लिये प्राणी पुरुषके वीर्यकणका आश्रय लेकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट होता है॥ ५॥ एक रात्रिमें वह शुक्राणु कललके रूपमें, पाँच रात्रिमें बुद्बुदके रूपमें, दस दिनमें बेरके समान तथा उसके पश्चात् मांसपेशियोंसे युक्त अण्डाकार हो जाता है॥ ६॥

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्गाद्यङ्गविग्रहः। नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥ ७॥

---

* शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः। रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते॥ (श्रीमद्भा० ६।९।९)

स्त्रियोंने यह वर पाकर कि वे सर्वदा पुरुषका सहवास कर सकें, ब्रह्महत्याका तीसरा चतुर्थांश स्वीकार किया। उनकी ब्रह्महत्या प्रत्येक महीनेमें रजके रूपमें दिखायी पड़ती है।

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः। षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥ ८ ॥

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते। शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे॥ ९ ॥

एक मासमें सिर, दो मासमें बाहु आदि शरीरके सभी अङ्ग, तीसरे मासमें नख, लोम, अस्थि, चर्म तथा लिङ्गबोधक छिद्र उत्पन्न होते हैं॥ ७॥ चौथे मासमें रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात धातुएँ तथा पाँचवें मासमें भूख-प्यास पैदा होती है। छठे मासमें जरायुमें लिपटा हुआ वह जीव माताकी दाहिनी कोखमें घूमता है॥ ८॥ और माताके द्वारा खाये-पिये अन्नादिसे बढ़े हुए धातुओंवाला वह जन्तु विष्ठा-मूत्रके दुर्गन्धियुक्त गड्ढेरूप गर्भाशयमें सोता है॥ ९॥

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम्। मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥ १०॥
कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः। उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः॥ ११॥

वहाँ गर्भस्थ क्षुधित कृमियोंके द्वारा उसके सुकुमार अङ्ग प्रतिक्षण बार-बार काटे जाते हैं, जिससे अत्यधिक क्लेश होनेके कारण वह जीव मूर्च्छित हो जाता है॥ १०॥ माताके द्वारा खाये हुए कड़ुवे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे तथा खट्टे पदार्थोंके अति उद्वेजक संस्पर्शसे उसे समूचे अङ्गमें वेदना होती है और जरायु (झिल्ली)-से लिपटा हुआ वह जीव आँतोंद्वारा बाहरसे ढका रहता है॥ ११॥

आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः। अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे॥ १२॥

तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्म जन्मशतोद्भवम्। स्मरन् दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते॥ १३॥
नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः। स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥ १४॥
आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः। नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥ १५॥

उसकी पीठ और गरदन कुण्डलाकार रहती है। इस प्रकार अपने अङ्गोंसे चेष्टा करनेमें असमर्थ होकर वह जीव पिंजरेमें स्थित पक्षीकी भाँति माताकी कुक्षिमें अपने सिरको दबाये हुए पड़ा रहता है॥ १२॥ भगवान्‌की कृपासे अपने सैकड़ों जन्मोंके कर्मोंका स्मरण करता हुआ वह गर्भस्थ जीव लम्बी श्वास लेता है। ऐसी स्थितिमें भला उसे कौन-सा सुख प्राप्त हो सकता है?॥ १३॥ (मांस-मज्जा आदि) सात धातुओंके आवरणमें आवृत वह ऋषिकल्प जीव भयभीत होकर हाथ जोड़कर विकल वाणीसे उन भगवान्‌की स्तुति करता है, जिन्होंने उसको माताके उदरमें डाला है॥ १४॥ सातवें महीनेके आरम्भसे ही सभी जन्मोंके कर्मोंका ज्ञान हो जानेपर भी गर्भस्थ प्रसूतिवायुके द्वारा चालित होकर वह विष्ठामें उत्पन्न सहोदर (उसी पेटमें उत्पन्न अन्य) कीड़ेकी भाँति एक स्थानपर ठहर नहीं पाता॥ १५॥

जीव उवाच

श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम्। व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्॥ १६॥

जीव कहता है—मैं लक्ष्मीके पति, जगत्‌के आधार, अशुभका नाश करनेवाले तथा शरणमें आये हुए जीवोंके

प्रति वात्सल्य रखनेवाले भगवान् विष्णुकी शरणमें जाता हूँ॥ १६॥

त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके। अहं ममाभिमानेन गतोऽहं नाथ संसृतिम्॥ १७॥
कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभागिनः॥ १८॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत् स्मरिष्ये पदं तव। तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥ १९॥
विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना। इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः॥ २०॥
येनेदृशं मे विज्ञानं दत्तं दीनदयालुना। तमेव शरणं यामि पुनर्मे माऽस्तु संसृतिः॥ २१॥
न च निर्गन्तुमिच्छामि बहिर्गर्भात्कदाचन। यत्र यातस्य मे पापकर्मणा दुर्गतिर्भवेत्॥ २२॥
तस्मादत्र महद्दुःखे स्थितोऽपि विगतक्लमः। उद्धरिष्यामि संसारादात्मानं ते पदाश्रयः॥ २३॥

हे नाथ! आपकी मायासे मोहित होकर मैं देहमें अहंभाव तथा पुत्र और पत्नी आदिमें ममत्वभावके अभिमानसे जन्म-मरणके चक्करमें फँसा हूँ॥ १७॥ मैंने अपने परिजनोंके उद्देश्यसे शुभ और अशुभ कर्म किये, किंतु अब मैं उन कर्मोंके कारण अकेला जल रहा हूँ। उन कर्मोंके फल भोगनेवाले पुत्र-कलत्रादि अलग हो गये॥ १८॥ यदि इस गर्भसे निकलकर मैं बाहर आऊँ तो फिर आपके चरणोंका स्मरण करूँगा और ऐसा उपाय करूँगा जिससे मुक्ति प्राप्त कर लूँ॥ १९॥ विष्ठा और मूत्रके कुँएमें गिरा हुआ तथा जठराग्निसे जलता हुआ एवं यहाँसे बाहर निकलनेकी इच्छा करता हुआ मैं कब बाहर निकल पाऊँगा॥ २०॥ जिस दीनदयालु परमात्माने मुझे इस प्रकारका विशेष ज्ञान दिया है, मैं उन्हींकी शरण

ग्रहण करता हूँ जिससे मुझे पुनः संसारके चक्करमें न आना पड़े ॥ २१ ॥ अथवा मैं माताके गर्भगृहसे कभी भी बाहर जानेकी इच्छा नहीं करता, (क्योंकि) बाहर जानेपर पापकर्मोंसे पुनः मेरी दुर्गति हो जायगी ॥ २२ ॥ इसलिये यहाँ बहुत दुःखकी स्थितिमें रहकर भी मैं खेदरहित होकर आपके चरणोंका आश्रय लेकर संसारसे अपना उद्धार कर लूँगा ॥ २३ ॥

श्रीभगवानुवाच

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः। सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २४ ॥
तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्शिर आतुरः। विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २५ ॥
पतितो भुवि विण्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते। रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २६ ॥

श्रीभगवान् बोले—इस प्रकारकी बुद्धिवाले एवं स्तुति करते हुए दस मासके ऋषिकल्प उस जीवको प्रसूतिवायु प्रसवके लिये तुरंत नीचेकी ओर ढकेलता है ॥ २४ ॥ प्रसूतिमार्गके द्वारा नीचे सिर करके सहसा गिराया गया वह आतुर जीव अत्यन्त कठिनाईसे बाहर निकलता है और उस समय वह श्वास नहीं ले पाता है तथा उसकी स्मृति भी नष्ट हो जाती है ॥ २५ ॥ पृथ्वीपर विष्ठा और मूत्रके बीच गिरा हुआ वह जीव मलमें उत्पन्न कीड़ेकी भाँति चेष्टा करता है और विपरीत गति प्राप्त करके ज्ञान नष्ट हो जानेके कारण अत्यधिक रुदन करने लगता है ॥ २६ ॥

गर्भे व्याधौ श्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत्। सा यदि स्थिरतां याति को न मुच्येत बन्धनात् ॥ २७ ॥
यदा गर्भाद् बहिर्याति कर्मभोगादनन्तरम्। तदैव वैष्णवी माया मोहयत्येव पूरुषम् ॥ २८ ॥

स तदा मायया स्पृष्टो न किञ्चिद्वदतेऽवशः। शैशवादिभवं दुःखं पराधीनतयाऽश्नुते॥ २९॥

गर्भमें, रुग्णावस्थामें, श्मशानभूमिमें तथा पुराणके पारायण या श्रवणके समय जैसी बुद्धि होती है, वह यदि स्थिर हो जाय तो कौन व्यक्ति सांसारिक बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकता॥ २७॥ कर्मभोगके अनन्तर जीव जब गर्भसे बाहर आता है तब उसी समय वैष्णवी माया उस पुरुषको मोहित कर देती है॥ २८॥ उस समय मायाके स्पर्शसे वह जीव विवश होकर कुछ बोल नहीं पाता, प्रत्युत शैशवादि अवस्थाओंमें होनेवाले दुःखोंको पराधीनकी भाँति भोगता है॥ २९॥

परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः। अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्या तु मनीश्वरः॥ ३०॥
शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते। नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने॥ ३१॥
तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः। रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा॥ ३२॥

उसका पोषण करनेवाले लोग उसकी इच्छाको जान नहीं पाते। अतः प्रत्याख्यान करनेमें असमर्थ होनेके कारण वह अनभिप्रेत (विपरीत) स्थितिको प्राप्त हो जाता है॥ ३०॥ स्वेदज जीवोंसे दूषित तथा विष्ठा-मूत्रसे अपवित्र शय्यापर सुलाये जानेके कारण अपने अङ्गोंको खुजलानेमें, आसनसे उठनेमें तथा अन्य चेष्टाओंको करनेमें वह असमर्थ रहता है॥ ३१॥ जैसे एक कृमि दूसरे कृमिको काटता है, उसी प्रकार ज्ञानशून्य और रोते हुए उस शिशुकी कोमल त्वचाको डाँस, मच्छर और खटमल आदि जन्तु व्यथित करते हैं॥ ३२॥

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च। ततो यौवनमासाद्य याति सम्पदमासुरीम्॥ ३३॥

तदा दुर्व्यसनासक्तो नीचसङ्गपरायणः। शास्त्रसत्पुरुषाणां च द्वेष्टा स्यात्कामलम्पटः॥ ३४॥

इस प्रकार शैशवावस्थाका दुःख भोगकर वह पौगण्डावस्थामें भी दुःख ही भोगता है। तदनन्तर युवावस्था प्राप्त होनेपर आसुरी सम्पत्ति[1] को प्राप्त होता है॥ ३३॥ तब वह दुर्व्यसनोंमें आसक्त होकर नीच पुरुषोंके साथ सम्बन्ध बनाता है और (वह) कामलम्पट प्राणी शास्त्र तथा सत्पुरुषोंसे द्वेष करता है॥ ३४॥

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः। प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत्॥ ३५॥

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च। एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥ ३६॥

भगवान्‌की मायारूपी स्त्रीको देखकर वह अजितेन्द्रिय पुरुष उसकी भावभंगिमासे प्रलोभित होकर महामोहरूप अन्धतममें उसी प्रकार गिर पड़ता है जिस प्रकार अग्निमें पतिंगा॥ ३५॥ हिरन, हाथी, पतिंगा, भौंरा और मछली—ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध तथा रस—इन पाँच विषयोंमें एक-एकमें आसक्ति होनेके कारण ही मारे जाते हैं, फिर एक प्रमादी व्यक्ति जो पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचों विषयोंका भोग करता है, वह क्यों नहीं मारा जायगा?॥ ३६॥

अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः। सह देहेन मानेन वर्द्धमानेन मन्युना॥ ३७॥

---

१. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥ (गीता १६।४)

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी—ये सब आसुरी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः। बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा॥ ३८॥

एवं यो विषयासक्त्या नरत्वमतिदुर्लभम्। वृथा नाशयते मूढस्तस्मात् पापतरो हि कः॥ ३९॥

अभीप्सित वस्तुकी अप्राप्तिकी स्थितिमें अज्ञानके कारण ही क्रोध हो आता है और शोकको प्राप्त व्यक्ति देहके साथ ही बढ़नेवाले अभिमान तथा क्रोधके कारण वह कामी व्यक्ति स्वयं अपने नाशहेतु दूसरे कामीसे शत्रुता कर लेता है। इस प्रकार अधिक बलशाली अन्य कामीजनोंके द्वारा वह वैसे ही मारा जाता है, जैसे किसी बलवान् हाथीसे दूसरा हाथी॥ ३७-३८॥ इस प्रकार जो मूर्ख अत्यन्त दुर्लभ मानवजीवनको विषयासक्तिके कारण व्यर्थमें नष्ट कर लेता है, उससे बढ़कर पापी और कौन होगा?॥ ३९॥

जातीशतेषु लभते भुवि मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम्।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात्॥ ४०॥

ततस्तां वृद्धतां प्राप्य महाव्याधिसमाकुलः। मृत्युं प्राप्य महद् दुःखं नरकं याति पूर्ववत्॥ ४१॥
एवं गताऽगतैः कर्मपाशैर्बद्धाश्च पापिनः। कदापि न विरज्यन्ते मम मायाविमोहिताः॥ ४२॥
इति ते कथिता तार्क्ष्य पापिनां नारकीगतिः। अन्त्येष्टिकर्महीनानां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४३॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे पापजन्मादिदुःखनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥



सैकड़ों योनियोंको पार करके पृथ्वीपर दुर्लभ मानवयोनि प्राप्त होती है। मानवशरीर प्राप्त होनेपर भी द्विजत्वकी प्राप्ति उससे भी अधिक दुर्लभ है। अतिदुर्लभ द्विजत्वको प्राप्तकर जो व्यक्ति द्विजत्वकी रक्षाके लिये अपेक्षित धर्म-कर्मानुष्ठान नहीं करता, केवल इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही प्रयत्नशील रहता है, उसके हाथमें आया हुआ अमृतस्वरूप वह अवसर उसके प्रमादसे नष्ट हो जाता है॥ ४०॥ इसके बाद वृद्धावस्थाको प्राप्त करके महान् व्याधियोंसे व्याकुल होकर मृत्युको प्राप्त करके वह पूर्ववत् महान् दुःखपूर्ण नरकमें जाता है॥ ४१॥ इस प्रकार जन्म-मरणके हेतुभूत कर्मपाशोंसे बँधे हुए वे पापी मेरी मायासे विमोहित होकर कभी भी वैराग्यको प्राप्त नहीं करते॥ ४२॥ हे तार्क्ष्य! इस प्रकार मैंने तुम्हें अन्त्येष्टिकर्मसे हीन पापियोंकी नरकगति बतायी, अब आगे और क्या सुनना चाहते हो?॥ ४३॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'पापजन्मादिदु:खनिरूपण' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥



सातवाँ अध्याय

पुत्रकी महिमा, दूसरेके द्वारा दिये गये पिण्डदानादिसे प्रेतत्वसे मुक्ति—इसके प्रतिपादनमें राजा बभ्रुवाहन तथा प्रेतकी कथा

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु गरुडः कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत्। जनानामुपकारार्थं पुनः पप्रच्छ केशवम्॥ १ ॥

सूतजीने कहा—ऐसा सुनकर पीपलके पत्तेकी भाँति काँपते हुए गरुडजीने प्राणियोंके उपकारके लिये पुनः भगवान् विष्णुसे पूछा—॥ १ ॥

गरुड उवाच

कृत्वा पापानि मनुजाः प्रमादाद् बुद्धितोऽपि वा। न यान्ति यातना याम्याः केनोपायेन कथ्यताम्॥ २ ॥
संसारार्णवमग्नानां नराणां दीनचेतसाम्। पापोपहतबुद्धीनां विषयोपहतात्मनाम्॥ ३ ॥
उद्धारार्थं वद स्वामिन् पुराणार्थं विनिश्चयम्। उपायं येन मनुजाः सद्गतिं यान्ति माधव॥ ४ ॥

गरुडजीने कहा—हे स्वामिन्! किस उपायसे मनुष्य प्रमादवश अथवा जानकर पापकर्मोंको करके भी यमकी यातनाको न प्राप्त हो, उसे कहिये॥ २॥ संसाररूपी सागरमें डूबे हुए, दीन चित्तवाले, पापसे नष्ट

बुद्धिवाले तथा विषयोंके कारण दूषित आत्मावाले मनुष्योंके उद्धारके लिये हे माधव! पुराणोंमें सुनिश्चित किये गये उपायको बताइये, जिससे मनुष्य सद्गति प्राप्त कर सकें॥ ३-४॥

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै। शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वं ते कथयाम्यहम्॥ ५ ॥
दुर्गतिः कथिता पूर्वमपुत्राणां च पापिनाम्। पुत्रिणां धार्मिकाणां तु न कदाचित्खगेश्वर॥ ६ ॥
पुत्रजन्मनिरोधः स्याद्यदि केनापि कर्मणा। तदा कश्चिदुपायेन पुत्रोत्पत्तिं प्रसाधयेत्॥ ७ ॥
हरिवंशकथां श्रुत्वा शतचण्डीविधानतः। भक्त्या श्रीशिवमाराध्य पुत्रमुत्पादयेत्सुधीः॥ ८ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे तार्क्ष्य! मनुष्योंके हितकी कामनासे तुमने अच्छी बात पूछी है। सावधान होकर सुनो, मैं तुम्हें सब कुछ बताता हूँ॥ ५॥ हे खगेश्वर! मैंने इसके पहले पुत्ररहित और पापी मनुष्योंकी यातनाका वर्णन किया है। पुत्रवान् तथा धार्मिक मनुष्योंकी पूर्वोक्त दुर्गति कभी नहीं होती॥ ६॥ यदि अपने पूर्वार्जित कर्मोंके कारण पुत्रोत्पत्तिमें विघ्न हो तो किसी उपायसे पुत्रकी उत्पत्ति सम्पन्न करे। हरिवंशपुराणकी कथा सुनकर, विधानपूर्वक शतचण्डी यज्ञ करके भक्तिपूर्वक शिवकी आराधना करके तथा विद्वान्‌को पुत्र उत्पन्न करना चाहिये॥ ७-८॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥ ९ ॥
एकोऽपि पुत्रो धर्मात्मा सर्वं तारयते कुलम्। पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी॥ १० ॥

यतः पुत्र पितरोंकी पुम् नामक नरकसे रक्षा करता है, अतः स्वयं भगवान् ब्रह्माने ही उसे पुत्र नामसे कहा है॥ ९॥ एक धर्मात्मा पुत्र सम्पूर्ण कुलको तार देता है। पुत्रके द्वारा व्यक्ति लोकोंको जीत लेता है, ऐसी सनातनी श्रुति है॥ १०॥

इति वेदैरपि प्रोक्तं पुत्रमाहात्म्यमुत्तमम्। तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा मुच्यते पैतृकादृणात्॥ ११॥
पौत्रस्य स्पर्शनान्मर्त्यो मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्येद्दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥ १२॥
ब्राह्मोढापुत्रोन्नयति संगृहीतस्त्वधो नयेत्। एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातिसुतांस्त्यजेत्॥ १३॥

इस प्रकार वेदोंने भी पुत्रके उत्तम माहात्म्यको कहा है। इसलिये पुत्रका मुख देख करके मनुष्य पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है॥ ११॥ पौत्रका स्पर्श करके मनुष्य तीनों (देव, ऋषि, पितृ) ऋणोंसे मुक्त हो जाता है, (इस प्रकार) पुत्र-पौत्र और प्रपौत्रसे यमलोकोंका अतिक्रमण करके स्वर्ग आदिको प्राप्त करता है॥ १२॥ ब्राह्मविवाह*की विधिसे ब्याही गयी पत्नीसे उत्पन्न औरस पुत्र ऊर्ध्वगति प्राप्त कराता है और संगृहीत पुत्र अधोगतिकी ओर ले जाता है। हे खगश्रेष्ठ! ऐसा जान करके व्यक्ति हीनजातिकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्रोंको त्याग दे॥ १३॥

सवर्णेभ्यः सवर्णासु ये पुत्रा औरसाः खग। त एव श्राद्धदानेन पितॄणां स्वर्गहेतवः॥ १४॥
श्राद्धेन पुत्रदत्तेन स्वर्यातीति किमुच्यते। प्रेतोऽपि परदत्तेन गतः स्वर्गमथो शृणु॥ १५॥

* ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच—ये आठ प्रकारके विवाह कहे गये हैं। (मनु० ३। २१)

अत्रैवोदाहरिष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। और्ध्वदैहिकदानस्य परं माहात्म्यसूचकम्॥ १६॥

हे खग! सवर्ण पुरुषोंसे सवर्णा स्त्रियोंमें जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे औरस पुत्र कहे जाते हैं और वे ही श्राद्ध प्रदान करके पितरोंको स्वर्ग प्राप्त करानेके कारण होते हैं॥ १४॥ औरस पुत्रके द्वारा किये गये श्राद्धसे पिताको स्वर्ग प्राप्त होता है, इस विषयमें क्या कहना? दूसरेके द्वारा दिये गये श्राद्धसे भी प्रेत स्वर्गको चला जाता है, इस विषयमें सुनो॥ १५॥ यहाँ मैं एक प्राचीन इतिहास कहूँगा, जो और्ध्वदैहिक दानके श्रेष्ठ माहात्म्यको सूचित करता है॥ १६॥

पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजाऽऽसीद् बभ्रुवाहनः। महोदये पुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः॥ १७॥
यज्वा दानपतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः। शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः॥ १८॥
पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान्। क्षत्रधर्मरतो नित्यं स दण्ड्यान् दण्डयन्नृपः॥ १९॥

हे तार्क्ष्य! पूर्वकालमें त्रेतायुगमें महोदय नामके रमणीय नगरमें महाबलशाली और धर्मपरायण बभ्रुवाहन नामक एक राजा रहता था॥ १७॥ वह यज्ञानुष्ठानपरायण, दानियोंमें श्रेष्ठ, लक्ष्मीसे सम्पन्न, ब्राह्मणभक्त तथा साधु पुरुषोंके प्रति अनुराग रखनेवाला, शील एवं आचार आदि गुणोंसे युक्त, स्वजनोंके प्रति अपनत्व और इतरजनोंके प्रति दयाके भावसे सम्पन्न था॥ १८॥ क्षात्रधर्मपरायण वह (राजा बभ्रुवाहन) औरस पुत्रकी भाँति धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करता था और दण्ड देनेयोग्य अपराधियोंको दण्ड देता था॥ १९॥

स कदाचिन्महाबाहुः ससैन्यो मृगयां गतः। वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम्॥ २०॥

नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम्। वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत॥ २१॥

तेन विद्धो मृगोऽतीव बाणेन सुदृढेन च। बाणमादाय स तस्य वनेऽदर्शनमेयिवान्॥ २२॥

वह महाबाहु किसी समय सेनाके साथ मृगयाके लिये नाना वृक्षोंसे युक्त एक घनघोर वनमें प्रविष्ट हुआ॥ २०॥ वह वन नाना मृगगणों (पशुओं)-से व्याप्त और अनेक पक्षियोंसे निनादित था। उस समय राजाने वनके मध्यमें दूरसे एक मृगको देखा॥ २१॥ राजाके द्वारा सुदृढ़ बाणसे विद्ध वह मृग बाणसहित जंगलमें अदृश्य हो गया॥ २२॥

कक्षेण रुधिरार्द्रेण स राजाऽनुजगाम तम्। ततो मृगप्रसंगेन वनमन्यद्विवेश सः॥ २३॥
क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः। जलाशयं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत॥ २४॥
पपौ तदुदकं शीतं पद्मगन्धादिवासितम्। ततोऽवतीर्य सलिलाद्विश्रमो बभ्रुवाहनः॥ २५॥
ददर्श न्यग्रोधतरुं शीतच्छायं मनोहरम्। महाविटपविस्तीर्णं पक्षिसंघनिनादितम्॥ २६॥

रुधिरसे गीली हुई घासपर अंकित चिह्नसे राजाने उसका पीछा किया। तब मृगके प्रसंगसे वह राजा दूसरे वनमें जा पहुँचा॥ २३॥ भूख-प्याससे सूखे हुए कण्ठवाला तथा परिश्रमके संतापसे पीडित उस राजाने एक जलाशयके समीप पहुँचकर घोड़ेके साथ उसमें स्नान किया॥ २४॥ तथा कमलकी गन्धादिसे सुगन्धित शीतल जलका पान किया। इसके बाद उस जलाशयसे बाहर निकलकर श्रमरहित राजा बभ्रुवाहनने वृक्षरूपी विशाल शाखाओंके कारण

फैले हुए, मनोहर और शीतल छायावाले तथा पक्षिसमूहोंसे कूजित एक वटवृक्षको देखा॥ २५-२६॥

वनस्य तस्य सर्वस्य महाकेतुमिव स्थितम्। मूलं तस्य समासाद्य निषसाद महीपतिः॥ २७॥

अथ प्रेतं ददर्शासौ क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलेन्द्रियम्। उत्कचं मलिनं कुब्जं निर्मांसं भीमदर्शनम्॥ २८॥

वह वृक्ष सम्पूर्ण वनकी महती पताकाकी भाँति स्थित था। उसकी जड़के पास जाकर राजा बैठ गया॥ २७॥ उसके बाद राजाने भूख और प्याससे व्याकुल इन्द्रियोंवाले, ऊपरकी ओर उठे हुए बालोंवाले, अत्यन्त मलिन, कुबड़े और मांसरहित एक भयावह प्रेतको देखा॥ २८॥

तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः। प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तं घोरामटवीमागतं नृपम्॥ २९॥

समुत्सुकमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागतः। अब्रवीत् स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः॥ ३०॥

प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्। त्वत्संयोगान्महाबाहो जातो धन्यतरोऽस्म्यहम्॥ ३१॥

उस विकृत आकृतिवाले भयावह प्रेतको देखकर बभ्रुवाहन विस्मित हो गया। प्रेत भी घने जंगलमें आये हुए राजाको देखकर चकित हो गया और समुत्सुक मनवाला होकर वह प्रेतराज उसके पास आया। हे तार्क्ष्य! तब उस प्रेतराजने राजासे कहा— ॥ २९-३०॥ हे महाबाहो! आपके सम्बन्धसे मैंने प्रेतभावका त्याग कर दिया है अर्थात् मेरा प्रेतभाव छूट गया है और मैं परम शान्तिको प्राप्त हो गया हूँ तथा धन्यतर हो गया हूँ॥ ३१॥

राजोवाच

कृष्णवर्ण करालस्य प्रेतत्वं घोरदर्शनम्। केन कर्मविपाकेन प्राप्तं ते बह्वमङ्गलम्॥ ३२॥
प्रेतत्वकारणं तात ब्रूहि सर्वमशेषतः। कोऽसि त्वं केन दानेन प्रेतत्वं ते विनश्यति॥ ३३॥

राजाने कहा—हे कृष्णवर्णवाले तथा भयावह रूपवाले प्रेत! किस कर्मके प्रभावसे देखनेमें डरावने लगनेवाले और बहुत ही अमङ्गलकारी इस प्रेतत्व-स्वरूपको तुमने प्राप्त किया है। हे तात! अपने प्रेतत्वकी प्राप्तिका सारा कारण बतलाओ। तुम कौन हो और किस दानसे तुम्हारा प्रेतत्व नष्ट होगा?॥ ३२-३३॥

प्रेत उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव। प्रेतत्वकारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं त्वमर्हसि॥ ३४॥
वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम्। नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम्॥ ३५॥
हर्म्यप्रासादशोभाढ्यं नानाधर्मसमन्वितम्। तत्राऽहं न्यवसं तात देवार्चनरतः सदा॥ ३६॥

प्रेतने कहा—हे श्रेष्ठ राजन्! मैं आरम्भसे आपको सब कुछ बताता हूँ। प्रेतत्वका कारण सुनकर आप कृपया उसे दूर करनेकी दया कीजिये॥ ३४॥ वैदिश नामका एक नगर था, जो सभी प्रकारकी सम्पत्तियोंसे समृद्ध, नाना जनपदोंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण, धनिकोंके भवनों तथा देव एवं राजप्रासादोंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके धर्मानुष्ठानोंसे युक्त था। हे तात! मैं वहाँ रहता हुआ निरन्तर देवपूजा किया करता था॥ ३५-३६॥

वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते। हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस्तथा॥ ३७॥
विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पिता मया। दीनान्धकृपणेभ्यश्च दत्तमन्नमनेकधा॥ ३८॥

आपको विदित होना चाहिये कि मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हुआ और मेरा नाम सुदेव था। मैंने हव्य प्रदान करके देवताओंका तथा कव्य प्रदान करके पितरोंका तर्पण किया*॥ ३७॥ अनेक प्रकारके दानोंसे मैंने ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया था और अनेक बार दीन, अंधे एवं कृपण (जरूरतमन्द) मनुष्योंको अन्न दिया था॥ ३८॥

तत्सर्वं निष्फलं राजन् मम दैवादुपागतम्। यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद् वदामि ते॥ ३९॥
ममैव सन्ततिर्नास्ति न सुहृन्न च बान्धवः। न च मित्रं हि मे तादृग् यः कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्॥ ४०॥
यस्य न स्यान्महाराज श्राद्धं मासिकषोडशम्। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ ४१॥

(किंतु) हे राजन्! मेरा यह सारा सत्कर्म मेरे दुर्दैवसे निष्फल हो गया। जिस कारण मेरा सुकृत निष्फल हुआ वह मैं आपको बताता हूँ॥ ३९॥ मुझे कोई सन्तान नहीं है, मेरा कोई सुहृद् नहीं है, कोई बान्धव नहीं है और न ऐसा कोई मित्र ही है जो मेरी औध्वंदैहिक क्रिया करता॥ ४०॥ हे महाराज! (मृत्युके अनन्तर) जिस व्यक्तिके उद्देश्यसे षोडश मासिक श्राद्ध नहीं दिये जाते, सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी उसका प्रेतत्व सुस्थिर ही रहता है अर्थात् दूर नहीं होता॥ ४१॥

---

* देवार्थमन्नं हव्यं स्यात् पित्र्यर्थं कव्यमेव च।

देवताओंके निमित्त प्रदान किया जानेवाला द्रव्य हव्य तथा पितरोंके निमित्त प्रदान किया जानेवाला द्रव्य कव्य कहलाता है।

त्वमौर्ध्वदैहिकं कृत्वा मामुद्धर महीपते। वर्णानां चैव सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते॥ ४२॥

तन्मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते। यथा मे सद्गतिर्भूयात् प्रेतयोनिश्च गच्छति॥ ४३॥
यथा कार्यं त्वया वीर मम चेदिच्छसि प्रियम्। क्षुधातृषादिभिर्दुःखैः प्रेतत्वं दुःसहं मम॥ ४४॥

हे महाराज! आप मेरा और्ध्वदैहिक कृत्य करके मेरा उद्धार कीजिये। (क्योंकि) इस लोकमें राजा सभी वर्णोंका बन्धु कहा जाता है॥ ४२॥ इसलिये हे राजेन्द्र! आप मेरा उद्धार कीजिये, मैं आपको मणिरत्न देता हूँ। हे वीर! यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो जैसे मेरी सद्गति हो सके और मेरी प्रेतयोनिसे जैसे मुक्ति हो सके, वैसा आप करें। भूख-प्यास आदि दुःखोंके कारण यह प्रेतयोनि मेरे लिये दुःसह हो गयी है॥ ४३-४४॥

स्वादूदकं फलं चास्ति वनेऽस्मिञ्छीतलं शिवम्। न प्राप्नोमि क्षुधार्तोऽहं तृषार्तो न जलं क्वचित्॥ ४५॥
यदि मे हि भवेद्राजन् विधिर्नारायणो महान्। तदग्रे वेदमन्त्रैश्च क्रिया सर्वौर्ध्वदैहिकी॥ ४६॥
तदा नश्यति मे नूनं प्रेतत्वं नाऽत्र संशयः। वेदमन्त्रास्तपोदानं दया सर्वत्र जन्तुषु॥ ४७॥
सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसंगतिः। प्रेतयोनिविनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम्॥ ४८॥

इस वनमें सुन्दर स्वादवाले शीतल जल और फल विद्यमान हैं, फिर भी मैं भूख और प्याससे पीड़ित हूँ। मुझे जल और फलकी प्राप्ति नहीं हो पाती॥ ४५॥ हे राजन्! यदि मेरे उद्देश्यसे यथाविधि नारायणबलि की जाय, उसके बाद वेदमन्त्रोंके द्वारा मेरी सभी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न की जाय तो निश्चित ही मेरा

प्रेतत्व नष्ट हो जायगा, इसमें संशय नहीं है। मैंने सुन रखा है कि वेदके मन्त्र, तप, दान और सभी प्राणियोंमें दया, सत्-शास्त्रोंका श्रवण, भगवान् विष्णुकी पूजा और सज्जनोंकी संगति—ये सब प्रेतयोनिके विनाशके लिये होते हैं॥ ४६—४८॥

अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्वनाशिनीम्।
सुवर्णद्वयमानीय सुवर्णं न्यायसंचितम्। तस्य नारायणस्यैकां प्रतिमां भूप कल्पयेत्॥ ४९॥
पीतवस्त्रयुगच्छन्नां सर्वाभरणभूषिताम्। स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य यजेत्ततः॥ ५०॥

इसलिये मैं आपसे प्रेतत्वको नष्ट करनेवाली विष्णुपूजाको कहूँगा। हे राजन्! न्यायोपार्जित दो सुवर्ण (३२ माशा) भारका सोना लेकर उससे नारायणकी एक प्रतिमा बनवाये, जिसे विविध पवित्र जलोंसे स्नान कराकर दो पीले वस्त्रोंसे वेष्टित करके सभी अलङ्कारोंसे विभूषितकर अधिवासित करे, तदनन्तर उसका पूजन करे॥ ४९-५०॥

पूर्वे तु श्रीधरं तस्य दक्षिणे मधुसूदनम्। पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम्॥ ५१॥
मध्ये पितामहं चैव तथा देवं महेश्वरम्। पूजयेच्च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक्॥ ५२॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य वह्नौ सन्तर्प्य देवताः। घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवांश्च तर्पयेत्॥ ५३॥

उस प्रतिमाके पूर्वभागमें श्रीधर, दक्षिणमें मधुसूदन, पश्चिममें वामन और उत्तरमें गदाधर, मध्यमें पितामह ब्रह्मा तथा महादेव शिवकी स्थापना करके गन्ध-पुष्पादि द्रव्योंके द्वारा विधि-विधानसे पृथक्-

पृथक् पूजन करे॥ ५१-५२॥ उसके बाद प्रदक्षिणा करके अग्निमें (हवन करके) देवताओंको तृप्त करके घृत, दधि तथा दूधसे विश्वेदेवोंको तृप्त करे॥ ५३॥

ततः स्नातो विनीतात्मा यजमानः समाहितः। नारायणाग्रे विधिवत्स्वां क्रियामौर्ध्वदैहिकीम्॥ ५४॥
आरभेत यथाशास्त्रं क्रोधलोभविवर्जितः। कुर्याच्छ्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा॥ ५५॥
ततः पदानि विप्रेभ्यो दद्याच्चैव त्रयोदश। शय्यादानं प्रदत्त्वा च घटं प्रेतस्य निर्वपेत्॥ ५६॥

तदनन्तर समाहित चित्तवाला यजमान स्नान करके नारायणके आगे विनीतात्मा होकर विधिपूर्वक मनमें संकल्पित और्ध्वदैहिक क्रियाका आरम्भ करे॥ ५४॥ इसके बाद क्रोध और लोभसे रहित होकर शास्त्र-विधिसे सभी श्राद्धोंको करे तथा वृषोत्सर्ग करे॥ ५५॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंको तेरह पददान* करे, फिर शय्यादान देकर प्रेतके लिये घटका दान करे॥ ५६॥

राजोवाच

कथं प्रेतघटं कुर्याद् दद्यात् केन विधानतः। ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम्॥ ५७॥

राजाने कहा— (हे प्रेत!) किस विधानसे प्रेतघटका निर्माण करना चाहिये और किस विधानसे उसका दान

* छत्र (छाता), उपानह (जूता), वस्त्र, मुद्रिका (अँगूठी), कमण्डलु, आसन, पञ्चपात्र—ये सात वस्तुएँ पद कही गयी हैं। दण्ड, ताम्रपात्र, आमान्न (कच्चा अन्न), भोजन, घृत और यज्ञोपवीतको मिलाकर (७+६=१३) पदकी सम्पूर्णता होती है। (सारोद्धार १३।८३-८४)

करना चाहिये। सभी प्राणियोंके ऊपर अनुकम्पा करनेके हेतुसे प्रेतोंको मुक्ति दिलानेवाले प्रेतघट-दानके विषयमें बताइये॥ ५७॥

प्रेत उवाच

साधु पृष्टं महाराज कथयामि निबोध ते। प्रेतत्वं न भवेद्येन दानेन सुदृढेन च॥ ५८॥
दानं प्रेतघटं नाम सर्वाऽशुभविनाशकम्। दुर्लभं सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम्॥ ५९॥
सन्तप्तहाटकमयं तु घटं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः॥ ६०॥

प्रेतने कहा—हे महाराज! आपने ठीक पूछा है, जिस सुदृढ दानसे प्रेतत्व नहीं होता है, उसे मैं कहता हूँ, आप ध्यानसे सुनें॥ ५८॥ प्रेतघटका दान, सभी प्रकारके अमङ्गलोंका विनाश करनेवाला, सभी लोकोंमें दुर्लभ और दुर्गतिको नष्ट करनेवाला है॥ ५९॥ ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुसहित लोकपालोंसे युक्त तपाये हुए सोनेका एक घट बनाकर उसे दूध, घी आदिसे पूरा भरकर, भक्तिपूर्वक प्रणाम करके ब्राह्मणको दान करे। (इसके अतिरिक्त) तुम्हें अन्य सैकड़ों दानोंको देनेकी क्या आवश्यकता?॥ ६०॥

ब्रह्मा मध्ये तथा विष्णुः शङ्करः शङ्करोऽव्ययः। प्राच्यादिषु च तत्कण्ठे लोकपालान् क्रमेण तु॥ ६१॥
सम्पूज्य विधिवद् राजन् धूपैः कुसुमचन्दनैः। ततो दुग्धाऽऽज्यसहितं घटं देयं हिरण्मयम्॥ ६२॥

सर्वदानाधिकं चैतन्महापातकनाशनम्। कर्तव्यं श्रद्धया राजन् प्रेतत्वविनिवृत्तये॥ ६३॥

हे राजन्! उस घटके मध्यमें ब्रह्मा, विष्णु तथा कल्याण करनेवाले अविनाशी शङ्करकी स्थापना करे एवं घटके कण्ठमें पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमश: लोकपालोंका आवाहन करके उनकी धूप, पुष्प, चन्दन आदिसे विधिवत् पूजा करके दूध और घीके साथ उस हिरण्यमय घटका (ब्राह्मणको) दान करना चाहिये॥ ६१-६२॥ हे राजन्! प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये सभी दानोंमें श्रेष्ठ और महापातकोंका नाश करनेवाले इस दानको श्रद्धापूर्वक करना चाहिये॥ ६३॥

श्रीभगवानुवाच

एवं संजल्पतस्तस्य प्रेतेन सह काश्यप। सेनाऽऽजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुला॥ ६४॥
ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे महामणिम्। नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमेयिवान्॥ ६५॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे कश्यपपुत्र गरुड! प्रेतके साथ इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि उसी समय हाथी, घोड़े आदिसे व्याप्त राजाकी सेना पीछेसे वहाँ आ गयी॥ ६४॥ सेनाके आनेके बाद राजाको महामणि देकर उन्हें प्रणाम करके पुनः (अपने उद्धारके लिये और्ध्वदैहिक क्रिया करनेकी) प्रार्थना करके वह प्रेत अदृश्य हो गया॥ ६५॥

तस्माद् वनाद् विनिष्क्रम्य राजापि स्वपुरं ययौ। स्वपुरं च समासाद्य तत्सर्वं प्रेतभाषितम्॥ ६६॥

चकार विधिवत् पक्षिन्नौर्ध्वदैहिकजं विधिम्। तस्य पुण्यप्रदानेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ॥ ६७॥

हे पक्षिन्! (तदनन्तर) उस वनसे निकलकर राजा भी अपने नगरको चला गया और अपने नगरमें पहुँचकर प्रेतके द्वारा बताये हुए वचनोंके अनुसार उसने विधि-विधानसे औध्र्वदैहिक क्रियाका अनुष्ठान किया। उसके पुण्यप्रदानसे मुक्त होकर प्रेत स्वर्गको चला गया॥ ६६-६७॥

श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम्। किं पुनः पुत्रदत्तेन पिता यातीति चाद्भुतम्॥ ६८॥
इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः। न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि॥ ६९॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे बभ्रुवाहनप्रेतसंस्कारो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥



जब दूसरेके द्वारा दिये हुए श्राद्धसे प्रेतकी सद्गति हो गयी तो फिर पुत्रके द्वारा प्रदत्त श्राद्धसे पिताकी सद्गति हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य॥ ६८॥ इस पुण्यप्रद इतिहासको जो सुनता है और जो सुनाता है वे दोनों पापाचारोंसे युक्त होनेपर भी प्रेतत्वको प्राप्त नहीं होते॥ ६९॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'बभ्रुवाहनप्रेतसंस्कार' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥



आठवाँ अध्याय

आतुरकालिक (मरणकालिक) दान एवं मरणकालमें भगवन्नाम-स्मरणका माहात्म्य, अष्टमहादानोंका फल तथा धर्माचरणकी महिमा

गरुड उवाच

आमुष्मिकीं क्रियां सर्वां वद सुकृतिनां मम। कर्तव्या सा यथा पुत्रैस्तथा च कथय प्रभो॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे प्रभो! पुण्यात्माओंकी सारी पारलौकिक क्रियाओंके सम्बन्धमें मुझे बताइये। पुत्रोंको जिस प्रकार वह क्रिया करनी चाहिये, उसे उसी प्रकार कहिये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै। धार्मिकार्हं च यत्कृत्यं तत्सर्वं कथयामि ते॥ २ ॥
सुकृती वार्धके दृष्ट्वा शरीरं व्याधिसंयुतम्। प्रतिकूलान् ग्रहांश्चैव प्राणघोषस्य चाश्रुतिम्॥ ३ ॥
तदा स्वमरणं ज्ञात्वा निर्भयः स्यादतन्द्रितः। अज्ञातज्ञातपापानां प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ ४ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे तार्क्ष्य! मनुष्योंके हितकी दृष्टिसे आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है। धार्मिक मनुष्यके लिये करनेयोग्य जो कृत्य हैं, वह सब मैं तुम्हें कहता हूँ॥ २॥ पुण्यात्मा व्यक्ति वृद्धावस्थाके प्राप्त होनेपर अपने शरीरको व्याधिग्रस्त

तथा ग्रहोंकी प्रतिकूलताको देखकर और प्राणवायुके नाद न सुनायी पड़नेपर अपने मरणका समय जानकर निर्भय हो जाय और आलस्यका परित्याग कर जाने-अनजाने किये गये पापोंके विनाशके लिये प्रायश्चित्तका आचरण करे ॥ ३-४ ॥

यदा स्यादातुरः कालस्तदा स्नानं समारभेत्। पूजनं कारयेद्विष्णोः शालग्रामस्वरूपिणः॥ ५ ॥
अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च कुंकुमैस्तुलसीदलैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्बहुभिर्मोदकादिभिः॥ ६ ॥
दत्त्वा च दक्षिणां विप्रान्नैवेद्यादेव भोजयेत्। अष्टाक्षरं जपेन्मन्त्रं द्वादशाक्षरमेव च॥ ७ ॥

जब आतुरकाल उपस्थित हो जाय तो स्नान करके शालग्रामस्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजा कराये॥ ५॥ गन्ध, पुष्प, कुंकुम, तुलसीदल, धूप, दीप तथा बहुत-से मोदक आदि नैवेद्योंको समर्पित करके भगवान्‌की अर्चा करे॥ ६॥ और विप्रोंको दक्षिणा देकर नैवेद्यका ही भोजन कराये तथा अष्टाक्षर[1] अथवा द्वादशाक्षर[2]-मन्त्रका जप करे॥ ७॥

संस्मरेच्छृणुयाच्चैव विष्णोर्नाम शिवस्य च। हरेर्नाम हरेत् पापं नृणां श्रवणगोचरम्॥ ८ ॥
रोगिणोऽन्तिकमासाद्य शोचनीयं न बान्धवैः। स्मरणीयं पवित्रं मे नामधेयं मुहुर्मुहुः॥ ९ ॥

भगवान् विष्णु और शिवके नामका स्मरण करे और सुने, भगवान्‌का नाम कानोंसे सुनाई पड़नेपर वह मनुष्यके पापको नष्ट करता है॥ ८॥ रोगीके समीप आकर बान्धवोंको शोक नहीं करना चाहिये। प्रत्युत मेरे पवित्र नामका

१. ॐ नमो नारायणाय। २. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

बार-बार स्मरण-कीर्तन करना चाहिये॥ ९॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च॥ १०॥
एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः। समीपे रोगिणो ब्रूयुर्बान्धवास्ते प्रकीर्तिताः॥ ११॥
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। तस्य भस्मीभवन्त्याशु महापातककोटयः॥ १२॥

विद्वान् व्यक्तिको मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि[1]—इन दस नामोंका सदा स्मरण-कीर्तन करना चाहिये। जो व्यक्ति रोगीके समीप उपर्युक्त नामोंका कीर्तन करते हैं, वे ही उसके सच्चे बान्धव कहे गये हैं॥ १०-११॥ 'कृष्ण' यह मङ्गलमय नाम जिसकी वाणीसे उच्चरित होता है, उसके करोड़ों महापातक तत्काल भस्म हो जाते हैं॥ १२॥

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्। अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥ १३॥
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥ १४॥
हरेर्नाम्नि च या शक्तिः पापनिर्हरणे द्विज। तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः॥ १५॥

मरणासन्न अवस्थामें अपने पुत्रके बहानेसे 'नारायण' नाम लेकर अजामिल भी भगवद्धामको प्राप्त हो गया तो फिर जो श्रद्धापूर्वक भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेवाले हैं, उनके विषयमें क्या कहना!॥ १३॥ दूषित

१. ये दस भगवान्‌के प्रमुख अवतार कहे गये हैं।

चित्तवृत्तिवाले व्यक्तिके द्वारा भी स्मरण किये जानेपर भगवान् उसके समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं, जैसे अनिच्छापूर्वक भी स्पर्श करनेपर अग्नि जलाता ही है॥ १४॥ हे द्विज! (वासनाके सहित) पापोंका समूल विनाश करनेकी जितनी शक्ति भगवान्‌के नाममें है, पातकी मनुष्य उतना पाप करनेमें समर्थ ही नहीं है॥ १५॥

किङ्करेभ्यो यमः प्राह नयध्वं नास्तिकं जनम्। नैवानयत भो दूता हरिनामस्मरं नरम्॥ १६॥

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥ १७॥
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान्॥ १८॥
तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम्।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान्॥ १९॥

यमदेव अपने किङ्करोंसे कहते हैं—हे दूतो! हमारे पास नास्तिकजनोंको ले आया करो। भगवान्‌के नामका स्मरण करनेवाले मनुष्योंको मेरे पास मत लाया करो॥ १६॥ (क्योंकि) मैं (स्वयं) अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ, जानकीनायक रामचन्द्रका भजन करता हूँ॥ १७॥ हे दूतो! जो व्यक्ति हे कमलनयन, हे वासुदेव, हे विष्णु, हे धरणिधर, हे अच्युत, हे शङ्खचक्रपाणि! आप मेरे शरणदाता हों—ऐसा

कहते हैं, उन निष्पाप व्यक्तियोंको तुम दूरसे ही छोड़ देना॥ १८॥ (हे दूतो!) जो निष्किञ्चन और रसज्ञ परमहंसोंके द्वारा निरन्तर आस्वादित भगवान् मुकुन्दके पादारविन्द-मकरन्द-रससे विमुख हैं (अर्थात् भगवद्भक्तिसे विमुख हैं) और नरकके मूल गृहस्थीके प्रपञ्चमें तृष्णासे बद्ध हैं, ऐसे असत्पुरुषोंको मेरे पास लाया करो॥ १९॥

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥ २०॥
तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्। महतामपि पक्षीन्द्र विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम्॥ २१॥

जिनकी जिह्वा भगवान्के गुण और नामका कीर्तन नहीं करती, चित्त भगवान्के चरणारविन्दका स्मरण नहीं करता, सिर एक बार भी भगवान्को प्रणाम नहीं करता, ऐसे विष्णुके (आराधना-उपासना आदि) कृत्योंसे रहित असत्पुरुषोंको (मेरे पास) ले आओ॥ २०॥ इसलिये हे पक्षीन्द्र! जगत्में मङ्गल-स्वरूप भगवान् विष्णुका कीर्तन ही एकमात्र महान् पापोंके आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्तिका प्रायश्चित्त है—ऐसा जानो॥ २१॥

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्। न निष्पुनन्ति दुर्बुद्धिं सुराकुम्भमिवापगाः॥ २२॥
कृष्णनाम्ना न नरकं पश्यन्ति गतकिल्बिषाः। यमं च तद्भटांश्चैव स्वप्नेऽपि न कदाचन॥ २३॥

नारायणसे पराङ्मुख रहनेवाले व्यक्तियोंके द्वारा किये गये प्रायश्चित्ताचरण भी दुर्बुद्धि प्राणीको उसी

प्रकार पवित्र नहीं कर सकते, जैसे मदिरासे भरे घटको गङ्गाजी-सदृश नदियाँ पवित्र नहीं कर सकतीं॥ २२॥ भगवान् कृष्णके नामस्मरणसे पाप नष्ट हो जानेके कारण जीव नरकको नहीं देखते और स्वप्नमें भी कभी यम तथा यमदूतोंको नहीं देखते॥ २३॥

मांसास्थिरक्तवत्काये वैतरण्यां पतेन्न सः। योऽन्ते दद्याद् द्विजेभ्यश्च[1] नन्दनन्दनगामिति॥ २४॥
अतः स्मरेन्महाविष्णोर्नाम पापौघनाशनम्। गीतासहस्रनामानि पठेद्वा शृणुयादपि॥ २५॥
एकादशीव्रतं गीता गङ्गाम्बु तुलसीदलम्। विष्णोः पादाम्बुनामानि मरणे मुक्तिदानि च॥ २६॥
ततः संकल्पयेदन्नं सघृतं च सकाञ्चनम्। सवत्सा धेनवो देयाः श्रोत्रियाय द्विजातये॥ २७॥
अन्ते जनो यद्ददाति स्वल्पं वा यदि वा बहु। तदक्षयं भवेत् तार्क्ष्य यत्पुत्रश्चानुमोदते॥ २८॥

जो व्यक्ति अन्तकालमें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण जिसके पीछे चलते हैं, ऐसी गायको ब्राह्मणोंको दान देता है, वह मांस, हड्डी और रक्तसे परिपूर्ण वैतरणी नदीमें नहीं गिरता अथवा जो मृत्युके समयमें 'नन्दनन्दन' इस प्रकारकी वाणी (भगवन्नाम)-का उच्चारण करता है, वह पुनः मांस, अस्थि तथा रक्तसे पूर्ण वैतरणीरूपी शरीरको प्राप्त नहीं करता, शरीर धारण नहीं करता अर्थात् मुक्त हो जाता है॥ २४॥ अतः पापोंके समूहको नष्ट करनेवाले

१. दाँतोंके दो बार निकलनेके कारण इनकी 'द्विज' संज्ञा है। यहाँ द्विजेभ्यः का अर्थ दाँतोंसे उच्चारण होनेवाले शब्द 'नन्दनन्दन' से है और 'गाम्' का तात्पर्य वाणीसे है।

महाविष्णुके नामका स्मरण करना चाहिये अथवा गीता या विष्णुसहस्रनामका पठन अथवा श्रवण करना

चाहिये॥ २५॥ एकादशीका व्रत, गीता, गङ्गाजल, तुलसीदल, भगवान् विष्णुका चरणामृत और नाम—ये मरणकालमें मुक्ति देनेवाले हैं॥ २६॥ इसके बाद घृत और सुवर्णसहित अन्नदानका संकल्प करे। श्रोत्रिय द्विज (वेदपाठी ब्राह्मण)-को सवत्सा गौका दान करे॥ २७॥ हे तार्क्ष्य! जो मनुष्य अन्तकालमें थोड़ा या बहुत दान देता है और पुत्र उसका अनुमोदन करता है, वह दान अक्षय होता है॥ २८॥

अन्तकाले तु सत्पुत्रः सर्वदानानि दापयेत्। एतदर्थं सुतो लोके प्रार्थ्यते धर्मकोविदैः॥ २९॥
भूमिष्ठं पितरं दृष्ट्वा अर्धोन्मीलितलोचनम्। पुत्रैस्तृष्णा न कर्तव्या तद्धने पूर्वसंचिते॥ ३०॥
स तद्ददाति सत्पुत्रो यावज्जीवत्यसौ चिरम्। अतिवाहस्तु तन्मार्गे दुःखं न लभते यतः॥ ३१॥

सत्पुत्रको चाहिये कि अन्तकालमें सभी प्रकारका दान दिलाये, लोकमें धर्मज्ञ पुरुष इसीलिये पुत्रके लिये प्रार्थना करते हैं॥ २९॥ भूमिपर स्थित, आधी आँख मूँदे हुए पिताको देखकर पुत्रोंको उनके द्वारा पूर्व-संचित धनके विषयमें तृष्णा नहीं करनी चाहिये॥ ३०॥ सत्पुत्रके द्वारा दिये गये दानसे जबतक उसका पिता जीवित हो तबतक और (फिर मृत्युके अनन्तर) आतिवाहिक शरीरसे भी परलोकके मार्गमें वह दुःख नहीं प्राप्त करता॥ ३१॥

आतुरे चोपरागे च द्वयं दानं विशिष्यते। अतोऽवश्यं प्रदातव्यमष्टदानं तिलादिकम्॥ ३२॥

तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासो लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर्गावो ह्येकैकं पावनं स्मृतम्॥ ३३॥

आतुरकाल और ग्रहणकाल—इन दोनों कालोंमें दिये गये दानका विशेष महत्त्व है, इसलिये तिल आदि अष्ट दान अवश्य देने चाहिये॥ ३२॥ तिल, लोहा, सोना, कपास, नमक, सप्तधान्य*, भूमि और गौ—इनमेंसे एक-एकका दान भी पवित्र करनेवाला है॥ ३३॥

एतदष्टमहादानं महापातकनाशनम्। अन्तकाले प्रदातव्यं शृणु तस्य च सत्फलम्॥ ३४॥
मम स्वेदसमुद्भूताः पवित्रास्त्रिविधास्तिलाः। असुरा दानवा दैत्यास्तृप्यन्ति तिलदानतः॥ ३५॥
तिलाः श्वेतास्तथा कृष्णा दानेन कपिलास्तिलाः। संहरन्ति त्रिधा पापं वाङ्मनःकायसंचितम्॥ ३६॥

यह अष्ट महादान महापातकोंका नाश करनेवाला है। अतः अन्तकालमें इसे देना चाहिये। इन दानोंका जो उत्तम फल है उसे सुनो—॥ ३४॥ तीनों प्रकारके पवित्र तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं। असुर, दानव और दैत्य तिलदानसे तृप्त होते हैं॥ ३५॥ श्वेत, कृष्ण तथा कपिल (भूरे) वर्णके तिलका दान वाणी, मन और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंको नष्ट कर देता है॥ ३६॥

लौहदानं च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना। यमसीमां न चाप्नोति न इच्छेत् तस्य वर्त्मनि॥ ३७॥

* धान, जौ, गेहूँ, मूँग, उड़द, काकुन या कँगुनी और सातवाँ चना—ये सप्तधान्य कहे गये हैं।

कुठारो मुसलो दण्डः खड्गश्च छुरिका तथा। शस्त्राणि यमहस्ते च निग्रहे पापकर्मणाम्॥ ३८॥

यमायुधानां संतुष्ट्यै दानमेतदुदाहृतम्। तस्माद्दद्याल्लोहदानं यमलोके सुखावहम्॥ ३९॥

लोहेका दान भूमिमें हाथ रखकर देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह जीव यमसीमाको नहीं प्राप्त होता और यममार्गमें नहीं जाता॥ ३७॥ पाप-कर्म करनेवाले व्यक्तियोंका निग्रह करनेके लिये यमके हाथमें कुल्हाड़ी, मूसल, दण्ड, तलवार तथा छुरी—शस्त्रके रूपमें रहते हैं॥ ३८॥ यमराजके आयुधोंको संतुष्ट करनेके लिये यह (लोहेका) दान कहा गया है। इसलिये यमलोकमें सुख देनेवाले लोहदानको करना चाहिये॥ ३९॥

उरणः श्यामसूत्रश्च शण्डामर्कोऽप्यदुम्बरः। शेषम्बलो महादूता लोहदानात् सुखप्रदाः॥ ४०॥

शृणु तार्क्ष्य परं गुह्यं दानानां दानमुत्तमम्। दत्तेन तेन तुष्यन्ति भूर्भुवःस्वर्गवासिनः॥ ४१॥

ब्रह्माद्या ऋषयो देवा धर्मराजसभासदाः। स्वर्णदानेन संतुष्टा भवन्ति वरदायकाः॥ ४२॥

तस्माद् देयं स्वर्णदानं प्रेतोद्धरणहेतवे। न याति यमलोकं स स्वर्गतिं तात गच्छति॥ ४३॥

उरण, श्यामसूत्र, शण्डामर्क, उदुम्बर, शेषम्बल नामक (यमके) महादूत लोहदानसे सुख प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ४०॥ हे तार्क्ष्य! परम गोपनीय और दानोंमें उत्तम दानको सुनो, जिसके देनेसे भूलोक (पृथ्वी), भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) और स्वर्गलोकके निवासी (अर्थात् मनुष्य, भूत-प्रेत तथा देवगण) संतुष्ट होते हैं॥ ४१॥ ब्रह्मा आदि देवता, ऋषिगण तथा धर्मराजके सभासद—स्वर्णदानसे संतुष्ट होकर वर प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ४२॥ इसलिये प्रेतके उद्धारके

लिये स्वर्णदान करना चाहिये। हे तात! स्वर्णका दान देनेसे जीव यमलोक नहीं जाता, उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ ४३॥

चिरं वसेत् सत्यलोके ततो राजा भवेदिह। रूपवान् धार्मिको वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः॥ ४४॥
कार्पासस्य च दानेन दूतेभ्यो न भयं भवेत्। लवणं दीयते यच्च तेन नैव भयं यमात्॥ ४५॥
अयोलवणकार्पासतिलकाञ्चनदानतः। चित्रगुप्तादयस्तुष्टा यमस्य पुरवासिनः॥ ४६॥

बहुत कालतक वह जीव सत्यलोकमें निवास करता है, तदनन्तर इस लोकमें रूपवान्, धार्मिक, वाक्पटु, श्रीमान् और अतुल पराक्रमी राजा होता है॥ ४४॥ कपासका दान देनेसे यमदूतोंसे भय नहीं होता, लवणका दान देनेसे यमसे भय नहीं होता। लोहा, नमक, कपास, तिल और स्वर्णके दानसे यमपुरके निवासी चित्रगुप्त आदि संतुष्ट होते हैं॥ ४५-४६॥

सप्तधान्यप्रदानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत्। तुष्टा भवन्ति येऽन्येऽपि त्रिषु द्वारेष्वधिष्ठिताः॥ ४७॥
व्रीहयो यवगोधूमा मुद्गा माषाः प्रियङ्गवः। चणकाः सप्तमा ज्ञेयाः सप्तधान्यमुदाहृतम्॥ ४८॥
गोचर्ममात्रं वसुधा दत्ता पात्रे विधानतः। पुनाति ब्रह्महत्यायां दृष्टमेतन्मुनीश्वरैः॥ ४९॥
न व्रतेभ्यो न तीर्थेभ्यो नान्यदानाद् विनश्यति। राज्ये कृतं महापापं भूमिदानाद्विलीयते॥ ५०॥
पृथिवीं सस्यसम्पूर्णां यो ददाति द्विजातये। स प्रयातीन्द्रभुवने पूज्यमानः सुरासुरैः॥ ५१॥

सप्तधान्य प्रदान करनेसे धर्मराज और यमपुरके तीनों द्वारोंपर रहनेवाले अन्य द्वारपाल भी प्रसन्न हो जाते

हैं ॥ ४७ ॥ धान, जौ, गेहूँ, मूँग, उड़द, काकुन या कँगुनी और सातवाँ चना—ये सप्तधान्य कहे गये हैं ॥ ४८ ॥ जो व्यक्ति गोचर्ममात्र* भूमि विधानपूर्वक सत्पात्रको देता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होकर पवित्र हो जाता है, ऐसा मुनीश्वरोंने देखा है ॥ ४९ ॥ राज्यमें किया हुआ अर्थात् राज्यसंचालनमें राजासे होनेवाला महापाप न व्रतोंसे, न तीर्थसेवनसे और न अन्य किसी दानसे नष्ट होता है, अपितु वह तो केवल भूमिदानसे ही विलीन होता है ॥ ५० ॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणको धान्यपूर्ण पृथिवीका दान करता है, वह देवताओं और असुरोंसे पूजित होकर इन्द्रलोकमें जाता है ॥ ५१ ॥

अत्यल्पफलदानि स्युरन्यदानानि काश्यप। पृथिवीदानजं पुण्यमहन्यहनि वर्धते ॥ ५२ ॥
यो भूत्वा भूमिपो भूमिं नो ददाति द्विजातये। स नाप्नोति कुटीं ग्रामे दरिद्री स्याद्भवे भवे ॥ ५३ ॥
अदानाद्भूमिदानस्य भूपतित्वाभिमानतः। निवसेन्नरके यावच्छेषो धारयते धराम् ॥ ५४ ॥
तस्माद्भूमीश्वरो भूमिदानमेव प्रदापयेत्। अन्येषां भूमिदानार्थं गोदानं कथितं मया ॥ ५५ ॥
ततोऽन्तधेनुर्दातव्या रुद्रधेनुं प्रदापयेत्। ऋणधेनुं ततो दत्त्वा मोक्षधेनुं प्रदापयेत् ॥ ५६ ॥
दद्याद्वैतरणीं धेनुं विशेषविधिना खग। तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात् ॥ ५७ ॥

* गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितः। तद् गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाघनाशनम् ॥ (भविष्य० २। ३। २। २५)
सौ गायें और एक बैल जितनी भूमिपर स्वतन्त्ररूपसे रह सकें, विचरण कर सकें, उतनी विस्तारवाली भूमि गोचर्म कहलाती है। इसका दान समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।

हे गरुड! अन्य दानोंका फल अत्यल्प होता है, किंतु पृथ्वीदानका पुण्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है॥ ५२॥ भूमिका स्वामी होकर भी जो ब्राह्मणको भूमि नहीं देता, वह (जन्मान्तरमें) किसी ग्राममें एक कुटियातक भी नहीं प्राप्त करता और जन्म-जन्मान्तरमें अर्थात् प्रत्येक जन्ममें दरिद्र होता है॥ ५३॥ भूमिका स्वामी होनेके अभिमानमें जो भूमिका दान नहीं करता, वह तबतक नरकमें निवास करता है, जबतक शेषनाग पृथ्वीको धारण करते हैं॥ ५४॥ इसलिये भूमिके स्वामीको भूमिदान करना ही चाहिये। अन्य व्यक्तियोंके लिये भूमिदानके स्थानपर मैंने गोदानका विधान किया है॥ ५५॥ इसके बाद अनन्तधेनुका दान करना चाहिये और रुद्रधेनु देनी चाहिये। तदनन्तर ऋणधेनु देकर मोक्षधेनुका दान करना चाहिये॥ ५६॥ हे खग! विशेष विधानपूर्वक वैतरणीधेनुका दान करना चाहिये।* (दानमें दी गयी) गौएँ मनुष्यको त्रिविध (आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तापों तथा कायिक, वाचिक एवं मानसिक) पापोंसे मुक्त करती हैं॥ ५७॥

बालत्वे यच्च कौमारे यत्पापं यौवने कृतम्। वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि॥ ५८॥
यन्निशायां तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः। सन्ध्ययोर्यत्कृतं पापं कायेन मनसा गिरा॥ ५९॥
दत्त्वा धेनुं सकृद्वापि कपिलां क्षीरसंयुताम्। सोपस्करां सवत्सां च तपोवृत्तसमन्विते॥ ६०॥

* अष्टदानमें दी जानेवाली गाय अनन्तधेनु, मृत्युके दुःखको दूर करनेके लिये दी जानेवाली गाय रुद्रधेनु, ज्ञात-अज्ञात ऋणकी मुक्तिके लिये ऋणधेनु, मुक्तिके लिये दी जानेवाली गाय मोक्षधेनु तथा वैतरणीको पार करनेवाली वैतरणीधेनु कही जाती है।

ब्राह्मणे वेदविदुषे सर्वपापैः प्रमुच्यते। उद्धरेदन्तकाले सा दातारं पापसंचयात्॥ ६१॥

बाल्यावस्थामें, कुमारावस्थामें, युवावस्थामें, वृद्धावस्थामें अथवा दूसरे जन्ममें, रातमें, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्न और दोनों संध्याकालोंमें शरीर, मन और वाणीसे जो-जो पाप किये गये हैं, वे सभी पाप तपस्या और सदाचारसे युक्त वेदविद् ब्राह्मणको उपस्करयुक्त (दानसामग्रीसहित) सवत्सा और दूध देनेवाली कपिला गौके एक बार दान देनेसे नष्ट हो जाते हैं। दानमें दी गयी वह गौ अन्तकालमें गोदान करनेवाले व्यक्तिका संचित पापोंसे उद्धार कर देती है॥ ५८—६१॥

एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यातुरस्य च गोः शतम्। सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम्॥ ६२॥
मृतस्यैतत् पुनर्लक्षं विधिपूतं च तत्समम्। तीर्थपात्रसमोपेतं दानमेकं च लक्षधा॥ ६३॥

स्वस्थचित्तावस्थामें दी गयी एक गौ, आतुरावस्थामें दी गयी सौ गौ और मृत्युकालमें चित्तविवर्जित व्यक्तिके द्वारा दी गयी एक हजार गौ तथा मरणोत्तरकालमें दी गयी विधिपूर्वक एक लाख गौके दानका फल बराबर ही होता है। (यहाँ स्वस्थावस्थामें गोदान करनेका विशेष महत्त्व बतलाया गया है।) तीर्थमें सत्पात्रको दी गयी एक गौका दान एक लक्ष गोदानके तुल्य होता है॥ ६२-६३॥

पात्रे दत्तं च यद्दानं तल्लक्षगुणितं भवेत्। दातुः फलमनन्तं स्यान्न पात्रस्य प्रतिग्रहः॥ ६४॥
स्वाध्यायहोमसंयुक्तः परपाकविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्य न लिप्यते॥ ६५॥



गोदान



[विवरण पृ० २६२ पर]

पुण्यात्माओंको चतुर्भुज रूपमें धर्मराजके दर्शन

विषशीतापहौ मन्त्रवह्नी किं दोषभागिनौ। अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत्॥ ६६॥
कुलैकशतसंयुक्तं गृहीतारं तु पातयेत्। नापात्रे विदुषा देया ह्यात्मनः श्रेय इच्छता॥ ६७॥
एका ह्येकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन। सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम्॥ ६८॥
कथिता या मया पूर्वं तव वैतरणी नदी। तस्या ह्युद्धरणोपायं गोदानं कथयामि ते॥ ६९॥

सत्पात्रमें दिया गया दान लक्षगुना होता है। (उस दानसे) दाताको अनन्त फल प्राप्त होता है और (दान लेनेवाले) पात्रको प्रतिग्रह (दान लेने)-का दोष नहीं लगता॥ ६४॥ स्वाध्याय और होम करनेवाला तथा दूसरेके द्वारा पकाये गये अन्नको न खानेवाला अर्थात् स्वयंपाकी ब्राह्मण रत्नपूर्ण पृथ्वीका दान लेकर भी प्रतिग्रहदोषसे लिप्त नहीं होता॥ ६५॥ विष और शीतको नष्ट करनेवाले मन्त्र और आग भी क्या दोषके भागी होते हैं? अपात्रको दी गयी वह गौ दाताको नरक ले जाती है और अपात्र प्रतिग्रहीताको एक-सौ-एक पीढ़ीके पुरुषोंके सहित नरकमें गिराती है, इसलिये अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले विद्वान् व्यक्तिको अपात्रको दान नहीं देना चाहिये॥ ६६-६७॥ एक गौ एक ही ब्राह्मणको देनी चाहिये। बहुत ब्राह्मणोंको एक गौ कदापि नहीं देनी चाहिये। वह गौ यदि बेची गयी अथवा बाँटी गयी तो सात पीढ़ीतकके पुरुषोंको जला देती है॥ ६८॥ (हे खगेश्वर!) मैंने तुमसे पहले वैतरणी नदीके विषयमें कहा था, उसे पार करनेके उपायभूत (वैतरणी) गोदानके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ— ॥ ६९॥

कृष्णां वा पाटलां वाऽपि धेनुं कुर्यादलंकृताम्। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरीं कांस्यपात्रोपदोहिनीम्॥ ७०॥

कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां कण्ठघण्टासमन्विताम्। कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रं सचैलकम्॥ ७१॥
यमं हैमं न्यसेत् तत्र लौहदण्डसमन्वितम्। कांस्यपात्रे घृतं कृत्वा सर्वं तस्योपरि न्यसेत्॥ ७२॥
नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्। गर्तं विधाय सजलं कृत्वा तस्मिन् क्षिपेत्तरीम्॥ ७३॥

काले अथवा लाल रंगकी गौको सोनेकी सींग, चाँदीके खुर और काँसेके पात्रकी दोहनीके सहित दो काले रंगके वस्त्रोंसे आच्छादित करे। उसके कण्ठमें घण्टा बाँधे तब कपासके ऊपर वस्त्रसहित ताम्रपात्रको स्थापित करके वहाँ लोहदण्डसहित सोनेकी यममूर्ति भी स्थापित करे और काँसेके पात्रमें घृत रखकर यह सब ताम्रपात्रके ऊपर रखे। ईखकी नाव बनाकर और रेशमी-सूत्रसे उसे बाँधकर, भूमिपर गड्ढा खोदे एवं उसमें जल भरकर वह ईखकी नाव उसमें डाले॥ ७०—७३॥

तस्योपरि स्थितां कृत्वा सूर्यदेहसमुद्भवाम्। धेनुं संकल्पयेत् तत्र यथाशास्त्रविधानतः॥ ७४॥
सालङ्काराणि वस्त्राणि ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत्। पूजां कुर्याद्विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥ ७५॥
पुच्छं संगृह्य धेनोस्तु नावमाश्रित्य पादतः। पुरस्कृत्य ततो विप्रमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ ७६॥

उसके समीप सूर्यकी देहसे उत्पन्न हुई धेनुको खड़ी करके शास्त्रीय विधिविधानके अनुसार उसके दानका संकल्प करे। ब्राह्मणोंको अलङ्कार और वस्त्रका दान दे तथा गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे विधानपूर्वक (गौकी) पूजा करे।

गौकी पूँछको पकड़ करके ईखकी नावपर पैर रखकर ब्राह्मणको आगे करके इस मन्त्रको पढ़े— ॥ ७४—७६ ॥

भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदु:खिनाम्। त्राता त्वं हि जगन्नाथ शरणागतवत्सल ॥ ७७ ॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर। सदक्षिणां मया दत्तां तुभ्यं वैतरणीं नम: ॥ ७८ ॥
यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम्। तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीं नम: ॥ ७९ ॥

हे जगन्नाथ! हे शरणागतवत्सल! भवसागरमें डूबे हुए शोक-संतापकी लहरोंसे दु:ख प्राप्त करते हुए जनोंके आपही रक्षक हैं। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! विष्णुरूप! भूमिदेव! आप मेरा उद्धार कीजिये। मैंने दक्षिणाके सहित यह वैतरणी-रूपिणी गौ आपको दिया है, आपको नमस्कार है। मैं महाभयावह यममार्गमें सौ योजन विस्तारवाली उस वैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छासे आपको इस वैतरणीगौका दान देता हूँ। आपको नमस्कार है ॥ ७७—७९ ॥

धेनुके मां प्रतीक्षस्व यमद्वारमहापथे। उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते ॥ ८० ॥
गावो मे अग्रत: सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठत:। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ ८१ ॥
या लक्ष्मी: सर्वभूतानां या च देवे प्रतिष्ठिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ ८२ ॥
इति मन्त्रैश्च सम्प्रार्थ्य साञ्जलिर्धेनुकां यमम्। सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ८३ ॥

हे वैतरणीधेनु! हे देवेशि! यमद्वारके महामार्गमें वैतरणी नदीको पार करानेके लिये आप मेरी प्रतीक्षा करना,

आपको नमस्कार है ॥ ८० ॥ मेरे आगे भी गौएँ हों, मेरे पीछे भी गौएँ हों, मेरे हृदयमें भी गौएँ हों और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँ ॥ ८१ ॥ जो लक्ष्मी सभी प्राणियोंमें प्रतिष्ठित हैं तथा जो देवतामें प्रतिष्ठित हैं वे ही धेनुरूपा लक्ष्मीदेवी मेरे पापको नष्ट करें ॥ ८२ ॥ इस प्रकार मन्त्रोंसे भलीभाँति प्रार्थना करके हाथ जोड़कर गौ और यमकी प्रदक्षिणा करके सब कुछ ब्राह्मणको प्रदान करे ॥ ८३ ॥

एवं दद्याद्विधानेन यो गां वैतरणीं खग। स याति धर्ममार्गेण धर्मराजसभान्तरे ॥ ८४ ॥
स्वस्थावस्थशरीरे तु वैतरण्यां व्रतं चरेत्। देया च विदुषा धेनुस्तां नदीं तर्तुमिच्छता ॥ ८५ ॥
सा नायाति महामार्गे गोदानेन नदी खग। तस्मादवश्यं दातव्यं पुण्यकालेषु सर्वदा ॥ ८६ ॥
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु ब्राह्मणावसथेषु च। चन्द्रसूर्योपरागेषु संक्रान्तौ दर्शवासरे ॥ ८७ ॥
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते युगादिषु। अन्येषु पुण्यकालेषु दद्याद्गोदानमुत्तमम् ॥ ८८ ॥

हे खग! इस विधानसे जो वैतरणी धेनुका दान करता है, वह धर्ममार्गसे धर्मराजकी सभामें जाता है ॥ ८४ ॥ शरीरकी स्वस्थावस्थामें ही वैतरणीविषयक व्रतका आचरण कर लेना चाहिये और वैतरणी पार करनेकी इच्छासे विद्वान्‌को वैतरणी गौका दान करना चाहिये ॥ ८५ ॥ हे खग! वैतरणी गौका दान करनेसे महामार्गमें वह नदी नहीं आती, इसलिये सर्वदा पुण्यकालमें गोदान करना चाहिये ॥ ८६ ॥ गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें, ब्राह्मणोंके निवासस्थानोंमें, चन्द्र और सूर्यग्रहणके कालमें, संक्रान्तिमें, अमावास्या तिथिमें, उत्तरायण और दक्षिणायन (कर्क

और मकर संक्रान्तियों)-में, विषुव (अर्थात् मेष और तुलाकी संक्रान्तिमें), व्यतीपात योग[1]में, युगादि तिथियोंमें[2] तथा अन्यान्य पुण्यकालोंमें उत्तम गोदान देना चाहिये॥ ८७-८८॥

यदैव जायते श्रद्धा पात्रं सम्प्राप्यते यदा। स एव पुण्यकालः स्याद्यतः सम्पत्तिरस्थिरा॥ ८९॥
अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः। नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंचयः॥ ९०॥
आत्मवित्तानुसारेण तत्र दानमनन्तकम्। देयं विप्राय विदुषे स्वात्मनः श्रेय इच्छता॥ ९१॥

जब कभी भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय और जब भी दानके लिये सुपात्र प्राप्त हो जाय, वही समय दानके लिये पुण्यकाल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है॥ ८९॥ शरीर नश्वर है, सम्पत्ति सदा रहनेवाली है नहीं और मृत्यु प्रतिक्षण निकट आती जा रही है, इसलिये धर्मका संचय करना चाहिये॥ ९०॥ अपनी धन-सम्पत्तिके अनुसार किया गया दान अनन्त (फलवाला) होता है, इसलिये अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको विद्वान् ब्राह्मणको[3] दान देना चाहिये॥ ९१॥

---

१. व्यतीपात योग—धनिष्ठा, आर्द्रा आदि नक्षत्रोंमें चन्द्रमाके रहनेपर रविवारको पड़नेवाली अमावास्या।

२. युगादि तिथि—युगके आरम्भकी तिथि युगादि तिथि कहलाती है। सत्ययुगकी प्रारम्भिक तिथि वैशाख शुक्ल तृतीया, त्रेताकी आरम्भिक तिथि कार्तिक शुक्ल नवमी, द्वापरकी प्रारम्भिक तिथि भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी और कलियुगके आरम्भकी तिथि माघ अमावास्या है। (विष्णु पु० ३। १४। १२)

३. दान सदैव सत्पात्रको ही देना चाहिये और दया किसीके भी प्रति की जा सकती है।

अल्पेनापि हि वित्तेन स्वहस्तेनात्मने कृतम्। तदक्षय्यं भवेद्दानं तत्कालं चोपतिष्ठति॥ १२॥
गृहीतदानपाथेय: सुखं याति महाध्वनि। अन्यथा क्लिश्यते जन्तु: पाथेयरहित: पथि॥ १३॥

अपने हाथसे अपने कल्याणके लिये दिया गया अल्प वित्तवाला वह दान भी अक्षय होता है और उसका फल भी तत्काल प्राप्त होता है॥ १२॥ दानरूपी पाथेयको लेकर जीव (परलोकके) महामार्गमें सुखपूर्वक जाता है अन्यथा (दानरूपी) पाथेयरहित प्राणीको यममार्गमें क्लेश प्राप्त होता है॥ १३॥

यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवै:। यमलोकपथे तानि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रत:॥ १४॥
महापुण्यप्रभावेण मानुषं जन्म लभ्यते। यस्तत्प्राप्य चरेद्धर्मं स याति परमां गतिम्॥ १५॥
अविज्ञाय नरो धर्मं दु:खमायाति याति च। मनुष्यजन्मसाफल्यं केवलं धर्मसेवनम्॥ १६॥

पृथ्वीपर मनुष्योंके द्वारा जो-जो दान दिये जाते हैं, यमलोकके मार्गमें वे सभी आगे-आगे उपस्थित हो जाते हैं॥ १४॥ महान् पुण्यके प्रभावसे मनुष्य-जन्म प्राप्त होता है। उस मनुष्ययोनिको प्राप्तकर जो व्यक्ति धर्माचरण करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है॥ १५॥ धर्मको न जाननेके कारण व्यक्ति (संसारमें) दु:खपूर्वक जन्म लेता है और मरता है। केवल धर्मके सेवनमें ही मनुष्य-जीवनकी सफलता है॥ १६॥

धनपुत्रकलत्रादि शरीरमपि बान्धवा:। अनित्यं सर्वमेवेदं तस्माद्धर्मं समाचरेत्॥ १७॥
तावद्बन्धु: पिता तावद्यावज्जीवति मानव:। मृतानामन्तरं ज्ञात्वा क्षणात् स्नेहो निवर्तते॥ १८॥

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति विद्यान्मुहुर्मुहुः। जीवन्नपीति संचिन्त्य मृतानां कः प्रदास्यति॥ ९९॥

धन, पुत्र, पत्नी आदि बान्धव और यह शरीर भी सब कुछ अनित्य है, इसलिये धर्माचरण करना चाहिये॥ ९७॥ जबतक मनुष्य जीता है तभीतक बन्धु-बान्धव और पिता आदिका सम्बन्ध रहता है, मरनेके अनन्तर क्षणमात्रमें सम्पूर्ण स्नेहसम्बन्ध निवृत्त हो जाता है॥ ९८॥ जीवितावस्थामें अपना आत्मा ही अपना बन्धु है—ऐसा बार-बार विचार करना चाहिये। मरनेके अनन्तर कौन (उसके उद्देश्यसे) दान देगा?॥ ९९॥

एवं जानन्निदं सर्वं स्वहस्तेनैव दीयताम्। अनित्यं जीवितं यस्मात् पश्चात् कोऽपि न दास्यति॥ १००॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ। विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥ १०१॥
गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात्सर्वबान्धवाः। शुभाशुभ कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति॥ १०२॥

ऐसा जानकर अपने हाथसे ही सब कुछ दान देना चाहिये; क्योंकि जीवन अनित्य है, बादमें अर्थात् उसकी मृत्युके पश्चात् कोई भी उसके लिये दान नहीं देगा॥ १००॥ मृत शरीरको काठ और ढेलेके समान पृथ्वीपर छोड़कर बन्धु-बान्धव विमुख होकर लौट जाते हैं, केवल धर्म ही उसका अनुगमन करता है॥ १०१॥ धन-सम्पत्ति घरमें ही छूट जाती है, सभी बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं, किंतु प्राणीके द्वारा किया हुआ शुभाशुभ कर्म परलोकमें उसके पीछे-पीछे जाता है॥ १०२॥

शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम्। पुण्यं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः॥ १०३॥

न कोऽपि कस्यचिद्बन्धुः संसारे दुःखसागरे। आयाति कर्मसम्बन्धाद्याति कर्मक्षये पुनः॥ १०४॥

शरीर आगसे जल जाता है किंतु किया हुआ कर्म साथमें रहता है। प्राणी जो कुछ पाप अथवा पुण्य करता है, उसका वह सर्वत्र भोग प्राप्त करता है॥ १०३॥ इस दुःखपूर्ण संसारसागरमें कोई भी किसीका बन्धु नहीं है। प्राणी अपने कर्मसम्बन्धसे (संसारमें) आता है और फलभोगसे कर्मका क्षय होनेपर पुनः चला जाता है। (मृत्युको प्राप्त हो जाता है।)॥ १०४॥

मातृपितृसुतभ्रातृबन्धुदारादिसङ्गमः। प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः॥ १०५॥
कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च कस्य भार्या धनं च वा। संसारे नास्ति कः कस्य स्वयं तस्मात् प्रदीयताम्॥ १०६॥
आत्मायत्तं धनं यावत् तावद्विप्रे समर्पयेत्। पराधीने धने जाते न किंचिद्वक्तुमुत्सहेत्॥ १०७॥

माता-पिता, पुत्र, भाई, बन्धु और पत्नी आदिका परस्पर मिलन प्याऊपर एकत्र हुए जन्तुओंके समान अथवा नदीमें बहनेवाले काष्ठसमूहके समान नितान्त चञ्चल अर्थात् अस्थिर है॥ १०५॥ किसके पुत्र, किसके पौत्र, किसकी भार्या और किसका धन? संसारमें कोई किसीका नहीं है। इसलिये अपने हाथसे स्वयं दान देना चाहिये॥ १०६॥ जबतक धन अपने अधीन है, तबतक ब्राह्मणको दान कर दे, क्योंकि धन दूसरेके अधीन (पराया) हो जानेपर तो दान देनेके लिये कहनेका उत्साह (साहस) भी नहीं होगा॥ १०७॥

पूर्वजन्मकृताद्दानादत्र लब्धं धनं बहु। तस्मादेवं परिज्ञाय धर्मार्थं दीयतां धनम्॥ १०८॥
धर्मात् प्रजायतेऽर्थश्च धर्मात् कामोऽभिजायते। धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत्॥ १०९॥

श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः। निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः॥ ११० ॥

पूर्वजन्ममें किये हुए दानके फलस्वरूप यहाँ बहुत सारा धन प्राप्त हुआ है, इसलिये ऐसा जानकर धर्मके लिये धन देना चाहिये॥ १०८॥ धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, धर्मसे कामकी प्राप्ति होती है और धर्मसे ही मोक्षकी भी प्राप्ति होती है, इसलिये धर्माचरण करना चाहिये॥ १०९॥ धर्म श्रद्धासे धारण किया जाता है, बहुत-सी धनराशिसे नहीं। अकिंचन मुनिगण भी श्रद्धावान् होकर स्वर्गको प्राप्त हुए हैं॥ ११०॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रियमात्मनः॥ १११ ॥
तस्मादवश्यं दातव्यं तदा दानं विधानतः। अल्पं वा बहु वेतीमां गणनां नैव कारयेत्॥ ११२ ॥
धर्मात्मा च स पुत्रो वै दैवतैरपि पूज्यते। दापयेद्यस्तु दानानि पितरं ह्यातुरं भुवि॥ ११३ ॥
पित्रोर्निमित्तं यद्वित्तं पुत्रैः पात्रे समर्पितम्। आत्मापि पावितस्तेन पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥ ११४ ॥
पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरेव च। भगिनीदशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम्॥ ११५ ॥

जो मनुष्य पत्र, पुष्प, फल अथवा जल मुझे भक्तिभावसे समर्पित करता है, उस संयतात्माके द्वारा भक्तिपूर्वक दिये गये पदार्थोंको मैं प्राप्त करता हूँ[1]॥ १११॥ इसलिये विधिविधानपूर्वक अवश्य ही दान देना चाहिये। थोड़ा हो या अधिक इसकी कोई गणना नहीं करनी चाहिये॥ ११२॥ जो पुत्र पृथ्वीपर पड़े हुए आतुर पिताके द्वारा दान दिलाता है,

१. द्रौपदीने शाक, गजेन्द्रने पुष्प, शबरीने फल (बेर) तथा रन्तिदेवने जल प्रदानकर भगवत्कृपा प्राप्त की।

वह धर्मात्मा पुत्र देवताओंके लिये भी पूजनीय होता है ॥ ११३ ॥ माता-पिताके निमित्त जो धन पुत्रके द्वारा सत्पात्रको समर्पित किया जाता है, उससे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रके साथ वह व्यक्ति स्वयं भी पवित्र हो जाता है ॥ ११४ ॥ पिताके उद्देश्यसे किये गये दानसे सौ गुना, माताके उद्देश्यसे किये गये दानसे हजार गुना, बहनके उद्देश्यसे किये गये दानसे दस हजार गुना और सहोदर भाईके निमित्त किये गये दानसे अनन्त गुना पुण्य प्राप्त होता है ॥ ११५ ॥

न चैवोपद्रवा दातुर्न वा नरकयातनाः । मृत्युकाले न च भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥ ११६ ॥
यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके । मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पापिनः खग ॥ ११७ ॥
पुत्राः पौत्राः सहभ्राता सगोत्राः सुहृदस्तु ये । यच्छन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्नास्ते न संशयः ॥ ११८ ॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे आतुरदाननिरूपणो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



दान देनेवाला उपद्रवग्रस्त नहीं होता, उसे नरकयातना नहीं प्राप्त होती और मृत्युकालमें उसे यमदूतोंसे भी कोई भय नहीं होता ॥ ११६ ॥ हे खग! यदि कोई व्यक्ति लोभसे आतुरकालमें दान नहीं देते, वे कंजूस पापी (प्राणी) मरनेके अनन्तर शोकमग्न होते हैं ॥ ११७ ॥ आतुरकालमें (आतुरके उद्देश्यसे) जो पुत्र, पौत्र, सहोदर भाई, सगोत्री और सुहज्जन दान नहीं देते, वे ब्रह्महत्यारे हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ११८ ॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'आतुरदाननिरूपण' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥



नवाँ अध्याय

मरणासन्न व्यक्तिके निमित्त किये जानेवाले कृत्य

गरुड उवाच

कथितं भवता सम्यग्दानमातुरकालिकम् । म्रियमाणस्य यत्कृत्यं तदिदानीं वद प्रभो ॥ १ ॥

गरुडजी बोले—हे प्रभो! आपने आतुरकालिक दानके संदर्भमें भलीभाँति कहा। अब म्रियमाण (मरणासन्न) व्यक्तिके लिये जो कुछ करना चाहिये, उसे बताइये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि देहत्यागस्य तद्विधिम् । मृता येन विधानेन सद्गतिं यान्ति मानवाः ॥ २ ॥
कर्मयोगाद्यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः । तुलसीसंनिधौ कुर्यान्मण्डलं गोमयेन तु ॥ ३ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! जिस विधानसे मनुष्य मरनेपर सद्गति प्राप्त करते हैं, शरीर-त्याग करनेकी उस विधिको मैं कहता हूँ, सुनो ॥ २ ॥ कर्मके सम्बन्धसे जब प्राणी अपना शरीर छोड़ने लगता है तो उस समय तुलसीके समीप गोबरसे एक मण्डलकी रचना करनी चाहिये ॥ ३ ॥

तिलांश्चैव विकीर्याथ दर्भांश्चैव विनिक्षिपेत् । स्थापयेदासने शुभ्रे शालग्रामशिलां तदा ॥ ४ ॥

शालग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा। तत्संनिधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता॥ ५ ॥
तुलसीविटपच्छाया यत्रास्ति भवतापहा। तत्रैव मरणान्मुक्तिः सर्वदा दानदुर्लभा॥ ६ ॥

वहाँ (उस मण्डलके ऊपर) तिल बिखेरकर कुशोंको बिछाये, तदनन्तर उनके ऊपर श्वेत वस्त्रके आसनपर शालग्राम-शिलाको स्थापित करे॥ ४॥ जहाँ पाप, दोष और भयको हरण करनेवाली शालग्राम-शिला विद्यमान है, उसके संनिधानमें मरनेसे प्राणीकी मुक्ति सुनिश्चित है॥ ५॥ जहाँ जगत्‌के तापका हरण करनेवाली तुलसीवृक्षकी छाया है, वहाँ मरनेसे सदैव मुक्ति ही होती है, जो मुक्ति दानादि कर्मोंसे दुर्लभ है॥ ६॥

तुलसीविटपस्थानं गृहे यस्यावतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिङ्कराः॥ ७ ॥
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति। यमस्तं नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि॥ ८ ॥
तस्या दलं मुखे कृत्वा तिलदर्भासने मृतः। नरो विष्णुपुरं याति पुत्रहीनोऽप्यसंशयः॥ ९ ॥

जिसके घरमें तुलसीवृक्षके लिये स्थान बना हुआ है, वह घर तीर्थस्वरूप ही है, वहाँ यमके दूत प्रवेश नहीं करते॥ ७॥ तुलसीकी मञ्जरीसे युक्त होकर जो प्राणी अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी यमराज उसे देख नहीं सकते॥ ८॥ तुलसीके दलको मुखमें रखकर तिल और कुशके आसनपर मरनेवाला व्यक्ति पुत्रहीन हो तो भी निःसंदेह विष्णुपुरको जाता है॥ ९॥

तिलाः पवित्रास्त्रिविधा दर्भाश्च तुलसीरपि। नरं निवारयन्त्येते दुर्गतिं यान्तमातुरम्॥ १०॥

मम स्वेदसमुद्भूता यतस्ते पावनास्तिलाः। असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्ततः॥ ११॥
दर्भा विभूतिर्मे तार्क्ष्य मम रोमसमुद्भवाः। अतस्तत्स्पर्शनादेव स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः॥ १२॥

तीनों प्रकार (काले, सफेद और भूरे)-के तिल, कुश और तुलसी—ये सब म्रियमाण प्राणीको दुर्गतिसे बचा लेते हैं॥ १०॥ यतः मेरे पसीनेसे तिल पैदा हुए हैं, अतः वे पवित्र हैं। असुर, दानव और दैत्य तिलको देखकर भाग जाते हैं॥ ११॥ हे तार्क्ष्य! मेरे रोमसे पैदा हुए दर्भ (कुश) मेरी विभूति हैं। इसलिये उनके स्पर्शसे ही मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ १२॥

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः। कुशाग्रे शङ्करो देवस्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः॥ १३॥
अतः कुशा वह्निमन्त्रतुलसीविप्रधेनवः। नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः॥ १४॥
दर्भाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने। मन्त्रा गौस्तुलसी नीचे चितायां च हुताशनः॥ १५॥

कुशके मूलमें ब्रह्मा, कुशके मध्यमें जनार्दन और कुशके अग्रभागमें शङ्कर—इस प्रकार तीनों देवता कुशमें स्थित रहते हैं॥ १३॥ इसलिये कुश, अग्नि, मन्त्र, तुलसी, ब्राह्मण और गौ—ये बार-बार उपयोग किये जानेपर भी निर्माल्य नहीं होते॥ १४॥ पिण्डदानमें उपयोग किये गये दर्भ (कुश), प्रेतके निमित्त भोजन करनेवाले ब्राह्मण, नीचके मुखसे उच्चरित मन्त्र, नीचसम्बन्धी गौ और तुलसी तथा चिताकी आग—ये सब निर्माल्य अर्थात् अपवित्र (अतएव अग्राह्य) होते हैं॥ १५॥

गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भास्तरणसंस्कृते। भूतले ह्यातुरं कुर्यादन्तरिक्षं विवर्जयेत्॥ १६॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे देवा हुताशनः। मण्डलोपरि तिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम्॥ १७॥
सर्वत्र वसुधा पूता लेपो यत्र न विद्यते। यत्र लेपः कृतस्तत्र पुनर्लेपेन शुद्ध्यति॥ १८॥

गोबरसे लीपी हुई और कुश बिछाकर संस्कार की हुई पृथ्वीपर आतुर (मरणासन्न व्यक्ति)-को स्थापित करना चाहिये। अन्तरिक्षका परिहार करना चाहिये अर्थात् चौकी आदिपर नहीं रखना चाहिये॥ १६॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य सभी देवता और हुताशन (अग्नि)—ये सभी मण्डलपर विराजमान रहते हैं, इसलिये मण्डलकी रचना करनी चाहिये॥ १७॥ जो भूमि लेपरहित होती है अर्थात् मल-मूत्र आदिसे रहित होती है, वह सर्वत्र पवित्र होती है, किंतु जो भूमिभाग कभी लीपा जा चुका है (या मल-मूत्र आदिसे दूषित है) वहाँ पुनः लीपनेपर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १८॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताः प्रेता यमानुगाः। अलिप्तदेशे खट्वायामन्तरिक्षे विशन्ति च॥ १९॥
अतोऽग्निहोत्रं श्राद्धं च ब्रह्मभोज्यं सुरार्चनम्। मण्डलेन विना भूम्यामातुरं नैव कारयेत्॥ २०॥
लिप्तभूम्यामतः कृत्वा स्वर्णरत्नं मुखे क्षिपेत्। विष्णोः पादोदकं दद्याच्छालग्रामस्वरूपिणः॥ २१॥

बिना लीपी हुई भूमिपर और चारपाई आदिपर या आकाशमें (भूमिकी सतहसे ऊपर) राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत और यमदूत प्रविष्ट हो जाते हैं॥ १९॥ इसलिये भूमिपर मण्डल बनाये बिना अग्निहोत्र, श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन, देव-पूजन और आतुर व्यक्तिका स्थापन नहीं करना चाहिये॥ २०॥ इसलिये लीपी हुई भूमिपर आतुर व्यक्तिको

लिटाकर उसके मुखमें स्वर्ण और रत्नका प्रक्षेप करके शालग्रामस्वरूपी भगवान् विष्णुका पादोदक देना चाहिये ॥ २१ ॥

शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद् बिन्दुमात्रकम्। स सर्वपापनिर्मुक्तो वैकुण्ठभुवनं व्रजेत् ॥ २२ ॥
ततो गङ्गाजलं दद्यान्महापातकनाशनम्। सर्वतीर्थकृतस्नानदानपुण्यफलप्रदम् ॥ २३ ॥
चान्द्रायणं चरेद्यस्तु सहस्रं कायशोधनम्। पिबेद्यश्चैव गङ्गाम्भः समौ स्यातामुभावपि ॥ २४ ॥
अग्निं प्राप्य यथा तार्क्ष्य तूलराशिर्विनश्यति। तथा गङ्गाम्बुपानेन पातकं भस्मसाद्भवेत् ॥ २५ ॥
यस्तु सूर्यांशुसन्तप्तं गङ्गायाः सलिलं पिबेत्। स सर्वयोनिनिर्मुक्तः प्रयाति सदनं हरेः ॥ २६ ॥
नद्यो जलावगाहेन पावयन्तीतराञ्जनान्। दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् ॥ २७ ॥
पुनात्यपुण्यान्पुरुषान् शतशोऽथ सहस्रशः। गङ्गा तस्मात् पिबेत्तस्य जलं संसारतारकम् ॥ २८ ॥

जो शालग्राम-शिलाके जलको बिन्दुमात्र भी पीता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो वैकुण्ठलोकमें जाता है ॥ २२ ॥ इसलिये (आतुर व्यक्तिको) महापातकको नष्ट करनेवाले गङ्गाजलको देना चाहिये। गङ्गाजलका पान सभी तीर्थोंमें किये जानेवाले स्नान-दानादिके पुण्यरूपी फलको प्रदान करनेवाला है ॥ २३ ॥ जो शरीरको शुद्ध करनेवाले चान्द्रायणव्रतको एक हजार बार करता है और जो (एक बार) गङ्गाजलका पान करता है, वे दोनों समान (फलवाले) हैं ॥ २४ ॥ हे तार्क्ष्य! अग्निके सम्बन्धसे जैसे रूईकी राशि नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार गङ्गाजलसे पातक भस्मसात् हो जाते हैं ॥ २५ ॥ जो सूर्यकी किरणोंसे संतप्त गङ्गाके जलका पान करता है, वह सभी योनियोंसे

छूटकर हरिके धामको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ अन्य नदियाँ मनुष्योंको जलावगाहन (स्नान) करनेपर पवित्र करती हैं, किंतु गङ्गाजी तो दर्शन, स्पर्श, पान अथवा 'गङ्गा' इस नामका कीर्तन करनेमात्रसे सैकड़ों, हजारों पुण्यरहित पुरुषोंको भी पवित्र कर देती हैं। इसलिये संसारसे पार लगा देनेवाले गङ्गाजलको पीना चाहिये ॥ २७-२८ ॥

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि। मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि ॥ २९ ॥
उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः पुरुषः श्रद्धयाऽन्वितः। चिन्तयेन्मनसा गङ्गां सोऽपि याति परां गतिम् ॥ ३० ॥
अतो ध्यायेन्निमेद् गङ्गां संस्मरेत्तज्जलं पिबेत्। ततो भागवतं किञ्चिच्छृणुयान्मोक्षदायकम् ॥ ३१ ॥
श्लोकं श्लोकार्धपादं वा योऽन्ते भागवतं पठेत्। न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥ ३२ ॥

जो व्यक्ति प्राणोंके कण्ठगत होनेपर 'गङ्गा-गङ्गा' ऐसा कहता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है और पुनः भूलोकमें जन्म नहीं लेता ॥ २९ ॥ प्राणोत्क्रमण (प्राणोंके निकलने)-के समय जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर मनसे गङ्गाका चिन्तन करता है, वह भी परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ अतः गङ्गाका ध्यान, गङ्गाको नमन, गङ्गाका संस्मरण करना चाहिये और गङ्गाजलका पान करना चाहिये। इसके बाद मोक्ष प्रदान करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथाको (जितना सम्भव हो उतना) श्रवण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो व्यक्ति अन्त समयमें श्रीमद्भागवतके एक श्लोक, आधे श्लोक अथवा एक पादका भी पाठ करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता ॥ ३२ ॥

वेदोपनिषदां पाठाच्छिवविष्णुस्तवादपि। ब्राह्मणक्षत्रियविशां मरणं मुक्तिदायकम् ॥ ३३ ॥
प्राणप्रयाणसमये कुर्यादनशनं खग। दद्यादातुरसंन्यासं विरक्तस्य द्विजन्मनः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको मरणकालमें वेद और उपनिषदोंका पाठ तथा शिव और विष्णुकी स्तुतिसे मुक्ति प्राप्त होती है॥ ३३॥ हे खग! प्राणत्यागके समय मनुष्यको अनशनव्रत (जल और अन्नका त्याग) करना चाहिये और यदि वह विरक्त द्विजन्मा हो तो उसे आतुरसंन्यास लेना चाहिये॥ ३४॥

संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि। मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि॥ ३५॥
एवं जातविधानस्य धार्मिकस्य तदा खग। ऊर्ध्वच्छिद्रेण गच्छन्ति प्राणास्तस्य सुखेन हि॥ ३६॥
मुखं च चक्षुषी नासे कर्णौ द्वाराणि सप्त च। एभ्यः सुकृतिनो यान्ति योगिनस्तालुरन्ध्रतः॥ ३७॥
अपानान्मिलितप्राणौ यदा हि भवतः पृथक्। सूक्ष्मीभूत्वा तदा वायुर्विनिष्क्रामति पुत्तलात्॥ ३८॥

प्राणोंके कण्ठमें आनेपर जो प्राणी 'मैंने संन्यास ले लिया है'—ऐसा कहता है, वह मरनेपर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। पुनः पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता॥ ३५॥ इस प्रकार हे खग! जिस धार्मिक पुरुषके आतुरकालिक पूर्वोक्त कार्य सम्पादित किये जाते हैं, उसके प्राण ऊपरके छिद्रोंसे सुखपूर्वक निकलते हैं॥ ३६॥ मुख, दोनों नेत्र, दोनों नासिकारन्ध्र तथा दोनों कान—ये सात (ऊपरके) द्वार (छिद्र) हैं, इनमेंसे किसी द्वारसे सुकृती (पुण्यात्मा)-के प्राण निकलते हैं और योगियोंके प्राण तालुरन्ध्रसे निकलते हैं॥ ३७॥ अपानसे मिले हुए प्राण जब पृथक् हो जाते हैं, तब प्राणवायु सूक्ष्म होकर शरीरसे निकलता है॥ ३८॥

शरीरं पतते पश्चान्निर्गते मरुतीश्वरे। कालाहतं पतत्येवं निराधारो यथा द्रुमः॥ ३९॥
निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तं जुगुप्सितम्। अस्पृश्यं जायते सद्यो दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम्॥ ४०॥

प्राणवायुरूपी ईश्वरके निकल जानेपर कालसे आहत शरीर निराधार वृक्षकी भाँति गिर पड़ता है॥ ३९॥ प्राणसे मुक्त होनेके बाद शरीर तुरंत चेष्टाशून्य, घृणित, दुर्गन्धयुक्त, अस्पृश्य और सभीके लिये निन्दित हो जाता है॥ ४०॥

त्रिधावस्था शरीरस्य कृमिविड्भस्मरूपतः। किं गर्वः क्रियते देहे क्षणविध्वंसिभिर्नरैः॥ ४१॥
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथा जले। तेजस्तेजसि लीयेत समीरस्तु समीरणे॥ ४२॥
आकाशश्च तथाऽऽकाशे सर्वव्यापी च शङ्करः। नित्यमुक्तो जगत्साक्षी आत्मा देहेष्वजोऽमरः॥ ४३॥

इस शरीरकी कीड़ा, विष्ठा तथा भस्मरूप—ये तीन अवस्थाएँ होती हैं, इसमें कीड़े पड़ते हैं, यह विष्ठाके समान दुर्गन्धयुक्त हो जाता है अथवा अन्ततः चितामें भस्म हो जाता है। इसलिये क्षणमात्रमें नष्ट हो जानेवाले इस देहके लिये मनुष्योंके द्वारा गर्व क्यों किया जाय॥ ४१॥ (पञ्चभूतोंसे निर्मित इस शरीरका) पृथ्वीतत्त्व पृथ्वीमें लीन हो जाता है, जलतत्त्व जलमें, तेजस्तत्त्व तेजमें और वायुतत्त्व वायुमें लीन हो जाता है, इसी प्रकार आकाशतत्त्व भी आकाशमें लीन हो जाता है। सभी प्राणियोंके देहमें स्थित रहनेवाला सर्वव्यापी, शिवस्वरूप, नित्य मुक्त और जगत्साक्षी आत्मा अजर-अमर है॥ ४२-४३॥

सर्वेन्द्रिययुतो जीवः शब्दादिविषयैर्वृतः। कामरागादिभिर्युक्तः कर्मकोशसमन्वितः॥ ४४॥
पुण्यवासनया युक्तो निर्मिते स्वेन कर्मणा। प्रविशेत्स नवे देहे गृहे दग्धे यथा गृही॥ ४५॥

सभी इन्द्रियोंसे युक्त और शब्द आदि विषयोंसे युक्त (मृत व्यक्तिके देहसे निकला) जीव कर्म-कोशसे समन्वित तथा काम और रागादिके सहित—पुण्यकी वासनासे युक्त होकर अपने कर्मोंके द्वारा निर्मित नवीन शरीरमें उसी प्रकार प्रवेश करता है, जैसे घरके जल जानेपर गृहस्थ दूसरे नवीन घरमें प्रवेश करता है॥ ४४-४५॥

तदा विमानमादाय किंकिणीजालमालि यत्। आयान्ति देवदूताश्च लसच्चामरशोभिता:॥ ४६॥
धर्मतत्त्वविद: प्राज्ञा: सदा धार्मिकवल्लभा:। तदैनं कृतकृत्यं स्वर्विमानेन नयन्ति ते॥ ४७॥
सुदिव्यदेहो विरजाम्बरस्रक् सुवर्णरत्नाभरणैरुपेत:।
दानप्रभावात्स महानुभाव: प्राप्नोति नाकं सुरपूज्यमान:॥ ४८॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे म्रियमाणकृत्यनिरूपणं नाम नवमोऽध्याय:॥ ९॥



तब किंकिणीजालकी मालाओंसे युक्त विमान लेकर सुन्दर चामरोंसे सुशोभित देवदूत आते हैं। धर्मके तत्त्वको जाननेवाले, बुद्धिमान्, धार्मिक जनोंके प्रिय वे देवदूत कृतकृत्य इस जीवको विमानसे स्वर्ग ले जाते हैं॥ ४६-४७॥ सुन्दर, दिव्य देह धारण करके निर्मल वस्त्र और माल्य धारण करके, सुवर्ण और रत्नादिके आभरणोंसे युक्त होकर वह महानुभाव जीव दानके प्रभावसे देवताओंसे पूजित होकर स्वर्गको प्राप्त करता है॥ ४८॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'म्रियमाणकृत्यनिरूपण' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥



दसवाँ अध्याय

मृत्युके अनन्तरके कृत्य, शव आदि नामवाले छः पिण्डदानोंका फल, दाहसंस्कारकी विधि, पञ्चकमें दाहका निषेध, दाहके अनन्तर किये जानेवाले कृत्य, शिशु आदिकी अन्त्येष्टिका विधान

गरुड उवाच

देहदाहविधानं च वद सुकृतिनां विभो। सती यदि भवेत्पत्नी तस्याश्च महिमां वद॥ १ ॥

गरुडजी बोले—हे विभो! अब आप पुण्यात्मा पुरुषोंके शरीरके दाहसंस्कारका विधान बतलाइये और यदि पत्नी सती हो तो उसकी महिमाका भी वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम्। यत्कृत्वा पुत्रपौत्राश्च मुच्यन्ते पैतृकादृणात्॥ २ ॥
किं दत्तैर्बहुभिर्दानैः पित्रोरन्त्येष्टिमाचरेत्। तेनाग्निष्टोमसदृशं पुत्रः फलमवाप्नुयात्॥ ३ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! जिन और्ध्वदैहिक कृत्योंको करनेसे पुत्र और पौत्र पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाते हैं, उसे बताता हूँ, सुनो॥ २॥ बहुत-से दान देनेसे क्या लाभ? माता-पिताकी अन्त्येष्टिक्रिया भलीभाँति करे, उसीसे

पुत्रको अग्निष्टोम यागके समान फल प्राप्त हो जाता है॥ ३॥

तदा शोकं परित्यज्य कारयेन्मुण्डनं सुतः। समस्तबान्धवैर्युक्तः सर्वपापविमुक्तये॥ ४॥
मातापित्रोर्मृतौ येन कारितं मुण्डनं न हि। आत्मजः स कथं ज्ञेयः संसारार्णवतारकः॥ ५॥
अतो मुण्डनमावश्यं नखकक्षविवर्जितम्। ततः सबान्धवः स्नात्वा धौतवस्त्राणि धारयेत्॥ ६॥
सद्यो जलं समानीय ततस्तं स्नापयेच्छवम्। मण्डयेच्चन्दनैः स्रग्भिर्गङ्गामृत्तिकयाऽथवा॥ ७॥
नवीनवस्त्रैः सञ्छाद्य तदा पिण्डं सदक्षिणम्। नामगोत्रं समुच्चार्य सङ्कल्पेनापसव्यतः॥ ८॥
मृत्युस्थाने शवो नाम तस्य नाम्ना प्रदापयेत्। तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता॥ ९॥

माता-पिताकी मृत्यु होनेपर पुत्रको शोकका परित्याग करके सभी पापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये समस्त बान्धवोंके साथ मुण्डन कराना चाहिये॥ ४॥ माता-पिताके मरनेपर जिसने मुण्डन नहीं कराया, वह संसारसागरको तारनेवाला पुत्र कैसे समझा जाय?॥ ५॥ अतः नख और काँखको छोड़कर मुण्डन कराना आवश्यक है।[१] इसके बाद समस्त बान्धवोंके सहित स्नान करके धौत वस्त्र धारण करे॥ ६॥ तब तुरंत जल ले आकर उस जलसे शवको स्नान करावे और चन्दन अथवा गङ्गाजीकी मिट्टीके लेपसे तथा मालाओंसे उसे विभूषित करे॥ ७॥ उसके बाद नवीन वस्त्रसे ढककर अपसव्य होकर नाम-गोत्रका उच्चारण करके संकल्पपूर्वक दक्षिणासहित पिण्डदान देना

१. केशोंमें कामका वास होता है, इसलिये मुण्डन कराना चाहिये।

चाहिये ॥ ८ ॥ मृत्युके स्थानपर 'शव' नामक पिण्डको मृत व्यक्तिके नाम-गोत्रसे प्रदान करे। ऐसा करनेसे भूमि और भूमिके अधिष्ठातृ देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ९ ॥

द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तस्य नाम्ना प्रदापयेत्। तेन नैवोपघाताय भूतकोटिषु दुर्गता: ॥ १० ॥
ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजनीयः स्नुषादिभिः। स्कन्धः पुत्रेण दातव्यस्तदाऽन्यैर्बान्धवैः सह ॥ ११ ॥
धृत्वा स्कन्धे स्वपितरं यः श्मशानाय गच्छति। सोऽश्वमेधफलं पुत्रो लभते च पदे पदे ॥ १२ ॥

इसके पश्चात् द्वारदेशपर 'पान्थ' नामका पिण्ड मृतकके नाम-गोत्रादिका उच्चारण करके प्रदान करे। ऐसा करनेसे भूतादि कोटिमें दुर्गतिग्रस्त प्रेत मृत प्राणीकी सद्गतिमें विघ्न-बाधा नहीं कर सकते ॥ १० ॥ इसके बाद पुत्रवधू आदि शवकी प्रदक्षिणा करके उसकी पूजा करें। तब अन्य बान्धवोंके साथ पुत्रको (शवयात्राके निमित्त) कंधा देना चाहिये ॥ ११ ॥ अपने पिताको कंधेपर धारण करके जो पुत्र श्मशानको जाता है, वह पग-पगपर अश्वमेधका फल प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

नीत्वा स्कन्धे स्वपृष्ठे वा सदा तातेन लालितः। तदैव तद्गुणान्मुच्येन्मृतं स्वपितरं वहेत् ॥ १३ ॥
ततोऽर्धमार्गे विश्रामं सम्मार्ज्याभ्युक्ष्य कारयेत्। संस्नाप्य भूतसंज्ञाय तस्मै तेन प्रदापयेत् ॥ १४ ॥
पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिक्षु संस्थिताः। तस्य होतव्यदेहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः ॥ १५ ॥

पिता अपने कंधे अथवा पीठपर बैठाकर पुत्रका सदा लालन-पालन करता है, उस ऋणसे पुत्र तभी मुक्त होता है जब वह अपने मृत पिताको अपने कंधेपर ढोता है॥ १३॥ इसके बाद आधे मार्गमें पहुँचकर भूमिका मार्जन और प्रोक्षण करके शवको विश्राम कराये और उसे स्नान कराकर भूतसंज्ञक पितरको गोत्र नामादिके द्वारा 'भूत' नामक पिण्ड प्रदान करे॥ १४॥ इस पिण्डदानसे अन्य दिशाओंमें स्थित पिशाच, राक्षस, यक्ष आदि उस हवन करने योग्य देहकी हवनीयतामें अयोग्यता नहीं उत्पन्न कर सकते॥ १५॥

ततो नीत्वा श्मशानेषु स्थापयेदुत्तरामुखम्। तत्र देहस्य दाहार्थं स्थलं संशोधयेद्यथा॥ १६॥
सम्मार्ज्य भूमिं संलिप्योल्लिख्योद्धृत्य च वेदिकाम्। अभ्युक्ष्योपसमाधाय वह्निं तत्र विधानतः॥ १७॥
पुष्पाक्षतैरथाभ्यर्च्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम्। लोमभ्यस्त्वनुवाकेन होमं कुर्याद्यथाविधि॥ १८॥
त्वं भूतभृज्जगद्योनिस्त्वं भूतपरिपालकः। मृतः सांसारिकस्तस्मादेनं त्वं स्वर्गतिं नय॥ १९॥
इति सम्प्रार्थयित्वाऽग्निं चितां तत्रैव कारयेत्। श्रीखण्डतुलसीकाष्ठैः पलाशाश्वत्थदारुभिः॥ २०॥

उसके बाद श्मशानमें ले जाकर उत्तराभिमुख स्थापित करे। वहाँ देहके दाहके लिये यथाविधि भूमिका संशोधन करे॥ १६॥ भूमिका संमार्जन और लेपन करके उल्लेखन करे (अर्थात् दर्भमूलसे तीन रेखाएँ खींचे) और उल्लेखन क्रमानुसार ही उन रेखाओंसे उभरी हुई मिट्टीको उठाकर ईशान दिशामें फेंककर उस वेदिकाको जलसे प्रोक्षित करके उसमें विधि-विधानपूर्वक अग्नि-स्थापन करे॥ १७॥ पुष्प और अक्षत आदिसे क्रव्यादसंज्ञक अग्निदेवकी पूजा करे और

'लोमभ्य: (स्वाहा)'* इत्यादि अनुवाकसे यथाविधि होम करना चाहिये ॥ १८ ॥ (तब उस क्रव्याद—मृतकका मांसभक्षण

करनेवाली—अग्निकी इस प्रकार प्रार्थना करे—) तुम प्राणियोंको धारण करनेवाले, उनको उत्पन्न करनेवाले तथा प्राणियोंका पालन करनेवाले हो, यह सांसारिक मनुष्य मर चुका है, तुम इसे स्वर्ग ले जाओ ॥ १९ ॥ इस प्रकार क्रव्याद-संज्ञक अग्निकी प्रार्थना करके वहीं चन्दन, तुलसी, पलाश और पिप्पलकी लकड़ियोंसे चिताका निर्माण करे ॥ २० ॥

चितामारोप्य तं प्रेतं पिण्डौ द्वौ तत्र दापयेत्।
चितायां शवहस्ते च प्रेतनाम्ना खगेश्वर। चितामोक्षप्रभृतिकं प्रेतत्वमुपजायते ॥ २१ ॥
केऽपि तं साधकं प्राहु: प्रेतकल्पविदो जना:। चितायां तेन नाम्ना वा प्रेतनाम्नाऽथवा करे ॥ २२ ॥

हे खगेश्वर! उस शवको चितापर रख करके वहाँ दो पिण्ड प्रदान करे। प्रेतके नामसे एक पिण्ड चितापर तथा दूसरा शवके हाथमें देना चाहिये। चितामें रखनेके बादसे उस शवमें प्रेतत्व आ जाता है ॥ २१ ॥ प्रेतकल्पको जाननेवाले कतिपय विद्वज्जन चितापर दिये जानेवाले पिण्डको 'साधक' नामसे सम्बोधित करते हैं। अत: चितापर साधक नामसे तथा शवके हाथपर 'प्रेत' नामसे पिण्डदान करे ॥ २२ ॥

* लोमभ्य: स्वाहा लोमभ्य: स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्य: स्वाहा मेदोभ्य: स्वाहा। मांꣳसेभ्य: स्वाहा मांꣳसेभ्य: स्वाहा स्नावभ्य: स्वाहा स्नावभ्य: स्वाहाऽस्थभ्य: स्वाहाऽस्थभ्य: स्वाहा मज्जभ्य: स्वाहा मज्जभ्य: स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥ (यजु० ३९।१०)

इत्येवं पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याहुतियोग्यता। अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि॥ २३॥

प्रेते दत्त्वा पञ्च पिण्डान् हुतमादाय तं तृणैः। अग्निं पुत्रस्तदा दद्यान्न भवेत्पञ्चकं यदि॥ २४॥

इस प्रकार पाँच पिण्ड प्रदान करनेसे शवमें आहुति-योग्यता सम्पन्न होती है। अन्यथा श्मशानमें स्थित पूर्वोक्त पिशाच, राक्षस तथा यक्ष आदि उसकी आहुति-योग्यताके उपघातक होते हैं॥ २३॥ प्रेतके लिये पाँच पिण्ड देकर हवन किये हुए उस क्रव्याद अग्निको तिनकोंपर रखकर यदि पञ्चक[१] न हो तो पुत्र अग्नि प्रदान करे॥ २४॥

पञ्चकेषु मृतो यस्तु न गतिं लभते नरः। दाहस्तत्र न कर्तव्यः कृतेऽन्यमरणं भवेत्॥ २५॥
आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम्। रेवत्यन्तं न दाहेऽर्हं दाहे च न शुभं भवेत्॥ २६॥
गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतो हि यः। पुत्राणां गोत्रिणां चापि कश्चिद्विघ्नः प्रजायते॥ २७॥
अथवा ऋक्षमध्ये हि दाहः स्याद्विधिपूर्वकः। तद्विधिं ते प्रवक्ष्यामि सर्वदोषप्रशान्तये॥ २८॥
शवस्य निकटे तार्क्ष्य निक्षिपेत् पुत्तलास्तदा। दर्भमयांश्च चतुर ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रितान्॥ २९॥
तप्तहेमं प्रकर्तव्यं वहन्ति ऋक्षनामभिः। 'प्रेताजयत' मन्त्रेण पुनर्होमस्तु सम्पुटैः॥ ३०॥

---

१. ये पाँच नक्षत्र पञ्चक कहलाते हैं—(१) धनिष्ठा, (२) शतभिषा, (३) पूर्वाभाद्रपदा, (४) उत्तराभाद्रपदा और (५) रेवती। इन पञ्चक नक्षत्रोंके स्वामी क्रमशः—(१) वसु, (२) वरुण, (३) अजचरण (अजैकपात्), (४) अहिर्बुध्न्य और (५) पूषा हैं।

पञ्चकमें जिसका मरण होता है, उस मनुष्यको सद्गति नहीं प्राप्त होती। (पञ्चकशान्ति किये बिना) उसका दाह नहीं करना चाहिये अन्यथा अन्यकी मृत्यु हो जाती है॥ २५॥ धनिष्ठाके उत्तरार्धसे रेवतीपर्यन्त पाँच नक्षत्र पञ्चकसंज्ञक हैं। इनमें मृत व्यक्ति दाहके योग्य नहीं होता और उसका दाह करनेसे परिणाम शुभ नहीं होता॥ २६॥ इन नक्षत्रोंमें जो मरता है, उसके घरमें कोई हानि होती है, पुत्र और सगोत्रियोंको भी कोई विघ्न होता है॥ २७॥ अथवा इस पञ्चकमें भी दाहविधिका आचरण करके मृत व्यक्तिका दाह-संस्कार हो सकता है। (पञ्चकमरण-प्रयुक्त) सभी दोषोंकी शान्तिके लिये उस दाह-विधिको कहूँगा॥ २८॥ हे तार्क्ष्य! कुशसे निर्मित चार पुत्तलोंको नक्षत्र-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके शवके समीपमें स्थापित करे॥ २९॥ तब उन पुत्तलोंमें प्रतप्त सुवर्ण रखना चाहिये। और फिर नक्षत्रोंके नाम-मन्त्रोंसे होम करना चाहिये। पुनः **'प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु'** (ऋक्० १०।१०३।१३, यजु० १७।४६) इस मन्त्रसे उन नक्षत्र-मन्त्रोंको सम्पुटित करके होम करना चाहिये॥ ३०॥

ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह। सपिण्डनदिने कुर्यात्तस्य शान्तिविधिं सुतः॥ ३१॥
तिलपात्रं हिरण्यं च रूप्यं रत्नं यथाक्रमम्। घृतपूर्णं कांस्यपात्रं दद्याद्दोषप्रशान्तये॥ ३२॥
एवं शान्तिविधानं तु कृत्वा दाहं करोति यः। न तस्य विघ्नो जायेत प्रेतो याति परां गतिम्॥ ३३॥
एवं पञ्चकदाहः स्यात् तद्विना केवलं दहेत्। सती यदि भवेत्पत्नी तया सह विनिर्दहेत्॥ ३४॥

इसके बाद उन पुत्तलोंके साथ शवका दाह करे, सपिण्डी श्राद्धके दिन पुत्र यथाविधि पञ्चक-

शान्ति[१] का अनुष्ठान करे ॥ ३१ ॥ पञ्चकदोषकी शान्तिके लिये क्रमशः तिलपूर्णपात्र, सोना, चाँदी, रत्न तथा घृतपूर्ण कांस्यपात्रका दान करना चाहिये ॥ ३२ ॥ इस प्रकार (पञ्चक-) शान्ति-विधान करके जो (शव) दाह करता है, उसे (पञ्चकजन्य) कोई विघ्न-बाधा नहीं होती और प्रेत भी सद्गति प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार पञ्चकमें मृत व्यक्तिका दाह करना चाहिये और पञ्चकके बिना मरनेपर केवल शवका दाह करना चाहिये। यदि मृत व्यक्तिकी पत्नी सती हो रही हो तो उसके दाहके साथ ही शवका दाह करना चाहिये ॥ ३४ ॥

पतिव्रता यदा नारी भर्तुः प्रियहिते रता। इच्छेत्सहैव गमनं तदा स्नानं समाचरेत् ॥ ३५ ॥
कुंकुमाञ्जनसद्वस्त्रभूषणैर्भूषितां तनुम्। दानं दद्याद् द्विजातिभ्यो बन्धुवर्गेभ्य एव च ॥ ३६ ॥
गुरुं नमस्कृत्य तदा निर्गच्छेन्मन्दिराद्बहिः। ततो देवालयं गत्वा भक्त्या तं प्रणमेद्धरिम् ॥ ३७ ॥
समर्प्याभरणं तत्र श्रीफलं परिगृह्य च। लज्जां मोहं परित्यज्य श्मशानभवनं व्रजेत् ॥ ३८ ॥
तत्र सूर्यं नमस्कृत्य परिक्रम्य चितां तदा। पुष्पशय्यां तदाऽऽरोहेन्निजाङ्के स्वापयेत्पतिम् ॥ ३९ ॥
सखिभ्यः श्रीफलं दद्याद्दाहमाज्ञापयेत्ततः। गङ्गास्नानसमं ज्ञात्वा शरीरं परिदाहयेत् ॥ ४० ॥

१. शुद्धिमयूख तथा निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें उद्धृत ब्रह्मपुराणके एक वचनके अनुसार पञ्चकोंमें मृत मनुष्यके साथ दाहहेतु दर्भकी ही पाँच प्रतिमाएँ (पुतलें) बनाकर उन्हें सफेद ऊनके धागेसे लपेटकर और जौके आटेसे उनका लेपन करके उनमें क्रमशः—(१) प्रेतवाह, (२) प्रेतसख, (३) प्रेतप, (४) प्रेतभूमिप और (५) प्रेतहर्ता—इन पाँच नाम-मन्त्रोंसे आवाहन-पूजन करके उनमेंसे प्रथमको प्रेतके सिरमें, दूसरेको नेत्रोंमें, तीसरेको वामकुक्षिमें, चौथेको नाभिमें और पाँचवेंको पैरोंमें रखकर घृतहोमके पश्चात् शवदाह करना चाहिये।

अपने पतिके प्रियसम्पादनमें संलग्न पतिव्रता नारी यदि उसके साथ परलोकगमन करना चाहे[1] तो (पतिकी मृत्यु होनेपर) स्नान करे और अपने शरीरको कुंकुम, अंजन, सुन्दर वस्त्राभूषणादिसे अलंकृत करे, ब्राह्मणों और बन्धु-बान्धवोंको दान दे। गुरुजनोंको प्रणाम करके तब घरसे बाहर निकले। इसके बाद देवालय (मन्दिर) जाकर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको प्रणाम करे। वहाँ अपने आभूषणोंको समर्पित करके वहाँसे श्रीफल (नारियल) लेकर लज्जा और मोहका परित्याग करके श्मशानभूमिमें जाय। तब वहाँ सूर्यको नमस्कार करके, चिताकी परिक्रमा करके पुष्पशय्यारूपी चितापर चढ़े और अपने पतिको अपनी गोदमें लिटाये। तदनन्तर सखियोंको श्रीफल देकर दाहके लिये आज्ञा प्रदान करे और शरीरदाहको गङ्गाजलमें स्नानके समान मानकर अपना शरीर जलाये॥ ३५—४०॥

न दहेद् गर्भिणी नारी शरीरं पतिना सह। जनयित्वा प्रसूतिं च बालं पोष्य सती भवेत्॥ ४१॥
नारी भर्तारमासाद्य शरीरं दहते यदि। अग्निर्दहति गात्राणि नैवात्मानं प्रपीडयेत्॥ ४२॥
दह्यते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलः। तथा नारी दहेत्पापं हुताशे ह्यमृतोपमे॥ ४३॥
दिव्यादौ सत्ययुक्तश्च शुद्धो धर्मयुतो नरः। यथा न दह्यते तप्तलौहपिण्डेन कर्हिचित्॥ ४४॥
तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन। अन्तरात्मात्मना भर्तुर्मृतस्यैकत्वमाप्नुयात्॥ ४५॥

१. सती होना स्त्रीकी इच्छापर निर्भर करता है। सतीके नामपर बलात् दाह करनेका विधान नहीं है। जैसे कौसल्या आदि दशरथपत्नियों, पाण्डुपत्नी कुन्ती तथा जडभरतकी सापत्न्य माता आदिके सती न होनेके उदाहरण प्राप्त होते हैं।

गर्भिणी स्त्रीको अपने पतिके साथ अपना दाह नहीं करना चाहिये*। प्रसव करके और उत्पन्न बालकका पोषण करनेके अनन्तर उसे सती होना चाहिये॥ ४१॥ यदि स्त्री अपने मृत पतिके शरीरको लेकर अपने शरीरका दाह करती है तो अग्नि उसके शरीरमात्रको जलाते हैं, उसकी आत्माको कोई पीड़ा नहीं होती॥ ४२॥ धौंके जाते हुए (स्वर्णादि) धातुओंका मल जैसे अग्निमें जल जाता है, उसी प्रकार (पतिके साथ जलनेवाली) नारी अमृतके समान अग्निमें अपने पापोंको जला देती है॥ ४३॥ जिस प्रकार सत्यपरायण धर्मात्मा पुरुष शपथके समय तपे हुए लोहपिण्डादिको लेनेपर भी नहीं जलता, उसी प्रकार चितापर पतिके शरीरके साथ संयुक्त वह नारी भी कभी नहीं जलती अर्थात् उसे दाहप्रयुक्त कष्ट नहीं होता। प्रत्युत उसकी अन्तरात्मा मृत व्यक्तिकी अन्तरात्माके साथ एकत्व प्राप्त कर लेती है॥ ४४-४५॥

यावच्चाग्नौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत्। तावन्न मुच्यते सा हि स्त्री शरीरात्कथञ्चन॥ ४६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं सेवयेत्सदा। कर्मणा मनसा वाचा मृते जीवति तद्गता॥ ४७॥
मृते भर्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम्। साऽरुन्धतीसमा भूत्वा स्वर्गलोके महीयते॥ ४८॥

पतिकी मृत्यु होनेपर जबतक स्त्री उसके शरीरके साथ अपने शरीरको नहीं जला लेती, तबतक वह किसी प्रकार भी

---

* इस विषयमें और्व ऋषिका यह वचन उल्लेखनीय है—

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वला राजसुते नारोहन्ति चितां शुभे॥ (नारदपुराण० पू० ७।५२)

कल्याणमयी राजपुत्री! जिनकी संतान बहुत छोटी हो, जो गर्भवती हों, जिन्होंने अभी ऋतुकाल न देखा हो तथा जो रजस्वला हों, ऐसी स्त्रियाँ पतिके साथ चितापर नहीं चढ़तीं—उनके लिये चितारोहणका निषेध है।

स्त्रीशरीर प्राप्त करनेसे मुक्त नहीं होती ॥ ४६ ॥ इसलिये सर्वप्रयत्नपूर्वक मन, वाणी और कर्मसे जीवितावस्थामें अपने पतिकी सदा सेवा करनी चाहिये और मरनेपर उसका अनुगमन करना चाहिये। पतिके मरनेपर जो स्त्री अग्निमें आरोहण करती है, वह (महर्षि वसिष्ठकी पत्नी) अरुन्धतीके समान होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होती है ॥ ४७-४८ ॥

तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाऽप्सरोगणैः। रमते पतिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ४९ ॥
मातृकं पैतृकं चैव यत्र सा च प्रदीयते। कुलत्रयं पुनात्यत्र भर्तारं याऽनुगच्छति ॥ ५० ॥

वहाँ वह पतिपरायणा नारी अप्सरागणोंके द्वारा स्तूयमान होकर चौदह इन्द्रोंके राज्यकालपर्यन्त अर्थात् एक कल्प[1]तक अपने पतिके साथ स्वर्गलोकमें रमण करती है ॥ ४९ ॥ जो सती अपने भर्ताका अनुगमन करती है, वह अपने मातृकुल, पितृकुल और पतिकुल—इन तीनों कुलोंको पवित्र कर देती है ॥ ५० ॥

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे। तावत्कालं वसेत्स्वर्गे पतिना सह मोदते ॥ ५१ ॥
विमाने सूर्यसंकाशे क्रीडते रमणेन सा। यावदादित्यचन्द्रौ च भर्तृलोके चिरं वसेत् ॥ ५२ ॥
पुनश्चिरायुः सा भूत्वा जायते विमले कुले। पतिव्रता तु या नारी तमेव लभते पतिम् ॥ ५३ ॥

---

१. चौदह मनुओंका राज्यकाल एक कल्प कहलाता है। यही ब्रह्माजीका एक दिन है। इसमें एक हजार बार चारों युग आ जाते हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सूर्यसावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य—ये चौदह मनु कहे गये हैं।

मनुष्यके शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोमकूप हैं, उतने कालतक वह नारी अपने पतिके साथ स्वर्गमें आनन्द करती है॥ ५१॥ वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानमें अपने पतिके साथ क्रीड़ा करती है और जबतक सूर्य और चन्द्रकी स्थिति रहती है तबतक पतिलोकमें निवास करती है॥ ५२॥ इस प्रकार दीर्घ आयु प्राप्त करके पवित्र कुलमें पैदा होकर पतिरूपमें वह पतिव्रता नारी उसी (जन्मान्तरीय) पतिको पुनः प्राप्त करती है॥ ५३॥

या क्षणं दाहदुःखेन सुखमेतादृशं त्यजेत्। सा मूढा जन्मपर्यन्तं दह्यते विरहाग्निना॥ ५४॥
तस्मात् पतिं शिवं ज्ञात्वा सह तेन दहेत्तनुम्। यदि न स्यात्सती तार्क्ष्य तमेव प्रदहेत्तदा॥ ५५॥
अर्धे दग्धेऽथवा पूर्णे स्फोटयेत्तस्य मस्तकम्। गृहस्थानां तु काष्ठेन यतीनां श्रीफलेन च॥ ५६॥

जो स्त्री क्षणमात्रके लिये होनेवाले दाह-दुःखके कारण इस प्रकारके सुखोंको छोड़ देती है, वह मूर्खा जन्मपर्यन्त विरहाग्निसे जलती रहती है॥ ५४॥ इसलिये पतिको शिवस्वरूप जानकर उसके साथ अपने शरीरको जला देना चाहिये। हे तार्क्ष्य! यदि पत्नी सती नहीं होती तो केवल (पतिके) शवका ही दाह करना चाहिये॥ ५५॥ शवके आधे या पूरे जल जानेपर उसके मस्तकको फोड़ना चाहिये। गृहस्थोंके मस्तकको काष्ठसे और यतियोंके मस्तकको श्रीफलसे फोड़ देना चाहिये॥ ५६॥

प्राप्तये पितृलोकानां भित्त्वा तद्ब्रह्मरन्ध्रकम्। आज्याहुतिं ततो दद्यान्मन्त्रेणानेन तत्सुतः॥ ५७॥
अस्मात्त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलतु पावक॥ ५८॥

एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम्। रोदितव्यं ततो गाढं येन तस्य सुखं भवेत्॥ ५९॥

पितृलोककी प्राप्तिके लिये उसके ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके उसका पुत्र निम्न-मन्त्रसे अग्निमें घीकी आहुति दे—॥ ५७॥ हे अग्निदेव! तुम भगवान् वासुदेव[1] के द्वारा उत्पन्न किये गये हो। पुनः तुम्हारे द्वारा इसकी (तेजोमय दिव्य शरीरकी) उत्पत्ति हो। स्वर्गलोकमें गमन करनेके लिये इसका (स्थूल) शरीर जलकर तुम्हारा हवि हो, एतदर्थ तुम प्रज्वलित होओ॥ ५८॥ इस प्रकार मन्त्रसहित तिलमिश्रित घीकी आहुति देकर जोरसे रोना चाहिये, उससे मृत प्राणी सुख प्राप्त करता है॥ ५९॥

दाहादनन्तरं कार्यं स्त्रीभिः स्नानं ततः सुतैः। तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रोपकल्पितम्॥ ६०॥
प्राशयेन्निम्बपत्राणि मृतकस्य गुणान् वदेत्। स्त्रीजनोऽग्रे गृहं गच्छेत्पृष्ठतो नरसञ्चयः॥ ६१॥

दाहके अनन्तर स्त्रियोंको स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् पुत्रोंको स्नान करना चाहिये। तदनन्तर मृत प्राणीके गोत्र-नामका उच्चारण करके तिलाञ्जलि देनी चाहिये॥ ६०॥ फिर नीमके पत्तोंको चबाकर मृतकके गुणोंका गान करना चाहिये। आगे-आगे स्त्रियोंको और पीछे पुरुषोंको घर जाना चाहिये॥ ६१॥

गृहे स्नानं पुनः कृत्वा गोग्रासं च प्रदापयेत्। पत्रावल्यां च भुञ्जीयाद् गृहान्नं नैव भक्षयेत्॥ ६२॥

१. अकारो वासुदेवः स्यात् तथा अक्षराणामकारोऽस्मि इत्यादि वचनोंके अनुसार 'अ' भगवान् वासुदेवका नाम है। अतः यहाँ 'अस्मात्' का तात्पर्य वासुदेवात् है।

मृतकस्थानमालिप्य दक्षिणाभिमुखं ततः। द्वादशाहकपर्यन्तं दीपं कुर्यादहर्निशम्॥ ६३॥
सूर्येऽस्तमागते तार्क्ष्य श्मशाने वा चतुष्पथे। दुग्धं च मृण्मये पात्रे तोयं दद्याद् दिनत्रयम्॥ ६४॥
अपक्वमृण्मयं पात्रं क्षीरनीरप्रपूरितम्। काष्ठत्रयं गुणैर्बद्धं धृत्वा मन्त्रं पठेदिमम्॥ ६५॥
श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवैः। इदं नीरमिदं क्षीरमत्र स्नाहि इदं पिब॥ ६६॥
चतुर्थे सञ्चयः कार्यः साग्निकैश्च निरग्निकैः। तृतीयेऽह्नि द्वितीये वा कर्तव्यश्चाविरोधतः॥ ६७॥

और घरमें पुनः स्नान करके गोग्रास देना चाहिये। पत्तलमें भोजन करना चाहिये और घरका अन्न नहीं खाना चाहिये॥ ६२॥ मृतकके स्थानको लीपकर वहाँ बारह दिनतक रात-दिन दक्षिणाभिमुख अखण्ड दीपक जलाना चाहिये॥ ६३॥ हे तार्क्ष्य! (शवदाहके दिनसे लेकर) तीन दिनतक सूर्यास्त होनेपर श्मशानभूमिमें अथवा चौराहेपर मिट्टीके पात्रमें दूध और जल देना चाहिये॥ ६४॥ काठकी तीन लकड़ियोंको दृढ़तापूर्वक सूतसे बाँधकर (अर्थात् तिगोड़िया बनाकर) उसपर दूध और जलसे भरे हुए कच्चे मिट्टीके पात्र (घड़ा आदि)-को रखकर यह मन्त्र पढ़े—॥ ६५॥ (हे प्रेत!) तुम श्मशानकी आगसे जले हुए हो, बान्धवोंसे परित्यक्त हो, यह जल और यह दूध (तुम्हारे लिये) है, इसमें स्नान करो और इसे पीओ[१]॥ ६६॥ साग्निक (जिन्होंने अग्न्याधान किया हो)-को चौथे

१. याज्ञवल्क्य स्मृति ३। १७ की मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने कहा है कि प्रेतके लिये जल और दूध पृथक्-पृथक् पात्रोंमें रखना चाहिये और 'प्रेत अत्र स्नाहि' कहकर जल तथा 'पिब चेदम्' कहकर दूध रखना चाहिये।

दिन अस्थिसञ्चय करना चाहिये और निषिद्ध वार-तिथिका विचार करके निरग्निकको तीसरे अथवा दूसरे दिन अस्थिसञ्चय करना चाहिये ॥ ६७ ॥

गत्वा श्मशानभूमिं च स्नानं कृत्वा शुचिर्भवेत्। ऊर्णासूत्रं वेष्टयित्वा पवित्रीं परिधाय च ॥ ६८ ॥
दद्याच्छ्मशानवासिभ्यस्ततो माषबलिं सुतः । यमाय त्वेतिमन्त्रेण तिस्रः कुर्यात्परिक्रमाः ॥ ६९ ॥
ततो दुग्धेन चाभ्युक्ष्य चितास्थानं खगेश्वर। जलेन सेचयेत्पश्चादुद्धरेदस्थिवृन्दकम् ॥ ७० ॥
कृत्वा पलाशपत्रेषु क्षालयेद्दुग्धवारिभिः। संस्थाप्य मृण्मये पात्रे श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥ ७१ ॥
त्रिकोणं स्थण्डिलं कृत्वा गोमयेनोपलेपितम्। दक्षिणाभिमुखो दिक्षु दद्यात्पिण्डत्रयं त्रिषु ॥ ७२ ॥
पुञ्जीकृत्य चिताभस्म तत्र धृत्वा त्रिपादुकाम्। स्थापयेत्तत्र सजलमनाच्छाद्य मुखं घटम् ॥ ७३ ॥

(अस्थि-सञ्चयके लिये) श्मशानभूमिमें जाकर स्नान करके पवित्र हो जाय। ऊनका सूत्र लपेटकर और पवित्री धारण करके— ॥ ६८ ॥ श्मशानवासियों (भूतादि)-के लिये पुत्रको '**यमाय त्वा**' (यजु० ३८। ९) इस मन्त्रसे माष (उड़द)-की बलि देनी चाहिये और तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ हे खगेश्वर! इसके बाद चितास्थानको दूधसे सींचकर जलसे सींचे। तदनन्तर अस्थिसञ्चय करे और उन अस्थियोंको पलाशके पत्तेपर रखकर दूध और जलसे धोये और पुनः मिट्टीके पात्रपर रखकर यथाविधि श्राद्ध (पिण्ड दान) करे ॥ ७०-७१ ॥ त्रिकोण स्थण्डिल बनाकर उसे गोबरसे लीपे। दक्षिणाभिमुख होकर स्थण्डिलके तीनों कोनोंपर

तीन पिण्डदान* करे॥ ७२॥ चिताभस्मको एकत्र करके उसके ऊपर तिपाई (तिगोड़िया) रखकर उसपर खुले मुखवाला जलपूर्ण घट स्थापित करे॥ ७३॥

ततस्तण्डुलपाकेन दधिघृतसमन्वितम्। बलिं प्रेताय सजलं दद्यान्मिष्टं यथाविधि॥ ७४॥
पदानि दश पञ्चैव चोत्तरस्यां दिशि व्रजेत्। गर्तं विधाय तत्रास्थिपात्रं संस्थापयेत्खग॥ ७५॥
तस्योपरि ततो दद्यात्पिण्डं दाहार्तिनाशनम्। गर्तादुद्धृत्य तत्पात्रं नीत्वा गच्छेज्जलाशयम्॥ ७६॥
तत्र प्रक्षालयेद्दुग्धजलादस्थि पुनः पुनः। चर्चयेच्चन्दनेनाथ कुंकुमेन विशेषतः॥ ७७॥
धृत्वा सम्पुटके तानि कृत्वा च हृदि मस्तके। परिक्रम्य नमस्कृत्य गङ्गामध्ये विनिक्षिपेत्॥ ७८॥
अन्तर्दशाहं यस्यास्थि गङ्गातोये निमज्जति। न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन॥ ७९॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ८०॥

इसके बाद चावल पकाकर उसमें दही और घी तथा मिष्टान्न मिलाकर जलके सहित प्रेतको यथाविधि बलि प्रदान करे॥ ७४॥ हे खग! फिर उत्तरदिशामें पंद्रह कदम जाय और वहाँ गड्ढा बना करके अस्थिपात्रको स्थापित

* ब्रह्मपुराणके एक वचनमें 'श्मशानस्थ क्रव्याद' देवताओंको बलि-प्रदान करनेके पश्चात् तीन पिण्ड प्रदान करनेका विधान है—
एवं दत्त्वा बलिं चैव दद्यात् पिण्डत्रयं बुधः॥ एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम्। तृतीयं तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात्॥
 (निर्णयसिन्धु)

करे। उसके ऊपर दाहजनित पीड़ा नष्ट करनेवाला पिण्ड प्रदान करे और गड्ढेसे उस अस्थिपात्रको निकालकर उसे लेकर जलाशयको जाय॥ ७५-७६॥ वहाँ दूध और जलसे उन अस्थियोंको बार-बार प्रक्षालित करके चन्दन और कुंकुमसे विशेषरूपसे चर्चित (लेपित) करे॥ ७७॥ फिर उन्हें एक दोनेमें रखकर हृदय और मस्तकमें लगाकर उनकी परिक्रमा करे तथा उन्हें नमस्कार करके गङ्गाजीमें विसर्जित करे (छोड़ दे)॥ ७८॥ जिस मृत प्राणीकी अस्थि दस दिनके अन्तर्गत गङ्गामें विसर्जित हो जाती है, उसका ब्रह्मलोकसे कभी भी पुनरागमन नहीं होता॥ ७९॥ गङ्गाजलमें मनुष्यकी अस्थि जबतक रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें विराजमान रहता है॥ ८०॥

गङ्गाजलोर्मि संस्पृश्य मृतकं पवनो यदा। स्पृशते पातकं तस्य सद्य एव विनश्यति॥ ८१॥
आराध्य तपसोग्रेण गङ्गादेवीं भगीरथः। उद्धारार्थं पूर्वजानां आनयद् ब्रह्मलोकतः॥ ८२॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातं गङ्गायाः पावनं यशः। या पुत्रान्सगरस्यैतान्भस्माख्याननयद्दिवम्॥ ८३॥

गङ्गाजलकी लहरोंको छूकर हवा जब मृतकका स्पर्श करती है तब उस मृतकके पातक तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं॥ ८१॥ महाराज भगीरथ उग्र तपसे (गङ्गादेवीकी) आराधना करके अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये गङ्गादेवीको ब्रह्मलोकसे (भूलोक) ले आये थे॥ ८२॥ जिनके जलने भस्मीभूत राजा सगरके पुत्रोंको स्वर्गमें पहुँचा दिया, उन गङ्गाजीका पवित्र यश तीनों लोकोंमें विख्यात है॥ ८३॥

पूर्वे वयसि पापानि ये कृत्वा मानवाः गताः। गङ्गायामस्थिपतनात्स्वर्गलोकं प्रयान्ति ते॥ ८४॥

कश्चिद् व्याधो महारण्ये सर्वप्राणिविहिंसकः। सिंहेन निहतो यावत्प्रयाति नरकालये॥ ८५॥
तावत्कालेन तस्यास्थि गङ्गायां पतितं तदा। दिव्यं विमानमारुह्य स गतो देवमन्दिरम्॥ ८६॥
अतः स्वयं हि सत्पुत्रो गङ्गायामस्थि पातयेत्। अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दशगात्रं समाचरेत्॥ ८७॥

जो मनुष्य अपनी पूर्वावस्थामें पाप करके मर जाते हैं, उनकी अस्थियोंको गङ्गामें छोड़नेपर वे स्वर्गलोक चले जाते हैं॥ ८४॥ किसी महा अरण्यमें सभी प्राणियोंकी हत्या करनेवाला कोई व्याध सिंहके द्वारा मारा गया और जब वह नरकको जाने लगा तभी उसकी अस्थि गङ्गाजीमें गिर पड़ी, जिससे वह दिव्य विमानपर चढ़कर देवलोकको चला गया॥ ८५-८६॥ इसलिये सत्पुत्रको स्वतः ही अपने पिताकी अस्थियोंको गङ्गाजीमें विसर्जित करना चाहिये। अस्थिसञ्चयनके अनन्तर दशगात्रविधिका अनुष्ठान करना चाहिये॥ ८७॥

अथ कश्चिद्विदेशे वा वने चौरभये मृतः। न लब्धस्तस्य देहश्चेच्छृणुयाद्यद्दिने तदा॥ ८८॥
दर्भपुत्तलकं कृत्वा पूर्ववत्केवलं दहेत्। तस्य भस्म समादाय गङ्गातोये विनिक्षिपेत्॥ ८९॥
दशगात्रादिकं कर्म तद्दिनादेव कारयेत्। स एव दिवसो ग्राह्यः श्राद्धे सांवत्सरादिके॥ ९०॥
पूर्णे गर्भे मृता नारी विदार्य जठरं तदा। बालं निष्कास्य निक्षिप्य भूमौ तामेव दाहयेत्॥ ९१॥
गङ्गातीरे मृतं बालं गङ्गायामेव पातयेत्। अन्य देशे क्षिपेद् भूमौ सप्तविंशतिमासजम्॥ ९२॥
अतः परं दहेत्तस्य गङ्गायामस्थि निक्षिपेत्। जलकुम्भश्च दातव्यं बालानामेव भोजनम्॥ ९३॥

यदि कोई व्यक्ति विदेशमें या वनमें अथवा चोरोंके भयसे मरा हो और उसका शव प्राप्त न हुआ हो तो जिस दिन उसके निधनका समाचार सुने, उस दिन कुशका पुत्तल बनाकर पूर्वविधिके अनुसार केवल उसीका दाह करे और उसकी भस्मको लेकर गङ्गाजलमें विसर्जित करे॥ ८८-८९॥ दशगात्रादि कर्म भी उसी दिनसे आरम्भ करना चाहिये और सांवत्सरिक श्राद्धमें भी उसी (सूचना प्राप्त होनेवाले) दिनको ग्रहण करना चाहिये॥ ९०॥ यदि गर्भकी पूर्णता हो जानेके अनन्तर नारीकी मृत्यु हो गयी हो तो उसके पेटको चीरकर बालकको निकाल ले, (यदि वह भी मर गया हो तो) उसे भूमिमें गाड़कर केवल मृत स्त्रीका दाह करे॥ ९१॥ गङ्गाके किनारे मरे हुए बालकको गङ्गाजीमें ही प्रवाहित कर दे और अन्य स्थानपर मरे सत्ताईस महीनेतकके बालकको भूमिमें गाड़ दे॥ ९२॥ इसके बादकी अवस्थावाले बालकका दाहसंस्कार करे और उसकी अस्थियाँ गङ्गाजीमें विसर्जित करे तथा जलपूर्ण कुम्भ प्रदान करे एवं केवल बालकोंको ही भोजन कराये॥ ९३॥

गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं मृते शिशौ। घटं च पायसं भोज्यं दद्याद्बालविपत्तिषु॥ ९४॥
कुमारे च मृते बालान् कुमारानेव भोजयेत्। सबालान्भोजयेद्विप्रान्पौगण्डे सव्रते मृते॥ ९५॥
मृतश्च पञ्चमादूर्ध्वमव्रतः सव्रतोऽपि वा। पायसेन गुडेनापि पिण्डान्दद्याद्दश क्रमात्॥ ९६॥
एकादशं द्वादशं च वृषोत्सर्गविधिं विना। महादानविहीनं च पौगण्डे कृत्यमाचरेत्॥ ९७॥

जीवमाने च पितरि न पौगण्डे सपिण्डनम्। अतस्तस्य द्वादशाहन्येकोद्दिष्टं समाचरेत्॥ ९८ ॥

गर्भके नष्ट होनेपर (गर्भस्थ शिशुके उद्देश्यसे) उसकी कोई क्रिया नहीं की जाती। पर शिशु (दाँत निकलनेके पूर्वकी अवस्थावाले बच्चे)-के मरनेपर उसके लिये दुग्धदान करना चाहिये। बालक (चूडाकरणसे पूर्व या तीन वर्षकी अवस्थावाले)-के मरनेपर उसके लिये जलपूर्ण घटका दान करना चाहिये और खीरका भोजन कराना चाहिये॥ ९४॥ कुमारके मरनेपर कुमार बालकोंको भोजन कराना चाहिये और उपनीत पौगण्ड अवस्थाके बच्चेके मरनेपर उसी अवस्थाके बालकोंके साथ ब्राह्मणोंको भोजन कराये॥ ९५॥ पाँच वर्षकी अवस्थासे अधिक अवस्थावाले बालककी मृत्यु होनेपर, वह चाहे उपनीत (यज्ञोपवीत-संस्कार-सम्पन्न) हो अथवा अनुपनीत (जिसका यज्ञोपवीत न हुआ) हो पायस और गुडके दस पिण्ड क्रमशः प्रदान करने चाहिये॥ ९६॥ पौगण्ड अवस्थाके बालककी मृत्यु होनेपर वृषोत्सर्ग तथा महादानकी विधिको छोड़कर एकादशाह तथा द्वादशाहकी क्रियाका सम्पादन करना चाहिये॥ ९७॥ पिताके जीवित रहनेपर पौगण्डावस्थामें मृत बालकका सपिण्डन श्राद्ध नहीं होता। अतः बारहवें दिन उसका केवल एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे॥ ९८॥

स्त्रीशूद्राणां विवाहस्तु व्रतस्थाने प्रकीर्तितः। व्रतात्प्राक्सर्ववर्णानां वयस्तुल्या क्रिया भवेत्॥ ९९ ॥
स्वल्पात्कर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद् विषयबन्धनात्। स्वल्पे वयसि देहे च क्रियां स्वल्पामपीच्छति॥ १००॥
किशोरे तरुणे कुर्याच्छय्यावृषमखादिकम्। पददानं महादानं गोदानमपि दापयेत्॥ १०१॥

यतीनां चैव सर्वेषां न दाहो नोदकक्रिया। दशगात्रादिकं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः॥ १०२॥
दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्। त्रिदण्डग्रहणात्तेषां प्रेतत्वं नैव जायते॥ १०३॥

स्त्री और शूद्रोंके लिये विवाह ही व्रतबन्ध-स्थानीय संस्कार कहा गया है। व्रत अर्थात् उपनयनके पूर्व मरनेवाले सभी वर्णोंके मृतकोंके लिये उनकी अवस्थाके अनुकूल समान क्रिया होनी (करनी) चाहिये॥ ९९॥ जिसने थोड़ा कर्म किया हो, थोड़े विषयोंसे जिसका सम्बन्ध रहा हो, कम अवस्था हो और स्वल्प देहवाला हो, ऐसे जीवके मरनेपर उसकी क्रिया भी स्वल्प ही होनी चाहिये॥ १००॥ किशोर अवस्थाके और तरुण अवस्थाके मनुष्यके मरनेपर शय्यादान, वृषोत्सर्गादि, पददान, महादान और गोदान आदि क्रियाएँ करनी चाहिये॥ १०१॥ सभी प्रकारके संन्यासियोंकी मृत्यु होनेपर उनके पुत्रों (आदिके) द्वारा न तो उनका दाह-संस्कार किया जाना चाहिये, न उन्हें तिलाञ्जलि देनी चाहिये और न उनकी दशगात्रादि क्रिया ही करनी चाहिये॥ १०२॥ क्योंकि दण्डग्रहण (संन्यासग्रहण) कर लेनेमात्रसे नर ही नारायणस्वरूप हो जाता है। त्रिदण्ड[1]-ग्रहण करनेसे (मृत्युके अनन्तर उस) जीवको प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता॥ १०३॥

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ताः स्वरूपानुभवेन हि। अतस्ते तु प्रदत्तानां पिण्डानां नैव काङ्क्षिणः॥ १०४॥
तस्मात्पिण्डादिकं तेषां नैव नोदकमाचरेत्। तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं पितृभक्त्या समाचरेत्॥ १०५॥

१. मन, वाणी और इन्द्रियोंका संयम ही 'त्रिदण्ड' है।

ज्ञानीजन तो अपने स्वरूपका अनुभव कर लेनेके कारण सदा मुक्त ही होते हैं। इसलिये उनके उद्देश्यसे दिये जानेवाले पिण्डोंकी भी उन्हें आकाङ्क्षा नहीं होती॥ १०४॥ अतः उनके लिये पिण्डदान और उदकक्रिया नहीं करनी चाहिये, किंतु पितृभक्तिके कारण तीर्थश्राद्ध और गयाश्राद्ध करने चाहिये॥ १०५॥

हंसं परमहंसं च कुटीचकबहूदकौ। एतान् संन्यासिनस्तार्क्ष्य पृथिव्यां स्थापयेन्मृतान्॥ १०६॥
गङ्गादीनामभावे हि पृथिव्यां स्थापनं स्मृतम्। यत्र सन्ति महानद्यस्तदा तास्वेव निक्षिपेत्॥ १०७॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे दाहास्थिसंचयकर्मनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥



हे तार्क्ष्य! हंस, परमहंस, कुटीचक और बहूदक—इन चारों प्रकारके संन्यासियोंकी मृत्यु होनेपर उन्हें पृथिवीमें गाड़ देना चाहिये॥ १०६॥ गङ्गा आदि नदियोंके उपलब्ध न रहनेपर ही पृथिवीमें गाड़नेकी विधि है, यदि वहाँ कोई महानदी हो तो उन्हींमें उन्हें जलसमाधि दे देनी चाहिये॥ १०७॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'दाहास्थिसंचयकर्मनिरूपण' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥



ग्यारहवाँ अध्याय

दशगात्र-विधान

गरुड उवाच

दशगात्रविधिं ब्रूहि कृते किं सुकृतं भवेत्। पुत्राभावे तु कः कुर्यादिति मे वद केशव॥ १॥

गरुडजी बोले—हे केशव! आप दशगात्रकी विधिके सम्बन्धमें बताइये, इसके करनेसे कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है और पुत्रके अभावमें इसको किसे करना चाहिये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि दशगात्रविधिं तव। यद्विधाय च सत्पुत्रो मुच्यते पैतृकादृणात्॥ २॥

पुत्रः शोकं परित्यज्य धृतिमास्थाय सात्त्विकीम्। पितुः पिण्डादिकं कुर्यादश्रुपातं न कारयेत्॥ ३॥

श्रीभगवान् बोले—हे तार्क्ष्य! अब मैं दशगात्रविधिको तुमसे कहता हूँ, जिसको करनेसे सत्पुत्र पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है॥ २॥ पुत्र (पिताके मरनेपर) शोकका परित्याग करके धैर्य धारणकर सात्त्विक भावसे समन्वित होकर पिताका पिण्डदान आदि कर्म करे। उसे अश्रुपात नहीं करना चाहिये॥ ३॥

श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः। अतो न रोदितव्यं हि तदा शोकान्निरर्थकात्॥ ४॥

यदि वर्षसहस्राणि शोचतेऽहर्निशं नरः। तथापि नैव निधनं गतो दृश्येत कर्हिचित्॥ ५॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोकं कारयेद् बुधः॥ ६॥
न हि कश्चिदुपायोऽस्ति दैवो वा मानुषोऽपि वा। यो हि मृत्युवशं प्राप्तो जन्तुः पुनरिहाव्रजेत्॥ ७॥
अवश्यं भाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि। तदा दुःखैर्न युज्येरन् नलरामयुधिष्ठिराः॥ ८॥
नायमत्यन्तसंवासः कस्यचित् केनचित् सह। अपि स्वस्य शरीरेण किमुतान्यैः पृथग्जनैः॥ ९॥

क्योंकि बान्धवोंके द्वारा किये गये अश्रुपात और श्लेष्मपातको विवश होकर (पितारूपी) प्रेत पान करता है। इसलिये इस समय निरर्थक शोक करके रोना नहीं चाहिये॥ ४॥ यदि मनुष्य हजारों वर्ष रात-दिन शोक करता रहे, तो भी मृत प्राणी कहीं भी दिखायी नहीं पड़ सकता॥ ५॥ जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसकी मृत्यु सुनिश्चित है और जिसकी मृत्यु हुई है, उसका जन्म भी निश्चित है। इसलिये बुद्धिमान्‌को इस अवश्यम्भावी जन्म-मृत्युके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये॥ ६॥ ऐसा कोई दैवी अथवा मानवीय उपाय नहीं है, जिसके द्वारा मृत्युको प्राप्त हुआ व्यक्ति पुनः यहाँ वापस आ सके॥ ७॥ अवश्यम्भावी भावोंका प्रतीकार यदि सम्भव होता तो नल, राम और युधिष्ठिर महाराज आदि दुःख न प्राप्त करते॥ ८॥ इस जगत्‌में सदाके लिये किसीका किसी भी व्यक्तिके साथ रहना सम्भव नहीं है। जब अपने शरीरके साथ भी जीवात्माका सार्वकालिक सम्बन्ध सम्भव नहीं है तो फिर अन्य जनोंके आत्यन्तिक सहवासकी तो बात ही क्या?॥ ९॥

यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य विश्रमेत्। विश्रम्य च पुनर्गच्छेत् तद्वद्भूतसमागमः॥ १०॥
यत्प्रातः संस्कृतं भोज्यं सायं तच्च विनश्यति। तदन्नरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता॥ ११॥
भैषज्यमेतद्दुःखस्य विचारं परिचिन्त्य च। अज्ञानप्रभवं शोकं त्यक्त्वा कुर्यात् क्रियां सुतः॥ १२॥

जिस प्रकार कोई पथिक छायाका आश्रय लेकर विश्राम करता है और विश्राम करके पुनः चला जाता है, उसी प्रकार प्राणीका संसारमें परस्पर मिलन होता है। पुनः प्रारब्ध-कर्मोंको भोगकर वह अपने गन्तव्यको चला जाता है॥ १०॥ प्रातःकाल जो भोज्य पदार्थ बनाया जाता है, वह सायंकाल नष्ट हो जाता है—ऐसे (नष्ट होनेवाले) अन्नके रससे पुष्ट होनेवाले शरीरकी नित्यताकी कथा ही क्या?॥ ११॥ पितृमरणसे होनेवाले दुःखके लिये यह (पूर्वोक्त) विचार औषधस्वरूप है। अतः इसका सम्यक् चिन्तन करके अज्ञानसे होनेवाले शोकका परित्याग कर पुत्रको अपने पिताकी क्रिया करनी चाहिये॥ १२॥

पुत्राभावे वधूः कुर्याद्भार्याभावे च सोदरः। शिष्यो वा ब्राह्मणस्यैव सपिण्डो वा समाचरेत्॥ १३॥
ज्येष्ठस्य वा कनिष्ठस्य भ्रातुः पुत्रैश्च पौत्रकैः। दशगात्रादिकं कार्यं पुत्रहीने नरे खग॥ १४॥
भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥ १५॥

पुत्रके अभावमें पत्नीको और पत्नीके अभावमें सहोदर भाईको तथा सहोदर भाईके अभावमें ब्राह्मणकी क्रिया उसके शिष्यको अथवा किसी सपिण्डी व्यक्तिको करनी चाहिये॥ १३॥ हे गरुड! पुत्रहीन व्यक्तिके मरनेपर उसके बड़े अथवा

छोटे भाईके पुत्रों या पौत्रोंके द्वारा दशगात्र आदि कार्य कराने चाहिये॥ १४॥ एक पितासे उत्पन्न होनेवाले भाइयोंमें यदि एक भी पुत्रवान् हो तो उसी पुत्रसे सभी भाई पुत्रवान् हो जाते हैं, ऐसा मनुजीने कहा है॥ १५॥

पत्न्यश्च बह्व्य एकस्य चैका पुत्रवती भवेत्। सर्वास्ताः पुत्रवत्यः स्युस्तेनैकेन सुतेन हि॥ १६॥
सर्वेषां पुत्रहीनानां मित्रं पिण्डं प्रदापयेत्। क्रियालोपो न कर्तव्यः सर्वाभावे पुरोहितः॥ १७॥
स्त्री वाऽथ पुरुषः कश्चिदिष्टस्य कुरुते क्रियाम्। अनाथप्रेतसंस्कारात् कोटियज्ञफलं लभेत्॥ १८॥

यदि एक पुरुषकी बहुत-सी पत्नियोंमें कोई एक पुत्रवती हो जाय तो उस एक ही पुत्रसे वे सभी पुत्रवती हो जाती हैं॥ १६॥ सभी (भाई) पुत्रहीन हों तो उनका मित्र पिण्डदान करे अथवा सभीके अभावमें पुरोहितको ही क्रिया करनी चाहिये। क्रियाका लोप नहीं करना चाहिये॥ १७॥ यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष अपने इष्ट-मित्रकी और्ध्वदैहिक क्रिया करता है तो अनाथ प्रेतका संस्कार करनेसे उसे कोटियज्ञका फल प्राप्त होता है॥ १८॥

पितुः पुत्रेण कर्तव्यं दशगात्रादिकं खग। मृते ज्येष्ठेऽप्यतिस्नेहान्न कुर्वीत पिता सुते॥ १९॥
बहवोऽपि यदा पुत्रा विधिमेकः समाचरेत्। दशगात्रं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यन्यानि षोडश॥ २०॥
एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि। विभक्तैस्तु पृथक्कार्यं श्राद्धं सांवत्सरादिकम्॥ २१॥

हे खग! पिताका दशगात्रादि कर्म पुत्रको करना चाहिये। किंतु यदि ज्येष्ठ पुत्रकी मृत्यु हो जाय तो अति स्नेह होनेपर भी पिता उसकी दशगात्रादि क्रिया न करे॥ १९॥ बहुत-से पुत्रोंके रहनेपर भी दशगात्र, सपिण्डन तथा

अन्य षोडश श्राद्ध एक ही पुत्रको करना चाहिये॥ २०॥ पैतृक सम्पत्तिका बँटवारा हो जानेपर भी दशगात्र, सपिण्डन और षोडश श्राद्ध एकको ही करना चाहिये, किंतु सांवत्सरिक आदि श्राद्धोंको विभक्त पुत्र पृथक्-पृथक् करें॥ २१॥

तस्माज्ज्येष्ठः सुतो भक्त्या दशगात्रं समाचरेत्। एकभोजी भूमिशायी भूत्वा ब्रह्मपरः शुचिः॥ २२॥
सप्तवारं परिक्रम्य धरणीं यत्फलं लभेत्। क्रियां कृत्वा पितुर्मातुस्तत्फलं लभते सुतः॥ २३॥
आरभ्य दशगात्रं च यावद्वै वार्षिकं भवेत्। तावत् पुत्रः क्रियां कुर्वन् गयाश्राद्धफलं लभेत्॥ २४॥

इसलिये ज्येष्ठ पुत्रको एक समय भोजन, भूमिपर शयन तथा ब्रह्मचर्य धारण करके पवित्र होकर भक्तिभावसे दशगात्र और श्राद्धविधान करने चाहिये॥ २२॥ पृथ्वीकी सात बार परिक्रमा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल पिता-माताकी क्रिया करके पुत्र प्राप्त करता है॥ २३॥ दशगात्रसे लेकर वार्षिक श्राद्धपर्यन्त पिताकी श्राद्धक्रिया करनेवाला पुत्र गयाश्राद्धका फल प्राप्त करता है॥ २४॥

कूपे तडागे वाऽऽरामे तीर्थे देवालयेऽपि वा। गत्वा मध्यमयामे तु स्नानं कुर्यादमन्त्रकम्॥ २५॥
शुचिर्भूत्वा वृक्षमूले दक्षिणाभिमुखः स्थितः। कुर्याच्च वेदिकां तत्र गोमयेनोपलिप्यताम्॥ २६॥
तस्यां पर्णे दर्भमयं स्थापयेत् कौशिकं द्विजम्। तं पाद्यादिभिरभ्यर्च्य प्रणमेदतसीति च॥ २७॥

कूप, तालाब, बगीचा, तीर्थ अथवा देवालयके प्राङ्गणमें जाकर मध्यमयाम (मध्याह्नकाल)-में बिना मन्त्रके स्नान

करना चाहिये॥ २५ ॥ पवित्र होकर वृक्षके मूलमें दक्षिणाभिमुख होकर वेदी बनाकर उसे गोबरसे लीपे। उस वेदीमें पत्तेपर कुशसे बने हुए दर्भमय ब्राह्मणको स्थापित करके पाद्यादिसे उसका पूजन करे और '**अतसीपुष्पसंकाशं०**'[1] इत्यादि मन्त्रोंसे उसे प्रणाम करे॥ २६-२७॥

तदग्रे च ततो दत्त्वा पिण्डार्थं कौशमासनम्। तस्योपरि ततः पिण्डं नामगोत्रोपकल्पितम्॥ २८॥
दद्यात् तण्डुलपाकेन यवपिष्टेन वा सुतः।
उशीरं चन्दनं भृङ्गराजपुष्पं निवेदयेत्। धूपं दीपं च नैवेद्यं मुखवासं च दक्षिणाम्॥ २९॥
काकान्नं पयसोः पात्रे वर्धमानजलाञ्जलीन्। प्रेतायामुकनाम्ने च मद्दत्तमुपतिष्ठतु॥ ३०॥
अन्नं वस्त्रं जलं द्रव्यमन्यद्वा दीयते च यत्। प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्त्यदायकम्॥ ३१॥
तस्मादादिदिनादूर्ध्वं प्राक्सपिण्डीविधानतः। योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्दं समुच्चरेत्॥ ३२॥

इसके पश्चात् उसके आगे पिण्ड प्रदान करनेके लिये कुशका आसन रखकर उसके ऊपर नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए पके हुए चावल अथवा जौकी पीठी (आटे)-से बने हुए पिण्डको प्रदान करना चाहिये। उशीर (खस), चन्दन और भृङ्गराज (भँगरैया)-का पुष्प निवेदित करे। धूप-दीप, नैवेद्य, मुखवास (ताम्बूल-पान) तथा दक्षिणा समर्पित करे॥ २८-२९॥ तदनन्तर काकान्न, दूध और जलसे परिपूर्ण पात्र तथा वर्धमान

१. अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्॥ (गरुडपुराण अ० ११। ४०)

(वृद्धिक्रमसे दी जानेवाली) जलाञ्जलि प्रदान करते हुए यह कहे कि—'अमुक नामके प्रेतके लिये मेरे द्वारा प्रदत्त (यह पिण्डादि सामग्री) प्राप्त हो'॥ ३०॥ अन्न, वस्त्र, जल, द्रव्य अथवा अन्य जो भी वस्तु 'प्रेत' शब्दका उच्चारण करके मृत प्राणीको दी जाती है, उससे उसे अनन्त फल प्राप्त होता है (अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है)॥ ३१॥ इसलिये प्रथम दिनसे लेकर सपिण्डीकरणके पूर्व स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये 'प्रेत' शब्दका उच्चारण करना चाहिये॥ ३२॥

प्रथमेऽहनि यत्पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम्। तेनैव विधिनान्नेन नव पिण्डान् प्रदापयेत्॥ ३३॥
नवमे दिवसे चैव सपिण्डैः सकलैर्जनैः। तैलाभ्यङ्गः प्रकर्तव्यो मृतकस्वर्गकाम्यया॥ ३४॥
बहिः स्नात्वा गृहीत्वा च दूर्वा लाजासमन्विताः। अग्रतः प्रमदां कृत्वा समागच्छेन्मृतालयम्॥ ३५॥
दूर्वावत् कुलवृद्धिस्ते लाजा इव विकासिता। एवमुक्त्वा त्यजेद् गेहे लाजान् दूर्वासमन्वितान्॥ ३६॥
दशमेऽहनि मांसेन पिण्डं दद्यात् खगेश्वर। माषेण तन्निषेधाद्वा कलौ न पलपैतृकम्॥ ३७॥
दशमे दिवसे क्षौरं बान्धवानां च मुण्डनम्। क्रियाकर्तुः सुतस्यापि पुनर्मुण्डनमाचरेत्॥ ३८॥

पहले दिन विधिपूर्वक जिस अन्नका पिण्ड दिया जाता है, उसी अन्नसे विधिपूर्वक नौ दिनतक पिण्डदान करना चाहिये॥ ३३॥ नौवें दिन सभी सपिण्डीजनोंको मृत प्राणीके स्वर्गकी कामनासे तैलाभ्यङ्ग करना चाहिये और घरके बाहर स्नान करके दूब एवं लाजा (लावा) लेकर स्त्रियोंको आगे करके मृत प्राणीके घर जाकर उससे कहे कि 'दूर्वाके

समान आपके कुलकी वृद्धि हो तथा लावाके समान आपका कुल विकसित हो'—ऐसा कह करके दूर्वासमन्वित लावाको उसके घरमें (चारों ओर) बिखेर दे॥ ३४-३६॥ हे खगेश्वर! दसवें दिन मांससे पिण्डदान करना चाहिये, किंतु कलियुगमें मांससे पिण्डदान शास्त्रत: निषिद्ध[1] होनेके कारण माष (उड़द)-से पिण्डदान करना चाहिये॥ ३७॥ दसवें दिन क्षौरकर्म और बन्धु-बान्धवोंको मुण्डन कराना चाहिये। क्रिया करनेवाले पुत्रको भी पुन: मुण्डन कराना चाहिये॥ ३८॥

मिष्टान्नैर्भोजयेदेकं दिनेषु दशसु द्विजम्। प्रार्थयेत् प्रेतमुक्तिं च हरिं ध्यात्वा कृताञ्जलि:॥ ३९॥
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्॥ ४०॥
अनादिनिधनो देव: शंखचक्रगदाधर:। अक्षय्य: पुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भव॥ ४१॥
इति सम्प्रार्थनामन्त्रं श्राद्धान्ते प्रत्यहं पठेत्। स्नात्वा गत्वा गृहे दत्वा गोग्रासं भोजनं चरेत्॥ ४२॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे दशगात्रविधिनिरूपणं नाम एकादशोऽध्याय:॥ ११॥



दस दिनतक एक ब्राह्मणको प्रतिदिन मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये और हाथ जोड़कर भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतकी मुक्तिके लिये (इस प्रकार) प्रार्थना करनी चाहिये॥ ३९॥ अतसीके फूलके

१. अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्॥ देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्। (ब्रह्मवै० ४। ११५। ११२-१३)। अश्वमेध, गोमेध, संन्यास, श्राद्धमें मांसका प्रयोग तथा देवरद्वारा पुत्रोत्पत्ति—ये पाँचों कलियुगमें निषिद्ध हैं।

समान कान्तिवाले, पीत वस्त्र धारण करनेवाले अच्युत भगवान् गोविन्दको जो प्रणाम करते हैं, उन्हें कोई भय नहीं होता॥ ४०॥ हे आदि-अन्तसे रहित, शङ्ख-चक्र और गदा धारण करनेवाले, अविनाशी तथा कमलके समान नेत्रवाले देव विष्णु! आप प्रेतको मोक्ष प्रदान करनेवाले हों॥ ४१॥ इस प्रकार प्रतिदिन श्राद्धके अन्तमें यह प्रार्थना-मन्त्र पढ़ना चाहिये। तदनन्तर स्नान करके घर जाकर गोग्रास देनेके उपरान्त भोजन करना चाहिये॥ ४२॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'दशगात्रविधिनिरूपण' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥



बारहवाँ अध्याय

एकादशाहकृत्य-निरूपण, मृत-शय्यादान, गोदान, घटदान, अष्टमहादान, वृषोत्सर्ग, मध्यमषोडशी, उत्तमषोडशी एवं नारायणबलि

गरुड उवाच

एकादशदिनस्यापि विधिं ब्रूहि सुरेश्वर। वृषोत्सर्गविधानं च वद मे जगदीश्वर॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे सुरेश्वर! ग्यारहवें दिनके कृत्य-विधानको भी बताइये और हे जगदीश्वर! वृषोत्सर्गकी विधि भी बताइये॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

एकादशेऽह्नि गन्तव्यं प्रातरेव जलाशये। और्ध्वदेहिक्रिया सर्वा करणीया प्रयत्नतः॥ २ ॥
निमन्त्रयेद् ब्राह्मणांश्च वेदशास्त्रपरायणान्। प्रार्थयेत् प्रेतमुक्तिं च नमस्कृत्य कृताञ्जलिः॥ ३ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—ग्यारहवें दिन प्रातःकाल ही जलाशयपर जाकर प्रयत्नपूर्वक सभी और्ध्वदैहिक क्रिया करनी चाहिये॥ २ ॥ वेद और शास्त्रोंका अभ्यास करनेवाले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और हाथ जोड़कर नमस्कार करके उनसे प्रेतकी मुक्तिके लिये प्रार्थना करे॥ ३ ॥

स्नानसंध्यादिकं कृत्वा ह्याचार्योऽपि शुचिर्भवेत्। विधानं विधिवत् कुर्यादेकादशदिनोचितम्॥ ४ ॥
अमन्त्रं कारयेच्छ्राद्धं दशाहं नाम गोत्रतः। एकादशेऽह्नि प्रेतस्य दद्यात् पिण्डं समन्त्रकम्॥ ५ ॥
सौवर्णं कारयेद् विष्णुं ब्रह्माणं रौप्यकं तथा। रुद्रस्ताम्रमयः कार्यो यमो लोहमयः खग॥ ६ ॥
पश्चिमे विष्णुकलशं गङ्गोदकसमन्वितम्। तस्योपरि न्यसेद्विष्णुं पीतवस्त्रेण वेष्टितम्॥ ७ ॥
पूर्वे तु ब्रह्मकलशं क्षीरोदकसमन्वितम्। ब्रह्माणं स्थापयेत् तत्र श्वेतवस्त्रेण वेष्टितम्॥ ८ ॥
उत्तरस्यां रुद्रकुम्भं पूरितं मधुसर्पिषा। श्रीरुद्रं स्थापयेत् तत्र रक्तवस्त्रेण वेष्टितम्॥ ९ ॥
दक्षिणस्यां यमघटमिन्द्रोदकसमन्वितम्। कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य तस्योपरि यमं न्यसेत्॥ १० ॥

आचार्य भी स्नान-संध्या आदि करके पवित्र हो जायँ और ग्यारहवें दिनके लिये उचित कृत्योंका विधिवत् विधान आरम्भ करें॥ ४॥ दस दिनतक मृतकके नाम-गोत्रका उच्चारण मन्त्रोच्चारणके बिना करना चाहिये। ग्यारहवें दिन प्रेतका पिण्डदान समन्त्रक (मन्त्रोंसहित) करना चाहिये॥ ५॥ हे गरुड! सुवर्णसे विष्णुकी, रजत (चाँदी)-से ब्रह्माकी, ताम्रसे रुद्रकी और लौहसे यमकी प्रतिमा बनवानी चाहिये॥ ६॥ पश्चिमभागमें गङ्गाजलसे परिपूर्ण विष्णुकलश स्थापित करके उसके ऊपर पीतवस्त्रसे वेष्टित विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे॥ ७॥ पूर्व-दिशामें दूध और जलसे भरा ब्रह्मकलश स्थापित करके उसपर श्वेत वस्त्रसे वेष्टित ब्रह्माकी स्थापना करे॥ ८॥ उत्तरकी दिशामें मधु और घृतसे परिपूर्ण रुद्रकुम्भकी स्थापना करके रक्त-वस्त्रवेष्टित श्रीरुद्रकी प्रतिमाको उसपर स्थापित

करे॥ ९॥ दक्षिण-दिशामें इन्द्रोदक (वर्षाके जल)-से परिपूर्ण यमघटकी स्थापना करे और काले वस्त्रसे वेष्टित करके उसपर यमकी प्रतिमा स्थापित करे॥ १०॥

मध्ये तु मण्डलं कृत्वा स्थापयेत् कौशिकं सुतः। दक्षिणाभिमुखो भूत्वाऽपसव्येन च तर्पयेत्॥ ११॥
विष्णुं विधिं शिवं धर्मं वेदमन्त्रैश्च तर्पयेत्। होमं कृत्वा चरेत् पश्चाच्छ्राद्धं दशघटादिकम्॥ १२॥
गोदानं च ततो दद्यात् पितॄणां तारणाय वै। गौरेषा हि मया दत्ता प्रीतये तेऽस्तु माधव॥ १३॥
उपभुक्तं तु तस्यासीद्वस्त्रभूषणवाहनम्। घृतपूर्णं कांस्यपात्रं सप्तधान्यं तदीप्सितम्॥ १४॥
तिलाद्यष्टमहादानमन्तकाले न चेत् कृतम्। शय्यासमीपे धृत्वैतद्दानं तस्याः प्रदापयेत्॥ १५॥
प्रक्षाल्य विप्रचरणौ पूजयेदम्बरादिभिः। सिद्धान्नं तस्य दातव्यं मोदकाऽपूपकाः पयः॥ १६॥
स्थापयेत् पुरुषं हैमं शय्योपरि तदा सुतः। पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता॥ १७॥

उनके मध्यमें एक मण्डल बनाकर उसपर पुत्र कुशसे निर्मित कुशमयी प्रेतकी प्रतिमा स्थापित करे और दक्षिणाभिमुख एवं अपसव्य होकर तर्पण करे॥ ११॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव और धर्मराज (यम)-का वेदमन्त्रोंसे तर्पण करे। तब होम करनेके अनन्तर श्राद्ध और दस घट आदिका दान करे॥ १२॥ तदनन्तर पितरोंको तारनेके लिये गोदान करे। गोदानके समय 'हे माधव! यह गौ मेरेद्वारा आपकी प्रसन्नताके लिये दी जा रही है, इस गोदानसे आप प्रसन्न होवें'—ऐसा कहे॥ १३॥ प्रेतके द्वारा उपभुक्त आभूषण, वस्त्र, वाहन तथा घृतपूर्ण कांस्यपात्र, सप्तधान्य

और प्रेतको प्रिय लगनेवाली वस्तुएँ एवं तिलादि अष्टमहादान जो अन्तकालमें न किये जा सके हों, शय्याके समीप रखकर शय्याके साथ इन सबका भी दान करे॥ १४-१५॥ ब्राह्मणके चरणोंको धोकर वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करे और मोदक, पूआ, दूध आदि पक्वान्न उन्हें प्रदान करे॥ १६॥ तब पुत्र शय्याके ऊपर (प्रेतकी) स्वर्णमयी प्रतिमा (काञ्चन पुरुषको) स्थापित करे और उसकी पूजा करके यथाविधि मृतशय्याका दान करे॥ १७॥

प्रेतस्य प्रतिमायुक्ता सर्वोपकरणैर्वृता। प्रेतशय्या मया ह्येषा तुभ्यं विप्र निवेदिता॥ १८॥
इत्याचार्याय दातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥ १९॥
एवं शय्याप्रदानेन श्राद्धेन नवकादिना। वृषोत्सर्गविधानेन प्रेतो याति परां गतिम्॥ २०॥

शय्यादानके समय इस मन्त्रको पढ़े—'हे विप्र! प्रेतकी प्रतिमासे युक्त और सभी प्रकारके उपकरणोंसे समन्वित यह प्रेतशय्या (मृतशय्या) मैंने आपको निवेदित की है'—इस प्रकार पढ़कर कुटुम्बी ब्राह्मण आचार्यको वह शय्या प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद प्रदक्षिणा और प्रणाम करके विसर्जन करना चाहिये॥ १८-१९॥ इस प्रकार शय्यादान, नवक आदि श्राद्ध और वृषोत्सर्गका विधान करनेसे प्रेत परम गतिको प्राप्त होता है॥ २०॥

एकादशेऽह्नि विधिना वृषोत्सर्गं समाचरेत्। हीनाङ्गरोगिणं बालं त्यक्त्वा कुर्यात्सलक्षणम्॥ २१॥
रक्ताक्षः पिङ्गलो यस्तु रक्तः शृङ्गे गले खुरे। श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठो ब्राह्मणस्य विधीयते॥ २२॥
सुस्निग्धवर्णो यो रक्तः क्षत्रियस्य विधीयते। पीतवर्णश्च वैश्यस्य कृष्णः शूद्रस्य शस्यते॥ २३॥

ग्यारहवें दिन विधिपूर्वक हीन अङ्गवाले, रोगी, अत्यन्त छोटे बछड़ेको छोड़कर सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त वृषका विधिपूर्वक उत्सर्ग (वृषोत्सर्ग) करना चाहिये॥ २१॥ ब्राह्मणके उद्देश्यसे लाल आँखवाले, पिंगलवर्णवाले, लाल सींग, लाल गला और लाल खुरवाले, सफेद पेट तथा काली पीठवाले वृषभका उत्सर्जन करना चाहिये॥ २२॥ क्षत्रियके लिये चिकना और रक्तवर्णवाला, वैश्यके लिये पीतवर्णवाला और शूद्रके लिये कृष्णवर्णका वृषभ (वृषोत्सर्गके लिये) प्रशस्त माना जाता है॥ २३॥

यस्तु सर्वाङ्गपिङ्गः स्याच्छ्वेतः पुच्छे पदेषु च। सपिङ्गो वृष इत्याहुः पितॄणां प्रीतिवर्धनः॥ २४॥
चरणास्तु मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः। लाक्षारससवर्णो यः स नील इति कीर्तितः॥ २५॥
लोहितो यस्तु वर्णेन मुखपुच्छे च पाण्डुरः। पिङ्गः खुरविषाणाभ्यां रक्तनीलो निगद्यते॥ २६॥
सर्वाङ्गेष्वेकवर्णो यः पिङ्गः पुच्छे खुरेषु यः। तं नीलपिङ्गमित्याहुः पूर्वजोद्धारकारकम्॥ २७॥

जिस वृषभका सर्वाङ्ग पिङ्गलवर्णका हो तथा पूँछ और पैर सफेद हो, वह पिङ्गल वर्णका वृषभ—पितरोंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला होता है, ऐसा कहा गया है॥ २४॥ जिस वृषभके पैर, मुख और पूँछ श्वेत हों तथा शेष शरीर लाखके समान वर्णका हो, वह नीलवृष कहा जाता है॥ २५॥ जो वृषभ रक्तवर्णका हो तथा जिसका मुख और पूँछ पाण्डुर वर्णका हो तथा खुर और सींग पिङ्गल वर्णके हों उसे रक्तनील वृष कहते हैं॥ २६॥ जिस साँडके समस्त अङ्ग एक रंगके हों और पूँछ तथा खुर पिङ्गलवर्णका हो, उसे नीलपिङ्ग कहा गया है, वह पूर्वजोंका उद्धार

करनेवाला होता है ॥ २७ ॥

पारावतसवर्णस्तु ललाटे तिलकान्वितः। तं बभ्रुनीलमित्याहुः पूर्णं सर्वाङ्गशोभनम्॥ २८ ॥
नीलः सर्वशरीरेषु रक्तश्च नयनद्वये। तमप्याहुर्महानीलं नीलः पञ्चविधः स्मृतः॥ २९ ॥

जो कबूतरके समान रंगवाला हो, जिसके ललाटपर तिलक-सी आकृति हो और सर्वाङ्ग सुन्दर हो, वह बभ्रुनील वृषभ कहा जाता है॥ २८॥ जिसका सम्पूर्ण शरीर नीलवर्णका हो और दोनों नेत्र रक्तवर्णके हों, उसे महानील वृषभ कहते हैं—इस प्रकार नीलवृषभ पाँच प्रकारके होते हैं॥ २९॥

अवश्यमेव मोक्तव्यो न स धार्यो गृहे भवेत्। तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी॥ ३० ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। गौरीं विवाहयेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ ३१ ॥
स एव पुत्रो मन्तव्यो वृषोत्सर्गं तु यश्चरेत्। गयायां श्राद्धदाता च योऽन्यो विष्ठासमः किल॥ ३२ ॥

(वृषका संस्कार करके) उसे अवश्य मुक्त कर देना चाहिये, घरमें नहीं रखना चाहिये। इसी विषयमें लोकमें एक पुरानी गाथा प्रचलित है— ॥ ३० ॥ बहुत-से पुत्रोंकी कामना करनी चाहिये; ताकि उनमेंसे कोई एक गया जाय अथवा गौरी[1] कन्याका विवाह (कन्यादान) करे या नील वृषका उत्सर्ग करे॥ ३१ ॥ जो पुत्र वृषोत्सर्ग करता है और गयामें श्राद्ध करता है वही पुत्र है, अन्य पुत्र विष्ठाके समान हैं॥ ३२ ॥

---

१. 'अष्टवर्षा भवेद्गौरी' —आठ वर्षकी कन्या 'गौरी' कहलाती है।

रौरवादिषु ये केचित् पच्यन्ते यस्य पूर्वजाः। वृषोत्सर्गेण तान् सर्वांस्तारयेदेकविंशतिम्॥ ३३॥

वृषोत्सर्गं किलेच्छन्ति पितरः स्वर्गता अपि। अस्मद्वंशे सुतः कोऽपि वृषोत्सर्गं करिष्यति॥ ३४॥
तदुत्सर्गाद्वयं सर्वे यास्यामः परमां गतिम्। सर्वयज्ञेषु चास्माकं वृषयज्ञो हि मुक्तिदः॥ ३५॥

जिसके जो कोई पूर्वज रौरव आदि नरकोंमें यातना पा रहे हों, इक्कीस पीढ़ीके पुरुषोंके सहित वृषोत्सर्ग करनेवाला पुत्र उनको तार देता है॥ ३३॥ स्वर्गमें गये हुए पितर भी इस प्रकार वृषोत्सर्गकी कामना करते हैं 'हमारे वंशमें कोई पुत्र होगा, जो वृषोत्सर्ग करेगा'। उसके द्वारा किये गये वृषोत्सर्गसे हम सब परम गतिको प्राप्त होंगे। हम लोगोंको सभी यज्ञोंमें श्रेष्ठ वृष-यज्ञ (वृषोत्सर्ग) मोक्ष देनेवाला हैं॥ ३४-३५॥

तस्मात् पितृविमुक्त्यर्थं वृषयज्ञं समाचरेत्। यथोक्तेन विधानेन कुर्यात् सर्वं प्रयत्नतः॥ ३६॥
ग्रहाणां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैश्च पूजनम्। होमं कुर्याद् यथाशास्त्रं पूजयेद्वृषमातरः॥ ३७॥
वत्सं वत्सीं समानाय्य बध्नीयात् कंकणं तयोः। वैवाह्येन विधानेन स्तम्भमारोपयेत् तदा॥ ३८॥

इसलिये पितरोंकी मुक्तिके लिये यथोक्त विधानसे सभी प्रयत्नपूर्वक वृषयज्ञ (वृषोत्सर्ग) करना चाहिये॥ ३६॥ (वृषोत्सर्ग करनेवाला) ग्रहोंकी तत्तद् मन्त्रोंसे स्थापना और पूजा करके होम करे तथा शास्त्रानुसार वृषभकी माता गौओंकी पूजा करे॥ ३७॥ बछड़ा और बछड़ीको ले जाकर उन्हें कङ्कण बाँधे और वैवाहिक विधानकी विधिके अनुसार स्तम्भमें उन्हें बाँध दे॥ ३८॥

स्नापयेच्च वृषं वत्सीं रुद्रकुम्भोदकेन च। गन्धमाल्यैश्च सम्पूज्य कारयेच्च प्रदक्षिणाम्॥ ३९॥
त्रिशूलं दक्षिणे पार्श्वे वामे चक्रं प्रदापयेत्। तं विमुच्याञ्जलिं बद्ध्वा पठेन्मन्त्रमिमं सुतः॥ ४०॥
धर्मस्त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा। तवोत्सर्गप्रदानेन तारयस्व भवार्णवात्॥ ४१॥

फिर बछड़ा और बछड़ीको रुद्रकुम्भके जलसे स्नान कराये, गन्ध और माल्यसे सम्यक् पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करे॥ ३९॥ तदनन्तर वृषके दक्षिणभागमें त्रिशूल और वामपार्श्वमें चक्र चिह्नित करे। तब उसे छोड़ते हुए हाथ जोड़कर पुत्र इस मन्त्रको पढ़े—॥ ४०॥ पूर्वकालमें ब्रह्माके द्वारा निर्मित तुम वृषरूपी धर्म हो, तुम्हारे उत्सर्ग करनेसे तुम भवार्णवसे पार लगाओ॥ ४१॥

इति मन्त्रान्नमस्कृत्य वत्सं वत्सीं समुत्सृजेत्। वरदोऽहं सदा तस्य प्रेतमोक्षं ददामि च॥ ४२॥
तस्मादेष प्रकर्तव्यस्तत्फलं जीवतो भवेत्। अपुत्रस्तु स्वयं कृत्वा सुखं याति परां गतिम्॥ ४३॥
कार्तिकादौ शुभे मासे चोत्तरायणगे रवौ। शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे द्वादश्यादि तिथौ तथा॥ ४४॥
ग्रहणद्वितये चैव पुण्यतीर्थेऽयनद्वये। विषुवद्द्वितये चापि वृषोत्सर्गं समाचरेत्॥ ४५॥

इस मन्त्रसे नमस्कार करके बछड़ा और बछड़ीको छोड़ दे। (भगवान् विष्णुने कहा—इस प्रकार जो वृषोत्सर्ग करता है) मैं सदा उसे वर प्रदान करता हूँ और प्रेतको मोक्ष प्रदान करता हूँ॥ ४२॥ अतः वृषोत्सर्गकर्म अवश्य करना चाहिये। (अपनी) जीवितावस्थामें भी वृषोत्सर्ग करनेपर वही फल प्राप्त होता है। पुत्रहीन मनुष्य तो स्वयं

(अपने उद्देश्यसे) वृषोत्सर्ग करके सुखपूर्वक परम गतिको प्राप्त करता है॥ ४३॥ कार्तिक आदि शुभ महीनोंमें, सूर्यके उत्तरायण होनेपर, शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्षकी द्वादशी आदि तिथियोंमें, सूर्य-चन्द्रके ग्रहण-कालमें, पवित्र तीर्थमें, दोनों अयन-संक्रान्तियों (मकर-कर्क)-में और विषुवत्-संक्रान्तियों (मेष-तुला)-में वृषोत्सर्ग करना चाहिये॥ ४४-४५॥

शुभे लग्ने मुहूर्ते च शुचौ देशे समाहितः। ब्राह्मणं तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम्॥ ४६॥
जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्याद्देहशोधनम्। पूर्ववत् सकलं कृत्यं कुर्याद्धोमादिलक्षणम्॥ ४७॥

शुभ लग्न और मुहूर्तमें पवित्र स्थानमें समाहितचित्त होकर विधि जाननेवाले शुभ लक्षणोंसे युक्त ब्राह्मणको बुलाकर जप-होम तथा दानसे अपनी देहको पवित्र करके पूर्वोक्त रीतिसे सभी होमादि कृत्योंका सम्पादन करना चाहिये॥ ४६-४७॥

शालग्रामं च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत्। आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद्दद्याद्दानं द्विजन्मने॥ ४८॥
एवं यः कुरुते पक्षिन्नपुत्रस्यापि पुत्रवान्। सर्वकामफलं तस्य वृषोत्सर्गात् प्रजायते॥ ४९॥
अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि। न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण यां लभेत्॥ ५०॥

शालग्रामकी स्थापना करके वैष्णवश्राद्ध करना चाहिये। तदनन्तर अपना श्राद्ध करे और ब्राह्मणोंको दान दे॥ ४८॥ हे पक्षिन्! अपुत्रवान् अथवा पुत्रवान् जो भी इस प्रकार वृषोत्सर्ग करता है, (उस वृषोत्सर्गसे) उसकी

सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ४९ ॥ अग्निहोत्रादि यज्ञोंसे और विविध दानोंसे भी वह गति नहीं होती जो वृषोत्सर्गसे प्राप्त होती है ॥ ५० ॥

बाल्ये कौमारे पौगण्डे यौवने वार्धके कृतम्। यत्पापं तद्विनश्येत वृषोत्सर्गान्न संशयः ॥ ५१ ॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च सुरापी गुरुतल्पगः। ब्रह्महा हेमहारी च वृषोत्सर्गात् प्रमुच्यते ॥ ५२ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत्। वृषोत्सर्गसमं पुण्यं नास्ति तार्क्ष्य जगत्त्रये ॥ ५३ ॥

बाल्यावस्था, कौमार, पौगण्ड, यौवन और वृद्धावस्थामें किया गया जो पाप है, वह सब वृषोत्सर्गसे नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ मित्रद्रोही, कृतघ्न, सुरापान करनेवाला, गुरुपत्नीगामी, ब्रह्महत्यारा और स्वर्णकी चोरी करनेवाला भी वृषोत्सर्गसे पापमुक्त हो जाता है (ये लोग महापापी कहे गये हैं) ॥ ५२ ॥ इसलिये हे तार्क्ष्य! सभी प्रयत्न करके वृषोत्सर्ग करना चाहिये। तीनों लोकमें वृषोत्सर्गके समान कोई पुण्यकार्य नहीं है ॥ ५३ ॥

पतिपुत्रवती नारी द्वयोरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं नैव कुर्याद्दद्याद् गां च पयस्विनीम् ॥ ५४ ॥
वृषभं वाहयेद्यस्तु स्कन्धे पृष्ठे च खेचर। स पतेन्नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ५५ ॥
वृषभं ताडयेद्यस्तु निर्दयो मुष्टियष्टिभिः। स नरः कल्पपर्यन्तं भुनक्ति यमयातनाम् ॥ ५६ ॥

पति और पुत्रवाली स्त्री यदि उन दोनोंके सामने मर जाय तो उसके उद्देश्यसे वृषोत्सर्ग नहीं करना चाहिये,

अपितु दूध देनेवाली गायका दान करना चाहिये॥ ५४॥ हे गरुड! जो व्यक्ति (वृषोत्सर्गवाले) वृषभको कन्धे अथवा पीठपर भार ढोनेके काममें प्रयोग करता है, वह प्रलयपर्यन्त घोर नरकमें निवास करता है॥ ५५॥ जो निर्दयी व्यक्ति मुट्ठी (मुक्के) अथवा लकड़ीसे वृषभको मारता है, वह एक कल्पतक यमयातनाको भोगता है॥ ५६॥

एवं कृत्वा वृषोत्सर्गं कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश। सपिण्डीकरणादर्वाक् तदहं कथयामि ते॥ ५७॥
स्थाने द्वारेऽर्धमार्गे च चितायां शवहस्तके। अस्थिसंचयने षष्ठो दश पिण्डा दशाह्निकाः॥ ५८॥
मलिनं षोडशं चैतत् प्रथमं परिकीर्तितम्। अन्यच्च षोडशं मध्ये द्वितीयं कथयामि ते॥ ५९॥

इस प्रकार वृषोत्सर्ग करके सपिण्डीकरणके पूर्व षोडश श्राद्धोंको करना चाहिये। वह मैं तुमसे कहता हूँ॥ ५७॥ मृतस्थानमें, द्वारपर, अर्धमार्गमें, चितामें, शवके हाथमें और अस्थिसञ्चयमें—इस प्रकार छः पिण्ड प्रदान करके दस दिनतक दशगात्रके (दस) पिण्डोंको देना चाहिये॥ ५८॥ यह प्रथम मलिनषोडशी श्राद्ध कहा जाता है और दूसरा मध्यमें किया जानेवाला मध्यमषोडशी कहा जाता है उसके विषयमें तुमसे कहता हूँ॥ ५९॥

प्रथमं विष्णवे दद्याद् द्वितीयं श्रीशिवाय च। याम्याय परिवाराय तृतीयं पिण्डमुत्सृजेत्॥ ६०॥
चतुर्थं सोमराजाय हव्यवाहाय पञ्चमम्। कव्यवाहाय षष्ठं च दद्यात् कालाय सप्तमम्॥ ६१॥
रुद्राय चाष्टमं दद्यान्नवमं पुरुषाय च। प्रेताय दशमं चैवैकादशं विष्णवे नमः॥ ६२॥
द्वादशं ब्रह्मणे दद्याद् विष्णवे च त्रयोदशम्। चतुर्दशं शिवायैव यमाय दशपञ्चकम्॥ ६३॥

दद्यात् तत्पुरुषायैव पिण्डं षोडशकं खग। मध्यं षोडशकं प्राहुरेतत् तत्त्वविदो जना:॥ ६४॥
द्वादश प्रतिमासेषु पाक्षिकं च त्रिपाक्षिकम्। न्यूनषाण्मासिकं पिण्डं दद्यान्न्यूनाब्दिकं तथा॥ ६५॥
उत्तमं षोडशं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्। श्रपयित्वा चरुं तार्क्ष्य कुर्यादेकादशेऽहनि॥ ६६॥

मध्यषोडशीमें (मलिनषोडशीकी भाँति ही सोलह पिण्ड होते हैं) पहला पिण्ड भगवान् विष्णुको, दूसरा शिव तथा तीसरा सपरिवार यमको प्रदान करे। चौथा पिण्ड सोमराज, पाँचवाँ हव्यवाह (हव्यको वहन करनेवाले अग्नि), छठा कव्यवाह (कव्य वहन करनेवाले अग्नि) तथा सातवाँ पिण्ड कालको प्रदान करे। आठवाँ पिण्ड रुद्रको, नवाँ पुरुषको, दसवाँ प्रेतको और ग्यारहवाँ पिण्ड विष्णुको प्रदान करे। बारहवाँ पिण्ड ब्रह्माको, तेरहवाँ विष्णुको, चौदहवाँ शिवको, पंद्रहवाँ यमको और सोलहवाँ पिण्ड तत्पुरुषके उद्देश्यसे देना चाहिये। हे खग! तत्त्वविद् लोग इसे मध्यमषोडशी कहते हैं॥ ६०—६४॥ तदनन्तर प्रतिमासके बारह, पाक्षिक, त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक—इन श्राद्धोंको उत्तमषोडशी कहा जाता है। इनके विषयमें मैंने तुम्हें बताया। हे तार्क्ष्य! इनको ग्यारहवें दिन चरु बनाकर करना चाहिये॥ ६५-६६॥

चत्वारिंशत् तथैवाष्टौ श्राद्धं प्रेतत्वनाशनम्। यस्य जातं विधानेन स भवेत् पितृपंक्तिभाक्॥ ६७॥
पितृपंक्तिप्रवेशार्थं कारयेत् षोडशत्रयम्। एतच्छ्राद्धविहीनश्चेत् प्रेतो भवति सुस्थिरम्॥ ६८॥
यावन्न दीयते श्राद्धं षोडशत्रयसंज्ञकम्। स्वदत्तं परदत्तं च तावन्नैवोपतिष्ठते॥ ६९॥

ये अड़तालीस श्राद्ध[1] प्रेतत्वको नष्ट करनेवाले हैं। जिस मृतकके उद्देश्यसे ये अड़तालीस श्राद्ध किये जाते हैं, वह पितरोंकी पंक्तिके योग्य हो जाता है॥ ६७॥ इसलिये पितरोंकी पंक्तिमें प्रवेश दिलानेके लिये षोडशत्रयी (मलिन, मध्यम तथा उत्तमषोडशी) करनी चाहिये। इन श्राद्धोंसे विहीन मृतकका प्रेतत्व सुस्थिर हो जाता है और जबतक षोडशत्रयसंज्ञक श्राद्ध नहीं किये जाते, तबतक वह प्रेत अपने द्वारा अथवा दूसरेके द्वारा दी गयी कोई वस्तु प्राप्त नहीं करता॥ ६८-६९॥

तस्मात् पुत्रेण कर्तव्यं विधिना षोडशत्रयम्। भर्तुर्वा कुरुते पत्नी तस्याः श्रेयो ह्यनन्तकम्॥ ७०॥
सम्परेतस्य या पत्युः कुरुते चौर्ध्वदैहिकम्। क्षयाहं पाक्षिकं श्राद्धं सा सतीत्युच्यते मया॥ ७१॥

इसलिये पुत्रको विधानपूर्वक षोडशत्रयीका अनुष्ठान करना चाहिये। पत्नी यदि अपने पतिके उद्देश्यसे इन श्राद्धोंको करती है तो उसे अनन्त श्रेयकी प्राप्ति होती है॥ ७०॥ जो स्त्री अपने मृत पतिकी और्ध्वदैहिक क्रिया—क्षयाह-श्राद्ध (वार्षिक श्राद्ध) तथा पाक्षिक श्राद्ध (महालय-श्राद्ध) करती है, वह मेरे द्वारा सती कही गयी है॥ ७१॥

उपकाराय सा भर्तुर्जीवत्येषा पतिव्रता। जीवितं सफलं तस्या या मृतं स्वामिनं भजेत्॥ ७२॥
अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियते वह्निवारिभिः। संस्कारप्रमुखं कर्म सर्वं कुर्याद्यथाविधि॥ ७३॥

---

१. मलिनषोडशीके सोलह, मध्यमषोडशीके सोलह तथा उत्तमषोडशीके सोलह—इन्हें मिलाकर ४८ श्राद्ध कहे जाते हैं।

प्रमादादिच्छया वापि नागाद्वा म्रियते यदि। पक्षयोरुभयोर्नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत्॥ ७४॥
कुर्यात् पिष्टमयीं लेख्यां नागभोगाकृतिं भुवि। अर्चयेत् तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश्चन्दनेन च॥ ७५॥

जो स्त्री पतिके उपकारार्थ पूर्वोक्त श्राद्धोंका अनुष्ठान करनेके लिये जीवन धारण करती है और मरे हुए अपने पतिकी श्राद्धादिरूपसे सेवा करती है, वह पतिव्रता है और उसका जीवन सफल है॥ ७२॥ यदि कोई प्रमादसे, आगसे जलकर अथवा जलमें डूबकर मरता है, उसके सभी संस्कार यथाविधि करने चाहिये। यदि प्रमादसे, स्वेच्छासे अथवा सर्पके द्वारा मृत्यु हो जाय तो दोनों पक्षोंकी पञ्चमी तिथिको नागकी पूजा करनी चाहिये॥ ७३-७४॥ पृथ्वीपर पीठीसे फणकी आकृतिवाले नागकी रचना करके श्वेत पुष्पों तथा सुगन्धित चन्दनसे उसकी पूजा करनी चाहिये॥ ७५॥

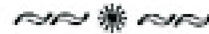
प्रदद्याद् धूपदीपौ च तण्डुलांश्च तिलान् क्षिपेत्। आमपिष्टं च नैवेद्यं क्षीरं च विनिवेदयेत्॥ ७६॥
सौवर्णं शक्तितो नागं गां च दद्याद् द्विजन्मने। कृताञ्जलिस्ततो ब्रूयात् प्रीयतां नागराडिति॥ ७७॥

धूप और दीप देना चाहिये तथा तण्डुल और तिल चढ़ाना चाहिये। कच्चे आटेका नैवेद्य और दूध अर्पित करना चाहिये॥ ७६॥ शक्तिके अनुसार सुवर्णका नाग और गौ ब्राह्मणको दान करना चाहिये। तदनन्तर हाथ जोड़ करके 'नागराज प्रसन्न हों'—इस प्रकार कहना चाहिये॥ ७७॥

पुनस्तेषां प्रकुर्वीत नारायणबलिं क्रियाम्। तया लभन्ते स्वर्वासं मुच्यन्ते सर्वपातकैः॥ ७८॥
एवं सर्वक्रियां कृत्वा घटं सान्नं जलान्वितम्। दद्यादाब्दं यथासंख्यान् पिण्डान् वा सजलान् क्रमात्॥ ७९॥

एवमेकादशे कृत्वा कुर्यात् सापिण्डनं ततः। शय्यापदानां दानं च कारयेत् सूतके गते॥ ८०॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे एकादशाहविधिनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥



पुनः उन जीवोंके उद्देश्यसे नारायणबलिकी क्रिया करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मृत व्यक्ति सभी पातकोंसे मुक्त हो स्वर्गको प्राप्त होते हैं॥ ७८॥ इस प्रकार सम्पूर्ण क्रिया करके एक वर्षतक अन्न और जलके सहित घटका दान करना चाहिये अथवा संख्यानुसार जलके सहित पिण्डदान करना चाहिये॥ ७९॥ इस प्रकार ग्यारहवें दिन श्राद्ध करके सपिण्डीकरण करना चाहिये और सूतक बीत जानेपर शय्यादान और पददान करना चाहिये॥ ८०॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'एकादशाहविधिनिरूपण' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥



तेरहवाँ अध्याय

अशौचकालका निर्णय, अशौचमें निषिद्ध कर्म, सपिण्डीकरणश्राद्ध, पिण्डमेलनकी प्रक्रिया, शय्यादान, पददान तथा गयाश्राद्धकी महिमा

गरुड उवाच

सपिण्डनविधिं ब्रूहि सूतकस्य च निर्णयम्। शय्यापदानां सामग्रीं तेषां च महिमां प्रभो॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे प्रभो! सपिण्डनकी विधि, सूतकका निर्णय और शय्यादान तथा पददानकी सामग्री एवं उनकी महिमाके विषयमें कहिये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि सापिण्ड्याद्यखिलां क्रियाम्। प्रेतनाम परित्यज्य यया पितृगणे विशेत्॥ २ ॥
न पिण्डो मिलितो ह्येषां पितामहशिवादिषु। नोपतिष्ठन्ति दानानि पुत्रैर्दत्तान्यनेकधा॥ ३ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे तार्क्ष्य! सपिण्डीकरण आदि सम्पूर्ण क्रियाओंके विषयमें बतलाता हूँ, जिसके द्वारा मृत प्राणी प्रेत नामको छोड़कर पितृगणमें प्रवेश करता है, उसे सुनो॥ २॥ जिनका पिण्ड रुद्रस्वरूप पितामह आदिके पिण्डोंमें नहीं मिला दिया जाता, उनको पुत्रोंके द्वारा दिये गये अनेक प्रकारके दान प्राप्त नहीं होते॥ ३॥

अशुद्धः स्यात्सदा पुत्रो न शुद्ध्यति कदाचन। सूतकं न निवर्तेत सपिण्डीकरणं विना॥ ४ ॥

तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं सूतकान्ते सपिण्डनम्। सूतकान्तं प्रवक्ष्यामि सर्वेषां च यथोचितम्॥ ५ ॥
ब्राह्मणस्तु दशाहेन क्षत्रियो द्वादशेऽहनि। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥ ६ ॥
दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके। त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः॥ ७ ॥
चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशाः पुंसि पञ्चमे। षष्ठे चतुरहः प्रोक्तं सप्तमे च दिनत्रयम्॥ ८ ॥
अष्टमे दिनमेकं तु नवमे प्रहरद्वयम्। दशमे स्नानमात्रं हि मृतकं जन्मसूतकम्॥ ९ ॥

उनका पुत्र भी सदा अशुद्ध रहता है कभी शुद्ध नहीं होता; क्योंकि सपिण्डीकरणके बिना सूतककी निवृत्ति (समाप्ति) नहीं होती॥ ४॥ इसलिये पुत्रके द्वारा सूतकके अन्तमें सपिण्डन किया जाना चाहिये। मैं सभीके लिये सूतकान्त (सूतक-समाप्ति)-का यथोचित काल कहूँगा॥ ५॥ ब्राह्मण दस दिनमें, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिन और शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है॥ ६॥ प्रेतसम्बन्धी सूतक (मृताशौच)-में सपिण्डी दस दिनमें शुद्ध होते हैं। सकुल्या (कुलके लोग) तीन रातमें शुद्ध होते हैं और गोत्रज स्नानमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ७॥ चौथी पीढ़ीतकके बान्धव दस रातमें, पाँचवी पीढ़ीके लोग छः रातमें, छठी पीढ़ीके चार दिनमें और सातवीं पीढ़ीके तीन दिनमें, आठवीं पीढ़ीके एक दिनमें, नवीं पीढ़ीके दो प्रहरमें तथा दसवीं पीढ़ीके लोग स्नानमात्रसे मरणाशौच और जननाशौचसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ८-९॥

देशान्तरगतः कश्चिच्छृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्। यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्॥ १०॥

अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्राद्विशुद्ध्यति॥ ११॥

देशान्तरमें गया हुआ कोई व्यक्ति अपने कुलके जननाशौच या मरणाशौचके विषयका समाचार दस दिनके अंदर सुनता है तो दस रात्रि बीतनेमें जितना समय शेष रहता है, उतने समयके लिये उसे अशौच होता है॥ १०॥ दस दिन बीत जानेके बाद (और एक वर्षके पहलेतक ऐसा समाचार मिलनेपर) तीन राततक अशौच रहता है। संवत्सर (एक वर्ष) बीत जानेपर (समाचार मिले) तो स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है॥ ११॥

आद्यभागद्वयं यावन्मृतकस्य च सूतके। द्वितीये पतिते चाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते॥ १२॥
आदन्तजननात्सद्य आचौलान्नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद् दशरात्रमतः परम्॥ १३॥
आजन्मनस्तु चौलान्तं यत्र कन्या विपद्यते। सद्यः शौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः॥ १४॥

मरणाशौचके आदिके दो भागोंके बीतनेके पूर्व (अर्थात् छः दिनतक) यदि कोई दूसरा अशौच आ पड़े तो आद्य अशौचकी निवृत्तिके साथ ही दूसरे अशौचकी भी निवृत्ति (शुद्धि) हो जाती है॥ १२॥ (किसी बालककी) दाँत निकलनेतक (दाँत निकलनेसे पूर्व) मृत्यु होनेपर सद्यः (अर्थात् उसके अन्तिम संस्कारके बाद स्नान करनेपर), चूडाकरण (मुण्डन)-के हो जानेपर एक रात, व्रतबन्ध होनेपर तीन रात और व्रतबन्धके पश्चात् मृत्यु होनेपर दस रातका अशौच होता है॥ १३॥ जब किसी भी वर्णकी कन्याकी मृत्यु जन्मसे लेकर सताईस मासकी

अवस्थातक हो जाय तो सभी वर्णोंमें समानरूपसे सद्यः अशौचकी निवृत्ति हो जाती है॥ १४॥

ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि। अतः परं प्रवृद्धानां त्रिरात्रमिति निश्चयः॥ १५॥
वाक्प्रदाने कृते त्वत्र ज्ञेयं चोभयतस्त्र्यहम्। पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि॥ १६॥
षण्मासाभ्यन्तरे यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥ १७॥

इसके बाद वाग्दानपर्यन्त एक दिनका और इसके बाद अथवा बिना वाग्दानके भी सयानी कन्याओंकी मृत्यु होनेपर तीन रात्रिका अशौच होता है, यह निश्चित है। वाग्दानके अनन्तर कन्याकी मृत्यु होनेपर पितृकुल और वरकुल दोनोंको तीन दिनका तथा कन्यादान हो जानेपर केवल पतिके ही कुलमें अशौच होता है॥ १५-१६॥ छः मासके अंदर गर्भस्राव हो जानेपर जितने माहका गर्भ होता है, उतने ही दिनोंमें शुद्धि होती है॥ १७॥

अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमाशौचं तासु विद्यते। सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति॥ १८॥
सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेऽपि वा। दशाहाच्छुद्धिरित्येष कलौ शास्त्रस्य निश्चयः॥ १९॥
आशीर्वादं देवपूजां प्रत्युत्थानाभिवन्दनम्। पर्यङ्के शयनं स्पर्शं न कुर्यान्मृतसूतके॥ २०॥

इसके बाद अर्थात् छः माहके बाद गर्भस्राव हो तो उस स्त्रीको अपनी जातिके अनुरूप अशौच होता है। गर्भपात होनेपर सपिण्डकी सद्यः (स्नानोत्तर) शुद्धि हो जाती है॥ १८॥ कलियुगमें जननाशौच और मरणाशौचसे सभी वर्णोंकी दस दिनमें शुद्धि हो जाती है, ऐसा शास्त्रका निर्णय है॥ १९॥ मरणाशौचमें आशीर्वाद,

देवपूजा, प्रत्युत्थान (आगन्तुकके स्वागतार्थ उठना), अभिवादन, पलंगपर शयन अथवा किसी अन्यका स्पर्श नहीं करना चाहिये॥ २०॥

सन्ध्यां दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्। ब्रह्मभोज्यं व्रतं नैव कर्तव्यं मृतसूतके॥ २१॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सूतके यः समाचरेत्। तस्य पूर्वकृतं नित्यादिकं कर्म विनश्यति॥ २२॥
व्रतिनो मन्त्रपूतस्य साग्निकस्य द्विजस्य च। ब्रह्मनिष्ठस्य यतिनो न हि राज्ञां च सूतकम्॥ २३॥

(इसी प्रकार) मरणाशौचमें संध्या,[1] दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, ब्राह्मणभोजन एवं व्रत[2] नहीं करना

---

१. अशौचमें सामान्यरूपसे सन्ध्याका निषेध होनेपर भी सन्ध्यावन्दनकर्म नित्यकर्म होनेके कारण अशौचकालमें भी निम्न श्लोकके अनुसार करनेका विधान है—

संध्यामिष्टिं च होमं च यावज्जीवं समाचरेत्। न त्यजेत् सूतके वापि त्यजन् गच्छत्यधोगतिम्॥ (महर्षि पुलस्त्य)

सामान्यरूपसे कुश और जलका प्रयोग नहीं होता। अमन्त्रक प्राणायाम करे। मार्जन-मन्त्रोंका मनसे उच्चारण करे, गायत्रीका उच्चारण कर सूर्यार्घ्य दे।

सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम्। तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत्।
गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्। मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि॥

(भारद्वाज आचारभूषण १०३—१०४)

२. यद्यपि अशौचावस्थामें व्रतका निषेध है, परंतु एकादशी तथा प्रदोष आदि व्रतोंमें अन्न ग्रहण करना उचित नहीं है।

चाहिये॥ २१॥ जो व्यक्ति सूतकमें नित्य-नैमित्तिक अथवा काम्य कर्म करता है, उसके द्वारा पहले किये गये नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म विनष्ट हो जाते हैं॥ २२॥ व्रती (ब्रह्मचारी), मन्त्रपूत, अग्निहोत्री ब्राह्मण, ब्रह्मनिष्ठ, यती और राजा—इन्हें सूतक नहीं लगता॥ २३॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु जाते च मृतसूतके। तस्य पूर्वकृतं चान्नं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत्॥ २४॥
सूतके यस्तु गृह्णाति तदज्ञानान्न दोषभाक्। दाता दोषमवाप्नोति याचकाय ददन्नपि॥ २५॥
प्रच्छाद्य सूतकं यस्तु ददात्यन्नं द्विजाय च। ज्ञात्वा गृह्णन्ति ये विप्रा दोषभाजस्तु एव हि॥ २६॥

विवाह, उत्सव अथवा यज्ञमें मरणाशौच हो जानेपर उस अशौचकी प्रवृत्तिके पूर्व बनाया हुआ अन्न भोजन करने योग्य होता है—ऐसा मनुने कहा है॥ २४॥ सूतक न जाननेके कारण जो व्यक्ति सूतकवाले घरसे अन्नादि कुछ ग्रहण करता है, वह दोषी नहीं होता, किंतु याचकको देनेवाला दाता दोषका भागी होता है॥ २५॥ जो सूतकको छिपाकर ब्राह्मणको अन्न देता है, वह दाता तथा सूतकको जानकर भी जो ब्राह्मण सूतकान्नका भोजन करता है, वे दोनों ही दोषी होते हैं॥ २६॥

तस्मात् सूतकशुद्ध्यर्थं पितुः कुर्यात्सपिण्डनम्। ततः पितृगणैः सार्धं पितृलोकं स गच्छति॥ २७॥
द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा। सपिण्डीकरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ २८॥
मया तु प्रोच्यते तार्क्ष्य शास्त्रधर्मानुसारतः। चतुर्णामेव वर्णानां द्वादशाहे सपिण्डनम्॥ २९॥

इसलिये सूतकसे शुद्धि प्राप्त करनेके लिये पिताका सपिण्डन-श्राद्ध करना चाहिये। तभी वह मृतक पितृगणोंके साथ पितृलोकमें जाता है॥ २७॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने बारहवें दिन, तीन पक्षमें, छः मासमें अथवा एक वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरण कहा है॥ २८॥ हे तार्क्ष्य! मैं तो शास्त्रधर्मके अनुसार चारों वर्णोंके लिये बारहवें दिन ही सपिण्डीकरण करनेके लिये कहता हूँ॥ २९॥

अनित्यत्वात्कलिधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्। अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहे प्रशस्यते॥ ३०॥
व्रतबन्धोत्सवादीनि व्रतस्योद्यापनानि च। विवाहादि भवेन्नैव मृते च गृहमेधिनि॥ ३१॥
भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णाति हन्तकारो न गृह्यते। नित्यं नैमित्तिकं लुप्येद्यावत्पिण्डो न मेलितः॥ ३२॥

कलियुगमें धार्मिक भावनाके अनित्य होनेसे, पुरुषोंकी आयु क्षीण होनेसे और शरीरकी अस्थिरताके कारण बारहवें दिन ही सपिण्डीकरण कर लेना प्रशस्त है॥ ३०॥ गृहस्थके मरनेपर व्रतबन्ध, उत्सव आदि, व्रत, उद्यापन तथा विवाहादि कृत्य नहीं होते॥ ३१॥ जबतक पिण्डमेलन नहीं होता (अर्थात् पितरोंमें पिण्ड मिला नहीं दिया जाता या सपिण्डीकरण-श्राद्ध नहीं हो जाता) तबतक उसके यहाँसे भिक्षु भिक्षा भी नहीं ग्रहण करता, अतिथि उसके यहाँ सत्कार नहीं ग्रहण करता और नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका भी लोप रहता है॥ ३२॥

कर्मलोपात् प्रत्यवायी भवेत्तस्मात्सपिण्डनम्। निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे समाचरेत्॥ ३३॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति द्वादशाहे सपिण्डनात्॥ ३४॥

अतः स्नात्वा मृतस्थाने गोमयेनोपलेपिते। शास्त्रोक्तेन विधानेन सपिण्डीं कारयेत् सुतः॥ ३५॥

कर्मका लोप होनेसे दोषका भागी होना पड़ता है, इसलिये चाहे निरग्निक हो या साग्निक (अग्निहोत्री) बारहवें दिन सपिण्डन कर देना चाहिये॥ ३३॥ सभी तीर्थोंमें स्नान आदि करने और सभी यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल बारहवें दिन सपिण्डन करनेसे प्राप्त होता है॥ ३४॥ अतः स्नान करके मृतस्थानमें गोमयसे लेपन करके पुत्रको शास्त्रोक्तविधिसे सपिण्डन-श्राद्ध करना चाहिये॥ ३५॥

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैर्विश्वेदेवांश्च पूजयेत्। कुपित्रे विकिरं दत्त्वा पुनराप उपस्पृशेत्॥ ३६॥
दद्यात्पितामहादीनां त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम्। वसुरुद्रार्करूपाणां चतुर्थं मृतकस्य च॥ ३७॥
चन्दनैस्तुलसीपत्रैर्धूपैर्दीपैः सुभोजनैः। मुखवासैः सुवस्त्रैश्च दक्षिणाभिश्च पूजयेत्॥ ३८॥

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदिसे विश्वेदेवोंका पूजन करे और असद्गतिके पितरोंके लिये भूमिमें विकिर देकर हाथ-पाँव धोकर पुनः आचमन करे॥ ३६॥ तब वसु, रुद्र और आदित्यस्वरूप पिता, पितामह तथा प्रपितामहको क्रमशः एक-एक अर्थात् तीन पिण्ड प्रदान करे और चौथा पिण्ड मृतकको प्रदान करे॥ ३७॥ चन्दन, तुलसीपत्र, धूप-दीप, सुन्दर भोजन, ताम्बूल, सुन्दर वस्त्र तथा दक्षिणा आदिसे पूजन करे॥ ३८॥

प्रेतपिण्डं त्रिधा कृत्वा सुवर्णस्य शलाकया। पितामहादिपिण्डेषु मेलयेत्तं पृथक्पृथक्॥ ३९॥
पितामह्या समं मातुः पितामहसमं पितुः। सपिण्डीकरणं कुर्यादिति तार्क्ष्य मतं मम॥ ४०॥

तदनन्तर सुवर्णकी शलाकासे प्रेतके पिण्डको तीन भागोंमें विभक्त करके पितामह आदिके पिण्डोंमें पृथक्-पृथक् उसका मेलन करे। अर्थात् एक भाग पितामहके पिण्डमें, दूसरा भाग प्रपितामहके पिण्डमें तथा तीसरा भाग वृद्धप्रपितामहके पिण्डमें मिलाये॥ ३९॥ हे तार्क्ष्य! मेरा मत है कि माताके पिण्डका मेलन पितामही आदिके पिण्डके साथ और पिताके पिण्डका मेलन पितामह आदिके पिण्डके साथ करके सपिण्डीकरण-श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये॥ ४०॥

मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः। तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः॥ ४१॥
तेभ्यश्च पैतृकं पिण्डं मेलयेत्तं त्रिधा कृतम्। मातर्यग्रे प्रशान्तायां विद्यते च पितामही॥ ४२॥
तदा मातृकश्राद्धेऽपि कुर्यात्पैतृकवद्विधिः। यद्वा मयि महालक्ष्म्यां तयोः पिण्डं च मेलयेत्॥ ४३॥
अपुत्रायाः स्त्रियाः कुर्यात्पतिः सापिण्डनादिकम्। श्वश्र्वादिभिः सहैवाऽस्याः सपिण्डीकरणं भवेत्॥ ४४॥
भर्त्रादिभिस्त्रिभिः कार्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। नैतन्मम मतं तार्क्ष्य पत्या सापिण्ड्यमर्हति॥ ४५॥
एकां चितां समारूढौ दम्पती यदि काश्यप। तृणमन्तरतः कृत्वा श्वशुरादेस्तदाचरेत्॥ ४६॥

जिसके पिताकी मृत्यु हो गयी हो और पितामह जीवित हों, उसे प्रपितामहादि पूर्व पुरुषोंको तीन पिण्ड प्रदान करना चाहिये और पितृपिण्डको तीन भागोंमें विभक्त करके (प्रपितामह आदि) उन्हींके साथ मेलन करे। माताकी मृत्यु हो जानेपर पितामही जीवित हो तो माताके सपिण्डन-श्राद्धमें भी पितृ-सपिण्डनकी भाँति प्रपितामही

आदिमें मातृपिण्डका मेलन करना चाहिये अथवा पितृपिण्डको मेरे पिण्ड (विष्णुजीके)-में और मातृपिण्डको महालक्ष्मीपिण्डमें मिलाये ॥ ४१—४३ ॥ पुत्रहीन स्त्रीका सपिण्डनादि श्राद्ध उसके पतिको करना चाहिये और उसका सपिण्डीकरण उसकी सास आदिके साथ होना चाहिये ॥ ४४ ॥ (एक मतानुसार) विधवा स्त्रीका सपिण्डीकरण पति, श्वशुर और वृद्ध श्वशुरके साथ करना चाहिये, हे तार्क्ष्य! यह मेरा मत नहीं है। विधवा स्त्रीका सपिण्डन पतिके साथ होनेयोग्य है ॥ ४५ ॥ हे काश्यप! यदि पति और पत्नी एक ही चितापर आरूढ़ हुए हों तो तृणको बीचमें रखकर श्वशुरादिके पिण्डके साथ स्त्रीके पिण्डका मेलन करना चाहिये ॥ ४६ ॥

एक एव सुतः कुर्यादादौ पिण्डादिकं पितुः। तदूर्ध्वं च प्रकुर्वीत सत्याः स्नानं पुनश्चरेत् ॥ ४७ ॥
हुताशं या समारूढा दशाहाभ्यन्तरे सती। तस्या भर्तुर्दिने कार्यं शय्यादानं सपिण्डनम् ॥ ४८ ॥
कृत्वा सपिण्डनं तार्क्ष्य प्रकुर्यात्पितृतर्पणम्। उदाहरेत्स्वधाकारं वेदमन्त्रैः समन्वितम् ॥ ४९ ॥

एक चितापर (माता-पिताका) दाहसंस्कार किये जानेपर एक ही पुत्र पहले पिताके उद्देश्यसे पिण्डदान करके स्नान करे, तदनन्तर (अपनी) सती माताका पिण्डदान करके पुनः स्नान करे ॥ ४७ ॥ यदि दस दिनके अन्तर्गत किसी सतीने अग्निप्रवेश किया है तो उसका शय्यादान और सपिण्डन आदि कृत्य उसी दिन करना चाहिये, जिस दिन पतिका किया जाय ॥ ४८ ॥ हे गरुड! सपिण्डीकरण करनेके अनन्तर पितरोंका तर्पण करे और इस क्रियामें वेदमन्त्रोंसे समन्वित स्वधाकारका उच्चारण करे ॥ ४९ ॥

अतिथिं भोजयेत्पश्चाद्धन्तकारं च सर्वदा। तेन तृप्यन्ति पितरो मुनयो देवदानवाः॥ ५०॥
ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा चतुर्ग्रासं तु पुष्कलम्। पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते॥ ५१॥
सपिण्ड्यां विप्रचरणौ पूजयेच्चन्दनाक्षतैः। दानं तस्मै प्रदातव्यमक्षय्यतृप्तिहेतवे॥ ५२॥

इसके पश्चात् अतिथिको भोजन कराये और हन्तकार प्रदान करे। ऐसा करनेसे पितर, मुनिगण, देवता तथा दानव तृप्त होते हैं॥ ५०॥ भिक्षा एक ग्रासके बराबर होती है, पुष्कल चार ग्रासके बराबर होता है और चार पुष्कलों (सोलह ग्रास)-का एक हन्तकार होता है॥ ५१॥ सपिण्डीकरणमें ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा चन्दन-अक्षतसे करनी चाहिये और पितरोंकी अक्षयतृप्तिके लिये ब्राह्मणको दान देना चाहिये॥ ५२॥

वर्षवृत्तिं घृतं चान्नं सुवर्णं रजतं सुगाम्। अश्वं गजं रथं भूमिमाचार्याय प्रदापयेत्॥ ५३॥
ततश्च पूजयेन्मन्त्रैः स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। कुङ्कुमाक्षतनैवेद्यैर्ग्रहान्देवीं विनायकम्॥ ५४॥
आचार्यस्तु ततः कुर्यादभिषेकं समन्त्रकम्। बद्ध्वा सूत्रं करे दद्यान्मन्त्रपूतांस्तथाक्षतान्॥ ५५॥

वर्षभर जीविकाका निर्वाह करनेयोग्य घृत, अन्न, सुवर्ण, रजत, सुन्दर गौ, अश्व, गज, रथ और भूमिका आचार्यको दान करना चाहिये॥ ५३॥ इसके बाद स्वस्तिवाचनपूर्वक मन्त्रोंसे कुङ्कुम, अक्षत और नैवेद्यादिके द्वारा ग्रहों, देवी और विनायककी पूजा करनी चाहिये॥ ५४॥ इसके बाद आचार्य मन्त्रोच्चारण करते हुए (यजमानका) अभिषेक करे और हाथमें रक्षासूत्र बाँधकर मन्त्रसे पवित्र अक्षत प्रदान करे॥ ५५॥

ततश्च भोजयेद्विप्रान्मिष्टान्नैर्विविधैः शुभैः। दद्यात्सदक्षिणां तेभ्यः सजलान्नान् द्विषड्घटान्॥ ५६॥

वार्यायुधप्रतोदस्तु दण्डस्तु द्विजभोजनात्। स्पृष्टव्याश्च ततो वर्णैः शुध्येरन् ते ततः क्रमात्॥ ५७॥
एवं सपिण्डनं कृत्वा क्रियावस्त्राणि सन्त्यजेत्। शुक्लाम्बरधरो भूत्वा शय्यादानं प्रदापयेत्॥ ५८॥

तदनन्तर विविध प्रकारके सुस्वादु मिष्टान्नोंसे ब्राह्मणोंको भोजन कराये और फिर दक्षिणासहित अन्न एवं जलयुक्त बारह घट प्रदान करे॥ ५६॥ तदनन्तर ब्राह्मणादिको वर्णक्रमसे (अपनी शुद्धिहेतु) क्रमशः जल, शस्त्र, कोड़े और डण्डेका स्पर्श करना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण जलका, क्षत्रिय शस्त्रका, वैश्य कोड़ेका तथा शूद्र डण्डेका स्पर्श करे। ऐसा करनेसे वे शुद्ध हो जाते हैं॥ ५७॥ इस प्रकार सपिण्डन-श्राद्ध करके क्रिया करते समय पहने गये वस्त्रोंका त्याग कर दे। इसके बाद श्वेतवर्णके वस्त्रको धारण करके शय्यादान करे॥ ५८॥

शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वे देवाः सवासवाः। तस्माच्छय्या प्रदातव्या मरणे जीवितेऽपि वा॥ ५९॥
सारदारुमयीं रम्यां सुचित्रैश्चित्रितां दृढाम्। पट्टसूत्रैर्विततितां हेमपत्रैरलंकृताम्॥ ६०॥
हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षोपधानिकाम्। प्रच्छादनपटीयुक्तां पुष्पगन्धैः सुवासिताम्॥ ६१॥
दिव्यबन्धैः सुबद्धां च सुविशालां सुखप्रदाम्। शय्यामेवं विधां कृत्वा ह्यास्तृतायां न्यसेद्भुवि॥ ६२॥
छत्रं दीपालयं रौप्यं चामरासनभाजनम्। भृङ्गारं करकादर्श पञ्चवर्णवितानकम्॥ ६३॥
शयनस्य भवेत् किञ्चिद्यच्चान्यदुपकारकम्। तत्सर्वं परितस्तस्याः स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत्॥ ६४॥

तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम्। सर्वाभरणसंयुक्तमायुधाम्बरसंयुतम् ॥ ६५ ॥

इन्द्रसहित सभी देवता शय्यादानकी प्रशंसा करते हैं, अतः मृतकके उद्देश्यसे उसकी मृत्युके बाद अथवा जीवन-कालमें भी शय्या प्रदान करनी चाहिये ॥ ५९ ॥ शय्या सुदृढ़ काष्ठकी सुन्दर एवं विचित्र चित्रोंसे चित्रित, दृढ़, रेशमी सूत्रोंसे बिनी हुई तथा स्वर्णपत्रोंसे अलङ्कृत हो ॥ ६० ॥ श्वेत रूईके गद्दे, सुन्दर तकिये तथा चादरसे युक्त हो एवं पुष्प, गन्ध आदि द्रव्योंसे सुवासित हो ॥ ६१ ॥ वह सुन्दर बन्धनोंसे भलीभाँति बँधी हुई हो और पर्याप्त विशाल हो तथा सुख प्रदान करनेवाली हो—ऐसी शय्याको बनाकर आस्तरणयुक्त (कुश या दरी-चादरयुक्त) भूमिपर रखे ॥ ६२ ॥ उस शय्याके चारों ओर छाता, चाँदीका दीपालय, चँवर, आसन और पात्र, भृङ्गार (झारी या कलश), करक (गडुआ), दर्पण, पाँच रंगोंवाला चँदवा तथा शयनोपयोगी और सभी सामग्रियोंको यथास्थान स्थापित करे ॥ ६३-६४ ॥ उस शय्याके ऊपर सभी प्रकारके आभूषण, आयुध तथा वस्त्रसे युक्त स्वर्णकी श्रीलक्ष्मी-नारायणकी मूर्ति स्थापित करे ॥ ६५ ॥

स्त्रीणां च शयने धृत्वा कज्जलालक्तकुङ्कुमम्। वस्त्रं भूषादिकं यच्च सर्वमेव प्रदापयेत् ॥ ६६ ॥
ततो विप्रं सपत्नीकं गन्धपुष्पैरलङ्कृतम्। कर्णाङ्गुलीयाभरणैः कण्ठसूत्रैश्च काञ्चनैः ॥ ६७ ॥
उष्णीषमुत्तरीयं च चोलकं परिधाय च। स्थापयेत् सुखशय्यायां लक्ष्मीनारायणाग्रतः ॥ ६८ ॥

सौभाग्यवती स्त्रीके लिये दी जानेवाली शय्याके साथ पूर्वोक्त वस्तुओंके अतिरिक्त कज्जल, महावर, कुङ्कुम, स्त्रियोचित वस्त्र, आभूषण तथा सौभाग्य-द्रव्य आदि सब कुछ प्रदान करे ॥ ६६ ॥ तदनन्तर सपत्नीक

ब्राह्मणको गन्ध-पुष्पादिसे अलङ्कृत करके ब्राह्मणीको कर्णाभरण, अङ्गुलीयक (अँगूठी) और सोनेके कण्ठसूत्रसे विभूषित करे॥ ६७॥ उसके बाद ब्राह्मणको साफा, दुपट्टा और कुर्ता पहनाकर श्रीलक्ष्मी-नारायण (मूर्ति)-के आगे सुखशय्यापर बैठाये॥ ६८॥

कुङ्कुमैः पुष्पमालाभिर्हरिं लक्ष्मीं समर्चयेत्। पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहान् देवीं विनायकम्॥ ६९॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम्। उच्चारयेदिमं मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः॥ ७०॥
यथा कृष्ण त्वदीयास्ति शय्या क्षीरोदसागरे। तथा भूयादशून्येयं मम जन्मनि जन्मनि॥ ७१॥

कुङ्कुम और पुष्पमाला आदिसे श्रीलक्ष्मी-नारायणकी भलीभाँति पूजा करे। तदनन्तर लोकपाल, नवग्रह, देवी और विनायककी पूजा करे॥ ६९॥ उत्तराभिमुख होकर अञ्जलिमें पुष्प लेकर ब्राह्मणके सामने स्थित होकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—॥ ७०॥ हे कृष्ण! जैसे क्षीरसागरमें आपकी शय्या है, वैसे ही जन्म-जन्मान्तरमें भी मेरी शय्या सूनी न हो॥ ७१॥

एवं पुष्पाञ्जलिं विप्रे प्रतिमायां हरेः क्षिपेत्। ततः सोपस्करं शय्यादानं संकल्पपूर्वकम्॥ ७२॥
दद्याद् व्रतोपदेष्ट्रे च गुरवे ब्रह्मवादिने। गृहाण ब्राह्मणैनां त्वं कोऽदादिति कीर्तयन्॥ ७३॥
आन्दोलयेद्द्विजं लक्ष्मीं हरिं च शयने स्थितम्। ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥ ७४॥

इस प्रकार प्रार्थना करके विप्र और श्रीलक्ष्मी-नारायणको पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर सङ्कल्पपूर्वक उपस्कर (सभी

सामग्रियों)-के साथ व्रतोपदेशक, ब्रह्मवादी गुरुको शय्याका दान दे और कहे—'हे ब्राह्मण! इस शय्याको ग्रहण करो'—ब्राह्मण '**कोऽदात्०**'[१] यह मन्त्र कहते हुए ग्रहण करे॥ ७२-७३॥ इसके बाद शय्यापर स्थित ब्राह्मणको, लक्ष्मी और नारायणकी प्रतिमाको हिलाये, तदनन्तर प्रदक्षिणा और प्रणाम करके उन्हें विसर्जित करे॥ ७४॥

सर्वोपस्करणैर्युक्तं प्रदद्यादतिसुन्दरम्। शय्यायां सुखसुप्त्यर्थं गृहं च विभवे सति॥ ७५॥
जीवमानः स्वहस्तेन यदि शय्यां ददाति यः। स जीवंश्च वृषोत्सर्गं पर्वणीषु समाचरेत्॥ ७६॥
इयमेकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन। सा विभक्ता च विक्रीता दातारं पातयत्यधः॥ ७७॥

यदि पर्याप्त विभव (धन-सम्पत्ति) हो तो शय्यामें सुखपूर्वक शयन करनेके लिये सभी प्रकारके उपकरणोंसे युक्त अत्यन्त सुन्दर गृहदान (घरका दान) भी करे॥ ७५॥ जो जीवितावस्थामें अपने हाथसे शय्यादान करता है, वह जीते हुए ही पर्वकालमें वृषोत्सर्ग भी करे॥ ७६॥ एक शय्या एक ही ब्राह्मणको देनी चाहिये। बहुत ब्राह्मणोंको एक शय्या कदापि नहीं देनी चाहिये। यदि वह शय्या विभक्त अथवा विक्रय करनेके लिये दी जाती है तो वह दाताके अधःपतनका कारण बनती है॥ ७७॥

पात्रे प्रदाय शयनं वाञ्छितं फलमाप्नुयात्। पिता च दाता तनयः परत्रेह च मोदते॥ ७८॥
पुरन्दरगृहे दिव्ये सूर्यपुत्रालयेऽपि च। उपतिष्ठेन्न सन्देहः शय्यादानप्रभावतः॥ ७९॥

१. कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्। कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥ (यजु० ७। ४८)

विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः। आभूतसम्प्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः॥ ८०॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वपर्वदिनेषु च। तेभ्यश्चाप्यधिकं पुण्यं शय्यादानोद्भवं भवेत्॥ ८१॥
एवं दत्त्वा सुतः शय्यां पददानं प्रदापयेत्। तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत् कथयामि ते॥ ८२॥
छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः। आसनं पञ्चपात्राणि पदं सप्तविधं स्मृतम्॥ ८३॥

सत्पात्रमें शय्यादान करनेसे वाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है और पिता तथा दान देनेवाला पुत्र—दोनों इस लोक और परलोकमें मुदित (सुखी) होते हैं॥ ७८॥ शय्यादानके प्रतापसे दाता दिव्य इन्द्रलोकमें अथवा सूर्यपुत्र यमके लोकमें पहुँचता है, इसमें संशय नहीं॥ ७९॥ श्रेष्ठ विमानपर आरूढ होकर अप्सरागणोंसे सेवित दाता प्रलयपर्यन्त आतङ्करहित होकर स्वर्गमें स्थित रहता है॥ ८०॥ सभी तीर्थोंमें तथा सभी पर्वदिनोंमें जो भी पुण्यकार्य किये जाते हैं, उन सभीसे अधिक पुण्य शय्यादानके द्वारा प्राप्त होता है॥ ८१॥ इस प्रकार पुत्रको शय्यादान करके पददान देना चाहिये। पददानके विषयमें मैं तुम्हें यथावत् बतलाता हूँ, सुनो॥ ८२॥ छत्र (छाता), उपानह (जूता), वस्त्र, मुद्रिका (अँगूठी), कमण्डलु, आसन तथा पञ्चपात्र—ये सात वस्तुएँ पद कही गयी हैं॥ ८३॥

दण्डेन ताम्रपात्रेण ह्यामान्नैर्भोजनैरपि। अर्घ्ययज्ञोपवीतैश्च पदं सम्पूर्णतां व्रजेत्॥ ८४॥
त्रयोदशपदानीत्थं यथाशक्त्या विधाय च। त्रयोदशेभ्यो विप्रेभ्यः प्रदद्याद् द्वादशेऽहनि॥ ८५॥

अनेन पददानेन धार्मिका यान्ति सद्गतिम्। यममार्गं गतानां च पददानं सुखप्रदम्॥ ८६॥

आतपस्तत्र वै रौद्रो दह्यते येन मानवः। छत्रदानेन सुच्छाया जायते तस्य मूर्द्धनि॥ ८७॥

दण्ड, ताम्रपात्र, आमान्न (कच्चा अन्न), भोजन, अर्घ्यपात्र और यज्ञोपवीतको मिलाकर पदकी सम्पूर्णता होती है॥ ८४॥ इस प्रकार शक्तिके अनुसार तेरह पददानोंकी व्यवस्था करके बारहवें दिन तेरह ब्राह्मणोंको पददान करना चाहिये॥ ८५॥ इस पददानसे धार्मिक पुरुष सद्गतिको प्राप्त होते हैं। यममार्गमें गये हुए जीवोंके लिये पददान सुख प्रदान करनेवाला होता है॥ ८६॥ वहाँ यममार्गमें अत्यन्त प्रचण्ड आतप (घाम) होता है, जिससे मनुष्य जलता है। छत्र (छाता) दान करनेसे उसके सिरपर सुन्दर छाया हो जाती है॥ ८७॥

अतिकण्टकसंकीर्णे यमलोकस्य वर्त्मनि। अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददन्ते यद्युपानहौ॥ ८८॥
शीतोष्णवातदुःखानि तत्र घोराणि खेचर। वस्त्रदानप्रभावेण सुखं निस्तरते पथि॥ ८९॥

जो जूतादान करते हैं, वे अत्यन्त कण्टकाकीर्ण यमलोकके मार्गमें अश्वपर चढ़कर जाते हैं॥ ८८॥ हे खेचर! वहाँ (यममार्गमें) शीत, गरमी और वायुसे अत्यन्त घोर कष्ट मिलता है। वस्त्रदानके प्रभावसे जीव सुखपूर्वक उस मार्गको तय कर लेता है॥ ८९॥

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न पीडयन्ति तं मार्गे मुद्रिकायाः प्रदानतः॥ ९०॥
बहुघर्मसमाकीर्णे निर्वाते तोयवर्जिते। कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम्॥ ९१॥

मृतोद्देशेन यो दद्याज्जलपात्रं च ताम्रजम्। प्रपादानसहस्रस्य यत्फलं सोऽश्नुते ध्रुवम्॥ १२॥

आसने भोजने चैव दत्ते सम्यग्द्विजातये। सुखेन भुङ्क्ते पाथेयं पथि गच्छञ्छनैः शनैः॥ १३॥

यमके मार्गमें महाभयंकर और विकराल तथा काले और पीले वर्णके यमदूत मुद्रिका प्रदान करनेसे जीवको पीड़ा नहीं देते हैं॥ १०॥ कमण्डलुका दान करनेसे अत्यन्त धूपसे परिपूर्ण, वायुरहित और जलविहीन यममार्गमें जानेवाला वह प्यासा जीव प्यास लगनेपर जल पीता है॥ ११॥ मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे जो ताम्रका जलपात्र देता है, उसे एक हजार प्रपादानका फल अवश्य ही प्राप्त होता है॥ १२॥ ब्राह्मणको सम्यक्-रूपसे आसन और भोजन देनेपर यममार्गमें चलता हुआ जीव धीरे-धीरे सुखपूर्वक पाथेय (भोज्य पदार्थ)-का उपभोग करता है॥ १३॥

एवं सपिण्डनदिने दत्त्वा दानं विधानतः। बहून् सम्भोजयेद्विप्रान् यः श्वपाकादिकानपि॥ १४॥

ततः सपिण्डनादूर्ध्वमर्वाक्संवत्सरादपि। प्रतिमासं प्रदातव्यो जलकुम्भः सपिण्डकः॥ १५॥

इस प्रकार सपिण्डनके दिन विधानपूर्वक दान दे करके बहुत-से ब्राह्मणोंको तथा चाण्डाल आदिको भी भोजन देना चाहिये॥ १४॥ इसके बाद वर्षके पूर्व ही (बारहवें दिन) सपिण्डन करनेपर भी प्रत्येक मास जलकुम्भ और पिण्डदान करना चाहिये॥ १५॥

कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग। प्रेतार्थं तु पुनः कुर्यादक्षय्यतृप्तिहेतवे॥ १६॥

अतो विशेषं वक्ष्यामि मासिकस्याब्दिकस्य च। पाक्षिकस्य विशेषं च विशेषतिथिसंस्थिते॥ ९७॥

पौर्णमास्यां मृतो यस्तु चतुर्थी तस्य ऊनिका। चतुर्थ्यां तु मृतो यस्तु नवमी तस्य ऊनिका॥ ९८॥

नवम्यां तु मृतो यस्तु रिक्ता तस्य चतुर्दशी। इत्येवं पाक्षिकं श्राद्धं कुर्याद्विंशतिमे दिने॥ ९९॥

हे खग! प्रेतकार्यको छोड़कर अन्य किसी कर्मका पुनः अनुष्ठान नहीं किया जाता, किंतु प्रेतकी अक्षयतृप्तिके लिये पुनः-पुनः पिण्डदानादि करना चाहिये॥ ९६॥ अतः मैं विशेष तिथिपर मृत्यु होनेवाले जीवके मासिक, वार्षिक और पाक्षिक श्राद्धके विषयमें कुछ विशेष बात कहूँगा॥ ९७॥ पूर्णमासी तिथिपर जो मरता है, उसका ऊनमासिक श्राद्ध चतुर्थी तिथिको होता है और जिसकी मृत्यु चतुर्थीको हुई है, उसका ऊनमासिक श्राद्ध नवमी तिथिको होता है॥ ९८॥ नवमी तिथिको जिसकी मृत्यु हुई है, उसका ऊनमासिक श्राद्ध रिक्ता तिथि—चतुर्दशीको होता है। इस प्रकार पाक्षिक श्राद्ध बीसवें दिन करना चाहिये॥ ९९॥

एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः। मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासे हि शस्यते॥ १००॥

एकस्मिन्मासि मासौ द्वौ यदि स्यातां तयोर्द्वयोः। तावेव पक्षौ ता एव तिथयस्त्रिंशदेव हि॥ १०१॥

यदि एक ही मासमें दो संक्रान्तियाँ हों तो दो महीनोंका श्राद्ध मलमासमें ही करना चाहिये॥ १००॥ यदि एक ही मासमें दो मास हों तो उस मासके ही वे दोनों पक्ष और वे ही तीस तिथियाँ उन दोनों महीनोंकी मानी जायँगी॥ १०१॥

तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयाऽर्धे तदुत्तरः। मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ मलमासस्य मध्यगौ ॥ १०२ ॥
असंक्रान्ते च कर्तव्यं सपिण्डीकरणं खग। तथैव मासिकं श्राद्धं वार्षिकं प्रथमं तथा ॥ १०३ ॥
संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासिकः। तदा त्रयोदशे मासि क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥ १०४ ॥

मलमासमें पड़नेवाले उन दोनों मासोंके (मासिक श्राद्धके) विषयमें विद्वानोंको यह व्यवस्था सोचनी चाहिये कि श्राद्ध-तिथिके दिनके पूर्वार्द्धमें प्रथम मासका श्राद्ध करे और द्वितीयार्द्धमें (दोपहरके बाद) दूसरे मासका श्राद्ध करे ॥ १०२ ॥ हे खग! संक्रान्तिरहित मास (मलमास)-में भी सपिण्डीकरण तथा मासिक और प्रथम वार्षिक श्राद्ध करना चाहिये ॥ १०३ ॥ यदि वर्ष पूर्ण होनेके मध्यमें अधिमास आता है तो तेरह महीने पूर्ण होनेके अनन्तर प्रेतका वार्षिक श्राद्ध करना चाहिये ॥ १०४ ॥

पिण्डवर्ज्यमसंक्रान्ते संक्रान्ते पिण्डसंयुतम्। प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च ॥ १०५ ॥
एवं संवत्सरे पूर्णे वार्षिकं श्राद्धमाचरेत्। तस्मिन्नपि विशेषेण भोजनीया द्विजातयः ॥ १०६ ॥

संक्रान्तिरहित मासमें पिण्डरहित श्राद्ध (आमश्राद्ध) और संक्रान्तियुक्त मासमें पिण्डयुक्त श्राद्ध करना चाहिये। इस प्रकार (प्रथम) वार्षिक श्राद्धको (मलमास तथा उसके बाद आनेवाले शुद्ध मास—तेरहवें मास) दोनों ही मासोंमें करना चाहिये ॥ १०५ ॥ इस प्रकार वर्ष पूर्ण होनेपर वार्षिक श्राद्ध करना चाहिये और वार्षिक श्राद्धकी तिथिको विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ १०६ ॥

कुर्यात् संवत्सरादूर्ध्वं श्राद्धे पिण्डत्रयं सदा। एकोद्दिष्टं न कर्तव्यं तेन स्यात्पितृघातकः॥ १०७॥
तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं गजच्छायां च पैतृकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत ग्रहणे न युगादिषु॥ १०८॥
यदा पुत्रेण वै कार्यं गयाश्राद्धं खगेश्वर। तदा संवत्सरादूर्ध्वं कर्तव्यं पितृभक्तितः॥ १०९॥
गयाश्राद्धात् प्रमुच्यन्ते पितरो भवसागरात्। गदाधरानुग्रहेण ते यान्ति परमां गतिम्॥ ११०॥
तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजयेद् विष्णुपादुकाम्। तस्यालवालतीर्थेषु पिण्डान् दद्याद्यथाक्रमम्॥ १११॥

एक वर्ष पूर्ण हो जानेपर श्राद्धमें हमेशा तीन पिण्डदान करना चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पितृघातक होता है॥ १०७॥ तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध तथा गजच्छाया[1] योगमें, युगादि तिथियों तथा ग्रहणमें किया जानेवाला पितृश्राद्ध वर्षके अंदर नहीं करना चाहिये॥ १०८॥ हे खगेश्वर! पितृभक्तिसे प्रेरित हो करके पुत्रको एक वर्षके अनन्तर ही गयाश्राद्ध करना चाहिये॥ १०९॥ गयाश्राद्ध करनेसे पितर भवसागरसे मुक्त हो जाते हैं और भगवान् गदाधरकी कृपासे वे परम गतिको प्राप्त होते हैं॥ ११०॥ (गयाके विष्णुपद तीर्थमें) तुलसीकी मञ्जरीसे भगवान् विष्णुकी पादुकाका पूजन करना चाहिये और उसके आलवाल आदि तीर्थोंमें यथाक्रम पिण्डदान करना चाहिये॥ १११॥

उद्धरेत् सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्। शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद् गयाशिरे॥ ११२॥

---

१. गजच्छायायोग—जब चन्द्रमा मघा नक्षत्रमें हो, सूर्य हस्त नक्षत्रमें हो और त्रयोदशी तिथि हो तब गजच्छायायोग बनता है।— यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः। तिथिर्वैश्रवणी या च गजच्छायेति सा स्मृता॥ (हेमाद्रि श्राद्धकल्प)

गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति कुलनन्दनः। सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम्॥ ११३॥

श्रूयते चापि पितृभिर्गीता गाथा खगेश्वर। इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने सुरैः॥ ११४॥
अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः। गयामुपेत्य ये पिण्डान् दास्यन्त्यस्माकमादरात्॥ ११५॥
एवमामुष्मिकीं तार्क्ष्य यः करोति क्रियां सुतः। स स्यात् सुखी भवेन्मुक्तः कौशिकस्यात्मजा यथा॥ ११६॥
भरद्वाजात्मजाः सप्त भुक्त्वा जन्मपरम्पराम्। कृत्वापि गोवधं तार्क्ष्य मुक्ताः पितृप्रसादतः॥ ११७॥

जो व्यक्ति गयाशिरमें शमीके पत्तेके समान प्रमाणवाले पिण्डको देता है, वह सातों गोत्रोंके (अपने) एक-सौ-एक पुरुषोंका उद्धार करता है॥ ११२॥ कुलको आनन्दित करनेवाला जो पुत्र गयामें जाकर श्राद्ध करता है, पितरोंको तुष्टि देनेके कारण उसका जन्म सफल हो जाता है॥ ११३॥ हे खगेश्वर! यह सुना जाता है कि देव-पितरोंने मनुके पुत्र इक्ष्वाकुको कलापवनमें यह गाथा सुनायी थी—॥ ११४॥ क्या हमारे कुलमें ऐसे कोई सन्मार्गगामी पुत्र होंगे, जो गयामें जाकर आदरपूर्वक हमलोगोंको पिण्ड प्रदान करेंगे?॥ ११५॥ हे तार्क्ष्य! इस प्रकार जो पुत्र पितरोंकी आमुष्मिक (परलोक-सम्बन्धी) क्रिया करता है, वह सुखी होकर कौशिकके (द्विजके सात) पुत्रोंकी भाँति मुक्त हो जाता है[1]॥ ११६॥ हे तार्क्ष्य! भरद्वाजके सात पुत्र (पितृश्राद्धके हेतु) गोवध करके भी सात जन्मपरम्पराओंको भोग करके पितरोंके प्रसादसे मुक्त हो गये॥ ११७॥

सप्तव्याधाः दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्द्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥ ११८॥

---

१. कौशिकके सात पुत्रोंकी कथा मत्स्यपुराण, हरिवंशपुराण (हरिवंशपर्व) तथा पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड) आदिमें विस्तारसे दी गयी है।

तेऽपि जाता: कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगा:। पितृभक्त्या च ते सर्वे गता मुक्तिं द्विजात्मजा: ॥ ११९ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तो भवेन्नर:। इह लोके परे वापि पितृभक्त्या सुखी भवेत् ॥ १२० ॥
एतत्तार्क्ष्य मयाऽऽख्यातं सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम्। पुत्रवाञ्छाप्रदं पुण्यं पितुर्मुक्तिप्रदायकम् ॥ १२१ ॥
निर्धनोऽपि नर: कश्चिद् य: शृणोति कथामिमाम्। सोऽपि पापविनिर्मुक्तो दानस्य फलमाप्नुयात् ॥ १२२ ॥
विधिना कुरुते यस्तु श्राद्धं दानं मयोदितम्। शृणुयाद् गारुडं चापि शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥ १२३ ॥

(कौशिकके वे सातों पुत्र प्रथम जन्ममें) दशार्ण देशमें सात व्याधोंके रूपमें उत्पन्न हुए थे। इसके बाद अगले जन्ममें वे कालञ्जर पर्वतपर मृगके रूपमें उत्पन्न हुए। फिर शरद्द्वीपमें चक्रवाकके रूपमें उनकी उत्पत्ति हुई, अगले जन्ममें मानसरोवरमें हंसके रूपमें उत्पन्न हुए ॥ ११८ ॥ वे ही कुरुक्षेत्रमें वेदपारगामी ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न हुए और पितरोंके प्रति भक्तिभाव रखनेके कारण वे ब्राह्मणपुत्र मुक्त हो गये। इसलिये पूरे प्रयत्नसे मनुष्यको पितृभक्त होना चाहिये। पितृभक्तिके कारण मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें भी सुखी होता है ॥ ११९-१२० ॥ हे तार्क्ष्य! यह सब और्ध्वदैहिक क्रिया हमने तुमसे कही। यह कृत्य पुत्रकी कामनाको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद तथा पिताको मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ १२१ ॥ जो कोई निर्धन मनुष्य भी इस कथाको सुनता है, वह भी पापसे मुक्त होकर (पितरोंके निमित्त दिये जानेवाले) दानका फल प्राप्त करता है ॥ १२२ ॥ जो मनुष्य मेरे द्वारा कहे गये श्राद्धों एवं दानोंको विधिपूर्वक करता है और गरुडपुराणकी कथाको सुनता है, उसके फलको सुनो— ॥ १२३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

यमलोक एवं यम-सभाका वर्णन, चित्रगुप्त आदिके भवनोंका परिचय, धर्मराजनगरके चार द्वार, पुण्यात्माओंका धर्मसभामें प्रवेश

गरुड उवाच

यमलोकः कियन्मात्रः कीदृशः केन निर्मितः। सभा च कीदृशी तस्यां धर्म आस्ते च कैः सह॥ १ ॥
ये धर्ममार्गैर्गच्छन्ति धार्मिका धर्ममन्दिरम्। तान् धर्मानपि मार्गांश्च ममाख्याहि दयानिधे॥ २ ॥

गरुडजीने कहा—हे दयानिधे! यमलोक कितना बड़ा है, कैसा है, किसके द्वारा बनाया हुआ है, वहाँकी सभा कैसी है और उस सभामें धर्मराज किनके साथ बैठते हैं?॥ १॥ हे दयानिधे! जिन धर्मोंका आचरण करनेके कारण धार्मिक पुरुष जिन धर्ममार्गोंसे धर्मराजके भवनमें जाते हैं, उन धर्मों तथा मार्गोंके विषयमें भी आप मुझे बतलाइये॥ २॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यदगम्यं नारदादिभिः। तद्धर्मनगरं दिव्यं महापुण्यैरवाप्यते॥ ३ ॥
याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य यत्। सर्वं वज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत्सुरासुरैः॥ ४ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुड! धर्मराजका जो नगर नारदादि मुनियोंके लिये भी अगम्य है उसके विषयमें बतलाता हूँ, सुनो। उस दिव्य धर्मनगरको महापुण्यसे ही प्राप्त किया जा सकता है॥ ३॥ दक्षिण दिशा और नैर्ऋत्यकोणके

मध्यमें वैवस्वत (यम)-का जो नगर है, वह सम्पूर्ण नगर वज्रका बना हुआ है, दिव्य है और असुरों तथा देवताओंसे अभेद्य है॥ ४॥

चतुरस्रं चतुर्द्वारमुच्चप्राकारवेष्टितम्। योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तदुच्यते॥ ५ ॥
तस्मिन् पुरेऽस्ति सुभगं चित्रगुप्तस्य मन्दिरम्। पञ्चविंशतिसंख्याकैर्योजनैर्विस्तृतायतम् ॥ ६ ॥
दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम्। प्रतोलीशतसंचारं पताकाध्वजभूषितम्॥ ७ ॥
विमानगणसंकीर्णं गीतवादित्रनादितम्। चित्रितं चित्रकुशलैर्निर्मितं देवशिल्पिभिः॥ ८ ॥

वह पुर चौकोर, चार द्वारोंवाला, ऊँची चहारदीवारीसे घिरा हुआ और एक हजार योजन प्रमाणवाला कहा गया है॥ ५॥ उस पुरमें चित्रगुप्तका सुन्दर मन्दिर है, जो पच्चीस योजन लम्बाई और चौड़ाईमें फैला हुआ है॥ ६॥ उसकी ऊँचाई दस योजन है और वह लोहेकी अत्यन्त दिव्य चहारदीवारीसे घिरा है। वहाँ आवागमनके लिये सैकड़ों गलियाँ हैं और वह पताकाओं एवं ध्वजोंसे विभूषित है॥ ७॥ वह विमानसमूहोंसे घिरा हुआ है और गायन-वादनसे निनादित है। चित्र बनानेमें निपुण चित्रकारोंके द्वारा चित्रित है तथा देवताओंके शिल्पियोंने उसका निर्माण किया है॥ ८॥

उद्यानोपवनै रम्यं नानाविहगकूजितम्। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च समन्तात् परिवारितम्॥ ९ ॥
तत्सभायां चित्रगुप्तः स्वासने परमाद्भुते। संस्थितो गणयेदायुर्मानुषाणां यथातथम्॥ १० ॥

वह उद्यानों[१] और उपवनोंसे रमणीय है, नाना प्रकारके पक्षिगण उसमें कलरव करते हैं तथा वह चारों ओरसे गन्धर्वों तथा अप्सराओंसे घिरा है॥ ९॥ उस सभामें अपने परम अद्भुत आसनपर स्थित चित्रगुप्त मनुष्योंकी आयुकी यथावत् गणना करते हैं॥ १०॥

न मुह्यति कथंचित् स सुकृते दुष्कृतेऽपि वा। यद्येनोपार्जितं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्॥ ११॥
तत्सर्वं भुञ्जते तत्र चित्रगुप्तस्य शासनात्। चित्रगुप्तालयात् प्राच्यां ज्वरस्याति महागृहम्॥ १२॥
दक्षिणस्यां च शूलस्य लूताविस्फोटयोस्तथा। पश्चिमे कालपाशः स्यादजीर्णस्यारुचेस्तथा॥ १३॥

वे मनुष्योंके पाप और पुण्यका लेखा-जोखा (अभिलेख) करनेमें त्रुटि नहीं करते। जिसने जो शुभ अथवा अशुभ कर्म किया है, चित्रगुप्तकी आज्ञासे उसे उन सबका भोग करना होता है। चित्रगुप्तके घरके पूरबकी ओर ज्वरका एक बड़ा विशाल घर है और उनके घरके दक्षिण शूल, लूता और विस्फोटके घर हैं तथा पश्चिममें कालपाश, अजीर्ण तथा अरुचिके घर हैं॥ ११—१३॥

उदीच्यां राजरोगोऽस्ति पाण्डुरोगस्तथैव च। ऐशान्यां तु शिरोऽर्तिः स्यादाग्नेय्यामस्ति मूर्च्छना॥ १४॥
अतिसारो नैर्ऋते तु वायव्यां शीतदाहकौ। एवमादिभिरन्यैश्च व्याधिभिः परिवारितः॥ १५॥
लिखते चित्रगुप्तस्तु मानुषाणां शुभाशुभम्। चित्रगुप्तालयादग्रे योजनानां च विंशतिः॥ १६॥

---

१. फलदार वृक्षोंसे युक्त वन उद्यान तथा फूलयुक्त वृक्षोंसे युक्त वन उपवन कहलाता है।

पुरमध्ये महादिव्यं धर्मराजस्य मन्दिरम्। अस्ति रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम्॥ १७॥

(चित्रगुप्तके घरके) उत्तरकी ओर राजरोग और पाण्डुरोगका घर है, ईशानकोणमें शिर:पीडाका और अग्निकोणमें मूर्च्छाका घर है॥ १४॥ नैर्ऋत्यकोणमें अतिसारका, वायव्यकोणमें शीत और दाहका स्थान है। इस प्रकार और भी अन्यान्य व्याधियोंसे चित्रगुप्तका भवन घिरा हुआ है॥ १५॥ चित्रगुप्त मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंको लिखते हैं। चित्रगुप्तके भवनसे बीस योजन आगे नगरके मध्यभागमें धर्मराजका महादिव्य भवन है। वह दिव्य रत्नमय तथा विद्युत्की ज्वालामालाओंसे युक्त और सूर्यके समान देदीप्यमान है॥ १६-१७॥

द्विशतं योजनानां च विस्तारायामत: स्फुटम्। पञ्चाशच्च प्रमाणेन योजनानां समुच्छ्रितम्॥ १८॥
धृतं स्तम्भसहस्रैश्च वैदूर्यमणिमण्डितम्। काञ्चनालङ्कृतं नानाहर्म्यप्रासादसंकुलम्॥ १९॥
शारदाभ्रनिभं रुक्मकलशै: सुमनोहरम्। चित्रस्फटिकसोपानं वज्रकुट्टिमशोभितम्॥ २०॥

वह दो सौ योजन चौड़ा, दो सौ योजन लम्बा और पचास योजन ऊँचा है। हजार स्तम्भोंपर धारण किया गया है, वैदूर्यमणिसे मण्डित है, स्वर्णसे अलंकृत है और अनेक प्रकारके हर्म्य (धनिकोंके भवन) और प्रासादगृह (देवसदन तथा राजसदन)-से परिपूर्ण है॥ १८-१९॥ (वह भवन) शरत्कालीन मेघके समान उज्ज्वल, निर्मल एवं सुवर्णके बने हुए कलशोंसे अत्यन्त मनोहर है, (उसमें) चित्र (बहुरंगी) रंगके स्फटिकसे बनी हुई सीढ़ियाँ हैं और वह वज्र (हीरा)-की कुट्टिम (फर्श)-से सुशोभित है॥ २०॥

मुक्ताजालगवाक्षं च पताकाध्वजभूषितम् । घण्टानकनिनादाढ्यं हेमतोरणमण्डितम् ॥ २१ ॥

नानाऽऽश्चर्यमयं स्वर्णकपाटशतसङ्कुलम् । नानाद्रुमलतागुल्मैर्निष्कण्टैः सुविराजितम् ॥ २२ ॥
एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा । आत्मयोगप्रभावैश्च निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २३ ॥

गवाक्षों (रोशनदानों)-में मोतियोंके झालर लगे हैं। वह पताकाओं और ध्वजोंसे विभूषित, घण्टा और नगाड़ोंसे निनादित तथा स्वर्णके बने तोरणोंसे मण्डित है ॥ २१ ॥ वह अनेक आश्चर्योंसे परिपूर्ण और स्वर्णनिर्मित सैकड़ों किवाड़ोंसे युक्त है तथा कण्टकरहित नाना वृक्ष, लताओं एवं गुल्मों (झाड़ियों)-से सुशोभित है ॥ २२ ॥ इसी प्रकार अन्य भूषणोंसे भी वह (भवन) सदा भूषित रहता है। विश्वकर्माने अपने आत्मयोगके प्रभावसे उसका निर्माण किया है ॥ २३ ॥

तस्मिन्नस्ति सभा दिव्या शतयोजनमायता । अर्कप्रकाशा भ्राजिष्णुः सर्वतः कामरूपिणी ॥ २४ ॥
नातिशीता न चात्युष्णा मनसोऽत्यन्तहर्षिणी । न शोको न जरा तस्यां क्षुत्पिपासे न चाप्रियम् ॥ २५ ॥
सर्वे कामाः स्थिता यस्यां ये दिव्या ये च मानुषाः । रसवच्च प्रभूतं च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः ॥ २६ ॥

उस (धर्मराजके) भवनमें सौ योजन लम्बी-चौड़ी दिव्य सभा है जो सूर्यके समान प्रकाशित, चारों ओरसे देदीप्यमान तथा इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाली है। वहाँ न अधिक ठंडा है, न अधिक गरम। वह मनको अत्यन्त हर्षित करनेवाली है। उसमें रहनेवाले किसीको न कोई शोक होता है, न वृद्धावस्था सताती है, न भूख-प्यास लगती है और न किसीके साथ अप्रिय घटना ही होती है ॥ २४-२५ ॥ देवलोक और मनुष्यलोकमें जितने काम (काम्य-विषय-अभिलाषाएँ) हैं,

वे सभी वहाँ उपलब्ध हैं। वहाँ सभी तरहके रसोंसे परिपूर्ण भक्ष्य और भोज्य सामग्रियाँ चारों ओर प्रचुर मात्रामें हैं॥ २६॥

रसवन्ति च तोयानि शीतान्युष्णानि चैव हि। पुण्याः शब्दादयस्तस्यां नित्यं कामफलद्रुमाः॥ २७॥
असम्बाधा च सा तार्क्ष्य रम्या कामागमा सभा। दीर्घकालं तपस्तप्त्वा निर्मिता विश्वकर्मणा॥ २८॥
तामुग्रतपसो यान्ति सुव्रताः सत्यवादिनः। शान्ताः संन्यासिनः सिद्धाः पूताः पूतेन कर्मणा॥ २९॥

वहाँ सरस, शीतल तथा उष्ण जल भी उपलब्ध है। उसमें पुण्यमय शब्दादि विषय भी उपलब्ध हैं और नित्य मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाले कल्पवृक्ष भी वहाँ हैं॥ २७॥ हे तार्क्ष्य! वह सभा बाधारहित, रमणीय और कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। विश्वकर्माने दीर्घ कालतक तपस्या करके उसका निर्माण किया है॥ २८॥ उसमें उग्र (कठोर) तपस्या करनेवाले, सुव्रती, सत्यवादी, शान्त, संन्यासी, सिद्ध एवं पवित्र कर्म करके शुद्ध हुए पुरुष जाते हैं॥ २९॥

सर्वे भास्वरदेहास्तेऽलङ्कृता विरजाऽम्बराः। स्वकृतैः कर्मभिः पुण्यैस्तत्र तिष्ठन्ति भूषिताः॥ ३०॥
तस्यां स धर्मो भगवानासनेऽनुपमे शुभे। दशयोजनविस्तीर्णे सर्वरत्नैः सुमण्डिते॥ ३१॥
उपविष्टः सतां श्रेष्ठश्छत्रशोभितमस्तकः। कुण्डलालङ्कृतः श्रीमान् महामुकुटमण्डितः॥ ३२॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तो नीलमेघसमप्रभः। बालव्यजनहस्ताभिरप्सरोभिश्च वीजितः॥ ३३॥

उन सभीका देह तेजोमय होता है। वे आभूषणोंसे अलङ्कृत तथा निर्मल वस्त्रोंसे युक्त होते हैं तथा अपने किये हुए पुण्य कर्मोंके कारण वहाँ विभूषित होकर विराजमान रहते हैं॥ ३०॥ दस योजन विस्तीर्ण और सभी

प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित उस सभामें अनुपम एवं उत्तम आसनपर धर्मराज विद्यमान रहते हैं॥ ३१॥ वे सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं और उनके मस्तकपर छत्र सुशोभित है तथा कानोंमें कुण्डलोंसे अलंकृत वे श्रीमान् महामुकुटसे सुशोभित हैं। वे सभी प्रकारके अलङ्कारोंसे समन्वित तथा नीलमेघके समान कान्तिवाले हैं। हाथमें चँवर धारण की हुई अप्सराएँ उन्हें पंखा झलती रहती हैं॥ ३२-३३॥

गन्धर्वाणां समूहाश्च सङ्घशश्चाप्सरोगणाः। गीतवादित्रनृत्याद्यैः परितः सेवयन्ति तम्॥ ३४॥
मृत्युना पाशहस्तेन कालेन च बलीयसा। चित्रगुप्तेन चित्रेण कृतान्तेन निषेवितः॥ ३५॥

गन्धर्वोंके समूह तथा अप्सरागणोंका संघ गायन, वादन और नृत्यादिद्वारा सभी ओरसे उनकी सेवा करते हैं॥ ३४॥ हाथमें पाश लिये हुए मृत्यु और बलवान् काल तथा विचित्र आकृतिवाले चित्रगुप्त एवं कृतान्तके द्वारा वे सेवित हैं॥ ३५॥

पाशदण्डधरैरुग्रैः निदेशवशवर्तिभिः। आत्मतुल्यबलैर्नानासुभटैः परिवारितः॥ ३६॥
अग्निष्वात्ताश्च पितरः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये। स्वधावन्तो बर्हिषदो मूर्ताऽमूर्ताश्च ये खग॥ ३७॥
अर्यमाद्याः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तथापरे। सर्वे ते मुनिभिः सार्धं धर्मराजमुपासते॥ ३८॥
अत्रिर्वसिष्ठः पुलहो दक्षः क्रतुरथाङ्गिराः। जामदग्न्यो भृगुश्चैव पुलस्त्यागस्त्यनारदाः॥ ३९॥
एते चान्ये च बहवः पितृराजसभासदः। न शक्याः परिसंख्यातुं नामभिः कर्मभिस्तथा॥ ४०॥

हाथोंमें पाश और दण्ड धारण करनेवाले, उग्र स्वभाववाले, आज्ञाके अधीन आचरण करनेवाले तथा अपने समान बलवाले नाना सुभटों (दूतों)-से (वे धर्मराज) घिरे रहते हैं ॥ ३६ ॥ हे खग! अग्निष्वात्त, सोमप, उष्मप, स्वधावान्, बर्हिषद्, मूर्तिमान् तथा अमूर्तिमान् जो पितर हैं एवं अर्यमा आदि जो पितृगण हैं और जो अन्य मूर्तिमान् पितर हैं वे सब मुनियोंके साथ धर्मराजकी उपासना करते हैं ॥ ३७-३८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, दक्ष, क्रतु, अंगिरा, जमदग्निनन्दन परशुराम, भृगु, पुलस्त्य, अगस्त्य, नारद—ये तथा अन्य बहुत-से पितृराज (धर्मराज)-के सभासद हैं, जिनके नामों और कर्मोंकी गणना नहीं की जा सकती ॥ ३९-४० ॥

व्याख्याभिर्धर्मशास्त्राणां निर्णेतारो यथातथम्। सेवन्ते धर्मराजं ते शासनात् परमेष्ठिनः॥ ४१ ॥
राजानः सूर्यवंशीयाः सोमवंश्यास्तथापरे। सभायां धर्मराजं ते धर्मज्ञाः पर्युपासते॥ ४२ ॥

ये धर्मशास्त्रोंकी व्याख्या करके यथावत् निर्णय देते हैं, ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार वे सब धर्मराजकी सेवा करते हैं ॥ ४१ ॥ उस सभामें सूर्यवंशके और चन्द्रवंशके अन्य बहुत-से धर्मात्मा राजा धर्मराजकी सेवा करते हैं ॥ ४२ ॥

मनुर्दिलीपो मान्धाता सगरश्च भगीरथः। अम्बरीषोऽनरण्यश्च मुचुकुन्दो निमिः पृथुः॥ ४३ ॥
ययातिर्नहुषः पूरुर्दुष्यन्तश्च शिबिर्नलः। भरतः शन्तनुः पाण्डुः सहस्रार्जुन एव च॥ ४४ ॥
एते राजर्षयः पुण्याः कीर्तिमन्तो बहुश्रुताः। इष्ट्वाऽश्वमेधैर्बहुभिर्जाता धर्मसभासदः॥ ४५ ॥
सभायां धर्मराजस्य धर्म एव प्रवर्तते। न तत्र पक्षपातोऽस्ति नानृतं न च मत्सरः॥ ४६ ॥

सभ्याः सर्वे शास्त्रविदः सर्वे धर्मपरायणाः। तस्यां सभायां सततं वैवस्वतमुपासते॥ ४७॥
ईदृशी सा सभा तार्क्ष्य धर्मराज्ञो महात्मनः। न तां पश्यन्ति ये पापा दक्षिणेन पथा गताः॥ ४८॥
धर्मराजपुरे गन्तुं चतुर्मार्गा भवन्ति च। पापिनां गमने पूर्वं स तु ते परिकीर्तितः॥ ४९॥

मनु, दिलीप, मान्धाता, सगर, भगीरथ, अम्बरीष, अनरण्य, मुचुकुन्द, निमि, पृथु, ययाति, नहुष, पूरु, दुष्यन्त, शिवि, नल, भरत, शन्तनु, पाण्डु तथा सहस्रार्जुन—ये यशस्वी पुण्यात्मा राजर्षि और बहुत-से प्रख्यात राजा बहुत-से अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेके फलस्वरूप धर्मराजके सभासद हुए हैं॥ ४३—४५॥ धर्मराजकी सभामें धर्मकी ही प्रवृत्ति होती है। न वहाँ पक्षपात है, न झूठ बोला जाता है और न किसीका किसीके प्रति मात्सर्यभाव रहता है। सभी सभासद शास्त्रविद् और सभी धर्मपरायण हैं। वे सदा उस सभामें वैवस्वत यमकी उपासना करते हैं॥ ४६-४७॥ हे तार्क्ष्य! महात्मा धर्मराजकी वह सभा इस प्रकारकी है। जो पापात्मा पुरुष दक्षिण द्वारसे (वहाँ) जाते हैं, वे उस सभाको नहीं देख पाते। धर्मराजके पुरमें जानेके लिये चार मार्ग हैं। पापियोंके गमनके लिये जो मार्ग है उसके विषयमें मैंने तुमसे पहले ही कह दिया॥ ४८-४९॥

पूर्वादिभिस्त्रिभिर्मार्गैर्ये गता धर्ममन्दिरे। ते वै सुकृतिनः पुण्यैस्तस्यां गच्छन्ति ताञ्शृणु॥ ५०॥
पूर्वमार्गस्तु तत्रैकः सर्वभोगसमन्वितः। पारिजाततरुच्छायाच्छादितो रत्नमण्डितः॥ ५१॥
विमानगणसङ्कीर्णो हंसावलिविराजितः। विद्रुमारामसंकीर्णः पीयूषद्रवसंयुतः॥ ५२॥

तेन ब्रह्मर्षयो यान्ति पुण्या राजर्षयोऽमला: । अप्सरोगणगन्धर्वविद्याधरमहोरगा: ॥ ५३ ॥

पूर्व आदि तीनों मार्गोंसे जो धर्मराजके मन्दिरमें जाते हैं, वे सुकृती (पुण्यात्मा होते) हैं और अपने पुण्यकर्मोंके बलसे वहाँ जाते हैं, उनके विषयमें सुनो ॥ ५० ॥ उन मार्गोंमें जो पहला पूर्व मार्ग है वह सभी प्रकारकी सामग्रियोंसे समन्वित है और पारिजात वृक्षकी छायासे आच्छादित तथा रत्नमण्डित है ॥ ५१ ॥ वह मार्ग विमानोंके समूहोंसे सङ्कीर्ण और हंसोंकी पंक्तिसे सुशोभित है, विद्रुमके उद्यानोंसे व्याप्त है और अमृतमय जलसे युक्त है ॥ ५२ ॥ उस मार्गसे पुण्यात्मा ब्रह्मर्षि और अमलान्तरात्मा राजर्षि, अप्सरागण, गन्धर्व, विद्याधर, वासुकि आदि महान् नाग जाते हैं ॥ ५३ ॥

देवताराधकाश्चान्ये शिवभक्तिपरायणा: । ग्रीष्मे प्रपादानरता माघे काष्ठप्रदायिन: ॥ ५४ ॥
विश्रामयन्ति वर्षासु विरक्तान् दानमानत: । दु:खितस्यामृतं ब्रूते ददते ह्याश्रयं तु ये ॥ ५५ ॥

अन्य बहुत-से देवताओंकी आराधना करनेवाले शिवभक्तिनिष्ठ, ग्रीष्म-ऋतुमें प्रपा (प्याऊ)-का दान करनेवाले, (अर्थात् पौशाला लगानेवाले,) माघमें (आग सेंकनेके लिये) लकड़ी देनेवाले, वर्षा-ऋतुमें (चातुर्मास करनेवाले) विरक्त संतोंको दान-मानादि प्रदान करके उन्हें विश्राम करानेवाले, दु:खी मनुष्यको अमृतमय वचनोंसे आश्वस्त करनेवाले और आश्रय देनेवाले ॥ ५४-५५ ॥

सत्यधर्मरता ये च क्रोधलोभविवर्जिता: । पितृमातृषु ये भक्ता गुरुशुश्रूषणे रता: ॥ ५६ ॥

भूमिदा गृहदा गोदा विद्यादानप्रदायकाः। पुराणवक्तृश्रोतारः पारायणपरायणाः॥ ५७॥
एते सुकृतिनश्चान्ये पूर्वद्वारे विशन्ति च। यान्ति धर्मसभायां ते सुशीलाः शुद्धबुद्धयः॥ ५८॥
द्वितीयस्तूत्तरो मार्गो महारथशतैर्वृतः। नरयानसमायुक्तो हरिचन्दनमण्डितः॥ ५९॥
हंससारससंकीर्णश्चक्रवाकोपशोभितः। अमृतद्रवसम्पूर्णस्तत्र भाति सरोवरः॥ ६०॥
अनेन वैदिका यान्ति तथाऽभ्यागतपूजकाः। दुर्गाभान्वोश्च ये भक्तास्तीर्थस्नाताश्च पर्वसु॥ ६१॥
ये मृता धर्मसंग्रामेऽनशनेन मृताश्च ये। वाराणस्यां गोगृहे च तीर्थतोये मृता विधे॥ ६२॥

सत्य और धर्ममें रहनेवाले, क्रोध और लोभसे रहित, पिता-मातामें भक्ति रखनेवाले, गुरुकी शुश्रूषामें लगे रहनेवाले, भूमिदान देनेवाले, गृहदान देनेवाले, गोदान देनेवाले, विद्या प्रदान करनेवाले, पुराणके वक्ता, श्रोता और पुराणोंका पारायण करनेवाले—ये सभी तथा अन्य पुण्यात्मा भी पूर्वद्वारसे धर्मराजके नगरमें प्रवेश करते हैं। ये सभी सुशील और शुद्ध बुद्धिवाले धर्मराजकी सभामें जाते हैं॥ ५६—५८॥ (धर्मराजके नगरमें जानेके लिये) दूसरा उत्तर-मार्ग है, जो सैकड़ों विशाल रथोंसे तथा शिविका आदि नरयानोंसे परिपूर्ण है। वह हरिचन्दनके वृक्षोंसे सुशोभित है॥ ५९॥ उस मार्गमें हंस और सारससे व्याप्त, चक्रवाकसे सुशोभित तथा अमृततुल्य जलसे परिपूर्ण एक मनोरम सरोवर है॥ ६०॥ इस मार्गसे वैदिक, अभ्यागतोंकी पूजा करनेवाले, दुर्गा और सूर्यके भक्त, पर्वोंपर तीर्थ-स्नान करनेवाले, धर्मसंग्राममें अथवा अनशन करके मृत्यु प्राप्त करनेवाले, वाराणसीमें, गोशालामें अथवा तीर्थ-जलमें

विधिवत् प्राण त्याग करनेवाले ॥ ६१-६२ ॥

ब्राह्मणार्थे स्वामिकार्ये तीर्थक्षेत्रेषु ये मृता:। ये मृता देवविध्वंसे योगाभ्यासेन ये मृता: ॥ ६३ ॥
सत्पात्रपूजका नित्यं महादानरताश्च ये। प्रविशन्त्युत्तरे द्वारे यान्ति धर्मसभां च ते ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणों अथवा अपने स्वामीके कार्यसे तथा तीर्थक्षेत्रमें मरनेवाले और जो देव-प्रतिमा आदिके विध्वंस होनेसे बचानेके प्रयासमें प्राणत्याग करनेवाले हैं, योगाभ्याससे प्राण त्यागनेवाले हैं, सत्पात्रोंकी पूजा करनेवाले हैं तथा नित्य महादान देनेवाले हैं, वे व्यक्ति उत्तरद्वारसे धर्मसभामें जाते हैं ॥ ६३-६४ ॥

तृतीय: पश्चिमो मार्गो रत्नमन्दिरमण्डित:। सुधारससदापूर्णदीर्घिकाभिर्विराजित: ॥ ६५ ॥
ऐरावतकुलोद्भूतमत्तमातङ्गसंकुल:। उच्चै:श्रवसमुत्पन्नहयरत्नसमन्वित: ॥ ६६ ॥
एतेनात्मपरा यान्ति सच्छास्त्रपरिचिन्तका:। अनन्यविष्णुभक्ताश्च गायत्रीमन्त्रजापका: ॥ ६७ ॥
परहिंसापरद्रव्यपरवादपराङ्मुखा:। स्वदारनिरता: सन्त: साग्निका वेदपाठका: ॥ ६८ ॥

तीसरा पश्चिमका मार्ग है, जो रत्नजटित भवनोंसे सुशोभित है, वह अमृतरससे सदा परिपूर्ण रहनेवाली बावलियोंसे विराजित है। वह मार्ग ऐरावत-कुलमें उत्पन्न मदोन्मत्त हाथियोंसे तथा उच्चै:श्रवासे उत्पन्न अश्वरत्नोंसे भरा है ॥ ६५-६६ ॥ इस मार्गसे आत्मतत्त्ववेत्ता, संत्-शास्त्रोंके परिचिन्तक, भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त, गायत्री मन्त्रका जप करनेवाले, दूसरोंकी हिंसा, दूसरोंके द्रव्य एवं दूसरोंकी निन्दासे पराङ्मुख रहनेवाले, अपनी पत्नीमें

संतुष्ट रहनेवाले, संत, अग्निहोत्री, वेदपाठी-ब्राह्मण गमन करते हैं ॥ ६७-६८ ॥

ब्रह्मचर्यव्रतधरा वानप्रस्थास्तपस्विनः । श्रीपादसंन्यासपराः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ६९ ॥
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नाः सर्वभूतहिते रताः । शिवविष्णुव्रतकराः कर्मब्रह्मसमर्पकाः ॥ ७० ॥
ऋणैस्त्रिभिर्विनिर्मुक्ताः पञ्चयज्ञरताः सदा । पितॄणां श्राद्धदातारः काले संध्यामुपासकाः ॥ ७१ ॥
नीचसङ्गविनिर्मुक्ताः सत्सङ्गतिपरायणाः । ऐतेऽप्सरोगणैर्युक्ता विमानवरसंस्थिताः ॥ ७२ ॥
सुधापानं प्रकुर्वन्तो यान्ति ते धर्ममन्दिरम् । विशन्ति पश्चिमद्वारे यान्ति धर्मसभान्तरे ॥ ७३ ॥
यमस्तानागतान् दृष्ट्वा स्वागतं वदते मुहुः । समुत्थानं च कुरुते तेषां गच्छति सम्मुखम् ॥ ७४ ॥

ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले, वानप्रस्थ आश्रमके नियमोंका पालन करनेवाले, तपस्वी, संन्यास-धर्मका पालन करनेवाले तथा श्रीचरण-संन्यासी एवं मिट्टीके ढेले, पत्थर और स्वर्णको समान समझनेवाले, ज्ञान एवं वैराग्यसे सम्पन्न, सभी प्राणियोंके हित-साधनमें निरत, शिव और विष्णुका व्रत करनेवाले, सभी कर्मोंको ब्रह्मको समर्पित करनेवाले, देव-ऋण, पितृ-ऋण एवं ऋषि-ऋण—इन तीनों ऋणोंसे विमुक्त, सदा पञ्चयज्ञ[1]में निरत रहनेवाले, पितरोंको श्राद्ध देनेवाले, समयसे संध्योपासन करनेवाले, नीचकी सङ्गतिसे अलग रहनेवाले, सत्पुरुषोंकी

---

१. (१) ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), (२) देवयज्ञ (होम), (३) भूतयज्ञ (इन्द्रादि देवोंसहित विभिन्न प्राणियोंके निमित्त घरके बाहर अन्नकी बलि देना) (४) पितृयज्ञ (पितरोंका तर्पण और श्राद्ध आदि) और (५) मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार आदि)।

सङ्गतिमें निष्ठा रखनेवाले—ये सभी जीव अप्सराओंके समूहोंसे युक्त श्रेष्ठ विमानमें बैठकर अमृतपान करते हुए

धर्मराजके भवनमें जाते हैं और वे उस भवनके पश्चिम द्वारसे प्रविष्ट होकर धर्मसभामें पहुँचते हैं ॥ ६९—७३ ॥ उन्हें आया हुआ देखकर धर्मराज बार-बार स्वागत-सम्भाषण करते हैं, उन्हें उठकर अभ्युत्थान देते हैं और उनके सम्मुख जाते हैं ॥ ७४ ॥

तदा चतुर्भुजो भूत्वा शंखचक्रगदासिभृत् । पुण्यकर्मरतानां च स्नेहान्मित्रवदाचरेत् ॥ ७५ ॥
सिंहासनं च ददते नमस्कारं करोति च । पादार्घं कुरुते पश्चात् पूज्यते चन्दनादिभिः ॥ ७६ ॥

उस समय धर्मराज (भगवान् विष्णुके समान) चतुर्भुज रूप और शङ्ख-चक्र-गदा तथा खड्ग धारण करके पुण्य करनेवाले जीवोंके साथ स्नेहपूर्वक मित्रवत् आचरण करते हैं। उन्हें (बैठनेके लिये) सिंहासन देते हैं, नमस्कार करते हैं और पाद्य, अर्घ्य आदि प्रदान करके चन्दनादिक पूजा-सामग्रियोंसे उनकी पूजा करते हैं ॥ ७५-७६ ॥

नमस्कुर्वन्तु भोः सभ्या ज्ञानिनं परमादरात् । एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥ ७७ ॥
भो भो बुद्धिमतां श्रेष्ठा नरकक्लेशभीरवः । भवद्भिः साधितं पुण्यैर्देवत्वं सुखदायकम् ॥ ७८ ॥
मानुषं दुर्लभं प्राप्य नित्यं यस्तु न साधयेत् । स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ७९ ॥
अस्थिरेण शरीरेण योऽस्थिरैश्च धनादिभिः । संचिनोति स्थिरं धर्मं स एको बुद्धिमान् नरः ॥ ८० ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यो धर्मसंचयः । गच्छध्वं पुण्यवत्स्थानं सर्वभोगसमन्वितम् ॥ ८१ ॥

(यम [धर्मराज] कहते हैं—) हे सभासदो! इस ज्ञानीको परम आदरपूर्वक नमस्कार कीजिये, यह हमारे मण्डलका भेदन करके ब्रह्मलोकमें जायगा। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और नरककी यातनासे भयभीत रहनेवाले पुण्यात्माओ! आप लोगोंने अपने पुण्य-कर्मानुष्ठानसे सुख प्रदान करनेवाला देवत्व प्राप्त कर लिया है। दुर्लभ मनुष्ययोनि प्राप्त करके जो नित्य वस्तु—धर्मका साधन नहीं करता, वह घोर नरकमें गिरता है, उससे बढ़कर अचेतन—अज्ञानी और कौन है? अस्थिर शरीरसे और अस्थिर धन आदिसे कोई एक बुद्धिमान् मनुष्य ही स्थिर धर्मका सञ्चयन करता है। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंको करके धर्मका सञ्चय करना चाहिये। आप लोग सभी भोगोंसे परिपूर्ण पुण्यात्माओंके स्थान स्वर्गमें जायँ— ॥ ७७—८१ ॥

इति धर्मवचः श्रुत्वा तं प्रणम्य सभां च ताम्। अमरैः पूज्यमानास्ते स्तूयमाना मुनीश्वरैः॥ ८२ ॥
विमानगणसंकीर्णाः प्रयान्ति परमं पदम्। केचिद्धर्मसभायां हि तिष्ठन्ति परमादरात्॥ ८३ ॥
उषित्वा तत्र कल्पान्तं भुक्त्वा भोगानमानुषान्। प्राप्नोति पुण्यशेषेण मानुष्यं पुण्यदर्शनम्॥ ८४ ॥
महाधनी च सर्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः। पुनः स्वात्मविचारेण ततो याति परां गतिम्॥ ८५ ॥
एतत् ते कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यमालयम्। इदं शृण्वन् नरो भक्त्या धर्मराजसभां व्रजेत्॥ ८६ ॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे धर्मराजनगरनिरूपणो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥



ऐसा धर्मराजका वचन सुनकर उन्हें और उनकी सभाको प्रणाम करके वे देवताओंके द्वारा पूजित और मुनीश्वरोंद्वारा स्तुत होकर विमानसमूहोंसे परम पदको जाते हैं और कुछ परम आदरके साथ धर्मराजकी सभामें ही रह जाते हैं॥ ८२—८३॥ और वहाँ एक कल्पपर्यन्त रहकर मनुष्योंके लिये दुर्लभ भोगोंका उपभोग करके (पुण्यात्मा पुरुष) शेष पुण्योंके अनुसार पुण्य-दर्शनवाले मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है॥ ८४॥ इस लोकमें वह महान् धनसम्पन्न, सर्वज्ञ तथा सभी शास्त्रोंमें पारङ्गत होता है और पुनः आत्मचिन्तनके द्वारा परम गतिको प्राप्त करता है॥ ८५॥ (हे गरुड!) तुमने यमलोकके विषयमें पूछा था, वह सब मैंने बता दिया, इसको भक्तिपूर्वक सुननेवाला व्यक्ति भी धर्मराजकी सभामें जाता है॥ ८६॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'धर्मराजनगरनिरूपण' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥



पंद्रहवाँ अध्याय

धर्मात्मा जनका दिव्यलोकोंका सुख भोगकर उत्तम कुलमें जन्म लेना, शरीरके व्यावहारिक तथा पारमार्थिक दो रूपोंका वर्णन, अजपाजपकी विधि, भगवत्प्राप्तिके साधनोंमें भक्तियोगकी प्रधानता

गरुड उवाच

धर्मात्मा स्वर्गतिं भुक्त्वा जायते विमले कुले। अतस्तस्य समुत्पत्तिं जननीजठरे वद॥ १ ॥
यथा विचारं कुरुते देहेऽस्मिन् सुकृती जनः। तथाऽहं श्रोतुमिच्छामि वद मे करुणानिधे॥ २ ॥

गरुडजीने कहा—धर्मात्मा व्यक्ति स्वर्गके भोगोंको भोगकर पुनः निर्मल कुलमें उत्पन्न होता है, इसलिये माताके गर्भमें उसकी उत्पत्ति कैसे होती है, इस विषयमें बताइये॥ १॥ हे करुणानिधे! पुण्यात्मा पुरुष इस देहके विषयमें जिस प्रकार विचार करता है, वह मैं सुनना चाहता हूँ, मुझे बताइये॥ २॥

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य परं गोप्यं वदामि ते। यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥ ३ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे तार्क्ष्य! तुमने ठीक पूछा है, मैं तुम्हें परम गोपनीय बात बताता हूँ जिसे जान

लेनेमात्रसे मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है॥ ३॥

वक्ष्यामि च शरीरस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्। ब्रह्माण्डगुणसम्पन्नं योगिनां धारणास्पदम्॥ ४॥

षट्चक्रचिन्तनं यस्मिन् यथा कुर्वन्ति योगिनः। ब्रह्मरन्ध्रे चिदानन्दरूपध्यानं तथा शृणु॥ ५॥

(पहले) मैं तुम्हें शरीरके पारमार्थिक स्वरूपके विषयमें बतलाता हूँ, जो ब्रह्माण्डके गुणोंसे सम्पन्न है और योगियोंके द्वारा धारण करनेयोग्य है॥ ४॥ इस पारमार्थिक शरीरमें जिस प्रकार योगीलोग षट्चक्रका चिन्तन करते हैं और ब्रह्मरन्ध्रमें सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मका (जिस प्रकार) ध्यान करते हैं, वह सब मुझसे सुनो॥ ५॥

शुचीनां श्रीमतां गेहे जायते सुकृती यथा। तथा विधानं नियमं तत्पित्रोः कथयामि ते॥ ६॥

ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम्। तावन्नालोकयेद्वक्त्रं पापं वपुषि सम्भवेत्॥ ७॥

पुण्यात्मा जीव पवित्र आचरण करनेवाले लक्ष्मीसम्पन्न गृहस्थोंके घरमें जैसे उत्पन्न होता है और उसके पिता एवं माताके विधान तथा नियम जिस प्रकारके होते हैं, उनके विषयमें तुमसे कहता हूँ॥ ६॥ स्त्रियोंके ऋतुकालमें चार दिनतक उनका त्याग कर देना चाहिये (उनसे दूर रहना चाहिये)। उतने समयतक उनका मुख भी नहीं देखना चाहिये; क्योंकि उस समय उनके शरीरमें पापका निवास रहता है[1]॥ ७॥

१. विश्वरूपके वधसे इन्द्रको लगी हुई ब्रह्महत्याका एक अंश स्त्रियोंको दिये जानेकी कथा तैत्तिरीयसंहिता, रामायण, शान्तिपर्व, बृहत्पराशरस्मृति तथा अनेक पुराणोंमें है। तैत्तिरीयसंहितामें रजस्वलाके साथ वार्तालाप, शयन तथा उसके हाथका अन्न-भक्षण वर्जित किया

स्नात्वा सचैलं सा नारी चतुर्थेऽहनि शुध्यति। सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने॥ ८॥

सप्ताहमध्ये यो गर्भः स भवेन्मलिनाशयः। प्रायशः सम्भवन्त्यत्र पुत्रास्त्वष्टाहमध्यतः॥ ९॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। पूर्वसप्तकमुत्सृज्य तस्माद्युग्मासु संविशेत्॥ १०॥
षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां सामान्याः समुदाहृताः। या वै चतुर्दशी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र वै॥ ११॥
गुणभाग्यनिधिः पुत्रस्तदा जायेत धार्मिकः। सा निशा प्राकृतैर्जीवैर्न लभ्येत कदाचन॥ १२॥

चौथे दिन वस्त्रोंसहित स्नान करनेके अनन्तर वह नारी शुद्ध होती है तथा एक सप्ताहके बाद पितरों एवं देवताओंके पूजन, अर्चन तथा व्रत करनेके योग्य होती है॥ ८॥ एक सप्ताहके मध्यमें जो गर्भधारण होता है, उससे मलिन मनोवृत्तिवाली सन्तानका जन्म होता है।[१] प्रायः ऋतु-कालके आठवें दिन गर्भाधानसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है॥ ९॥ ऋतुकालके अनन्तर युग्म रात्रियोंमें गर्भाधान होनेसे पुत्र और अयुग्म (विषम) रात्रियोंमें गर्भाधानसे कन्याकी उत्पत्ति होती है, इसलिये पूर्वकी सात रात्रियोंको छोड़कर युग्मरात्रियोंमें ही

गया है। सुश्रुतसंहिता, (चिकित्सास्थान)-के अनुसार रजस्वलागमनसे नेत्र-ज्योति, आयु और तेज नष्ट होते हैं। मनु (४।४१)-के अनुसार रजस्वलागमनसे प्रज्ञा, तेज, बल, चक्षु और आयु क्षीण होते हैं।

१. सुश्रुतसंहिता (शरीरस्थानम् २।३३)-के अनुसार रजस्वला स्त्रीमें प्रथम और द्वितीय दिन गर्भाधान होनेपर उत्पन्न सन्तान प्रसवकालमें और प्रसूतिगृहमें ही मर जाती है और तीसरे दिन गर्भाधानके फलस्वरूप उत्पन्न पुत्र अङ्गहीन और अल्पायु होता है। लिङ्गपुराणके अनुसार ऋतुमती स्त्रीमें चौथे दिन गर्भाधानसे उत्पन्न पुत्र अल्पायु, विद्याहीन, व्रतभ्रष्ट, पतित, परस्त्रीगामी और दरिद्र होता है।

समागम करना चाहिये॥ १०॥ स्त्रियोंके रजोदर्शनसे सामान्यतः सोलह रात्रियोंतक ऋतुकाल बताया गया है। चौदहवीं रात्रिको गर्भाधान होनेपर गुणवान्, भाग्यवान् और धार्मिक पुत्रकी उत्पत्ति होती है। प्राकृत जीवों (सामान्य मनुष्यों)-को गर्भाधानके निमित्त उस रात्रिमें गर्भाधानका अवसर प्राप्त नहीं होता॥ ११-१२॥

पञ्चमेऽहनि नारीणां कार्यं मधुरभोजनम्। कटु क्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः॥ १३॥
तत्क्षेत्रमौषधीपात्रं बीजं चाप्यमृतायितम्। तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक्फलमवाप्नुयात्॥ १४॥
ताम्बूलपुष्पश्रीखण्डैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्। धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत् पुमान्॥ १५॥

पाँचवें दिन स्त्रीको मधुर भोजन करना चाहिये। कड़ुआ, खारा, तीखा तथा उष्ण भोजनसे दूर रहना चाहिये॥ १३॥ तब स्त्रीका वह क्षेत्र (गर्भाशय) ओषधिका पात्र हो जाता है और उसमें संस्थापित बीज अमृतकी तरह सुरक्षित रहता है। उस औषधि-क्षेत्रमें बीजवपन (गर्भाधान) करनेवाला स्वामी अच्छे फल (स्वस्थ संतान)-को प्राप्त करता है॥ १४॥ ताम्बूल खाकर, पुष्प और श्रीखण्ड (चन्दन)-से युक्त होकर तथा पवित्र वस्त्र धारण करके मनमें धार्मिक भावोंको रखकर पुरुषको सुन्दर शय्यापर संवास करना चाहिये॥ १५॥

निषेकसमये यादृङ्नरचित्तविकल्पना। तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्विशति कुक्षिगः॥ १६॥
चैतन्यं बीजभूतं हि नित्यं शुक्रेऽप्यवस्थितम्। कामश्चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयात्॥ १७॥
तदा द्रावमवाप्नोति योषिद्गर्भाशये नरः। शुक्रशोणितसंयोगात्पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते॥ १८॥

गर्भाधानके समय पुरुषकी मनोवृत्ति जिस प्रकारकी होती है, उसी प्रकारके स्वभाववाला जीव गर्भमें प्रविष्ट होता है॥ १६॥ बीजका स्वरूप धारण करके चैतन्यांश पुरुषके शुक्रमें स्थित रहता है। पुरुषकी कामवासना, चित्तवृत्ति तथा शुक्र जब एकत्वको प्राप्त होते हैं, तब स्त्रीके गर्भाशयमें पुरुष द्रवित (स्खलित) होता है, स्त्रीके गर्भाशयमें शुक्र और शोणितके संयोगसे पिण्डकी उत्पत्ति होती है॥ १७-१८॥

परमानन्ददः पुत्रो भवेद्गर्भगतः कृती। भवन्ति तस्य निखिलाः क्रियाः पुंसवनादिकाः॥ १९॥
जन्म प्राप्नोति पुण्यात्मा ग्रहेषूच्चगतेषु च। तज्जन्मसमये विप्राः प्राप्नुवन्ति धनं बहु॥ २०॥
विद्याविनयसम्पन्नो वर्धते पितृवेश्मनि। सतां संगेन स भवेत्सर्वागमविशारदः॥ २१॥
दिव्याङ्गनादिभोक्ता स्यात्तारुण्ये दानवान् धनी। पूर्वं कृततपस्तीर्थमहापुण्यफलोदयात्॥ २२॥

गर्भमें आनेवाला सुकृतीपुत्र पिता-माताको परम आनन्द देनेवाला होता है और उसके पुंसवन आदि समस्त संस्कार किये जाते हैं॥ १९॥ पुण्यात्मा पुरुष ग्रहोंकी उच्च स्थितिमें[1] जन्म प्राप्त करता है। ऐसे पुत्रकी उत्पत्तिके समय ब्राह्मण बहुत सारा धन प्राप्त करते हैं॥ २०॥ वह पुत्र विद्या और विनयसे सम्पन्न होकर पिताके घरमें बढ़ता है और सत्पुरुषोंके संसर्गसे सभी शास्त्रोंमें पाण्डित्य-सम्पन्न हो जाता है॥ २१॥ वह तरुणावस्थामें दिव्य अङ्गना

१. मेष राशिमें सूर्य, वृष राशिमें चन्द्र, मकर राशिमें मङ्गल, कन्या राशिमें बुध, कर्क राशिमें गुरु, मीन राशिमें शुक्र और तुला राशिमें शनि उच्चका होता है (ताजिकनीलकण्ठी, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र)।

आदिका योग प्राप्त करता है और दानशील तथा धनी होता है। पूर्वमें किये हुए तपस्या, तीर्थसेवन आदि महापुण्योंके फलका उदय होनेपर वह नित्य आत्मा और अनात्मा (अर्थात् परमात्मा और उससे भिन्न पदार्थों)-के विषयमें विचार करने लगता है॥ २२॥

ततश्च यतते नित्यमात्मानात्मविचारणे। अध्यारोपाऽपवादाभ्यां कुरुते ब्रह्मचिन्तनम्॥ २३॥
अस्यासङ्गावबोधाय ब्रह्मणोऽन्वयकारिणः। क्षित्याद्यनात्मवर्गस्य गुणांस्ते कथयाम्यहम्॥ २४॥
क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता वायुराकाश एव च। स्थूलभूता इमे प्रोक्ताः पिण्डोऽयं पाञ्चभौतिकः॥ २५॥

जिससे उसे यह बोध होता है कि सांसारिक मनुष्य भ्रमवश रस्सीमें सर्पके आरोपकी भाँति वस्तु अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अवस्तु अर्थात् अज्ञानादि जगत्-प्रपञ्चका अध्यारोप करता है। तब अपवाद (अर्थात् मिथ्याज्ञान या भ्रमज्ञानके निराकरण)-से रस्सीमें सर्पकी भ्रान्तिके निराकरणपूर्वक रस्सीकी वास्तविकताके ज्ञानके समान ब्रह्मरूपी सत्य वस्तुमें अज्ञानादि जगत्-प्रपञ्चकी मिथ्या प्रतीतिके दूर हो जानेपर और ब्रह्मरूप सत्य वस्तुका सम्यक् ज्ञान हो जानेपर वह उसी सच्चिदानन्द ब्रह्मका चिन्तन करने लगता है॥ २३॥ सांसारिक पदार्थरूप असत् (अवस्तु) या अनात्म पदार्थोंसे अन्वित (या सम्बद्ध) होनेवाले इस ब्रह्मके सङ्गरहित शुद्धस्वरूपके सम्यक् बोधके लिये मैं तुम्हें इसके साथ अन्वित या सम्बद्ध प्रतीत होनेवाले पृथिवी आदि अनात्मवर्गके अर्थात् पञ्चभूतों आदिके गुणोंको बतलाता हूँ॥ २४॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—ये (पाँच) स्थूलभूत कहे जाते हैं। यह शरीर—इन्हीं

पाँच भूतोंसे बनता है, इसीलिये पाञ्चभौतिक कहलाता है॥ २५॥

त्वगस्थिनाड्यो रोमाणि मांसं चैव खगेश्वर। एते पञ्चगुणा भूमेर्मया ते परिकीर्तिताः॥ २६॥
लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम्। अपां पञ्चगुणाः प्रोक्तास्तेजसोऽपि निशामय॥ २७॥

हे खगेश्वर! त्वचा, हड्डियाँ, नाडियाँ, रोम तथा मांस—ये पाँच भूमिके गुण हैं, यह मैंने तुम्हें बतलाया है॥ २६॥ लार, मूत्र, वीर्य, मज्जा तथा पाँचवा रक्त—ये पाँच जलके गुण कहे गये हैं। अब तेजके गुणोंको सुनो॥ २७॥

क्षुधा तृष्णा तथाऽऽलस्यं निद्रा कान्तिस्तथैव च। तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः॥ २८॥
आकुञ्चनं धावनं च लंघनं च प्रसारणम्। चेष्टितं चेति पञ्चैव गुणा वायोः प्रकीर्तिताः॥ २९॥
घोषश्छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः। आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः॥ ३०॥

हे तार्क्ष्य! योगियोंके द्वारा सर्वत्र क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा और कान्ति—ये पाँच गुण तेजके कहे गये हैं॥ २८॥ सिकुड़ना, दौड़ना, लाँघना, फैलाना तथा चेष्टा करना—ये पाँच गुण वायुके कहे गये हैं॥ २९॥ घोष (शब्द), छिद्र, गाम्भीर्य, श्रवण और सर्वसंश्रय (समस्त तत्त्वोंको आश्रय प्रदान करना)—ये पाँच गुण तुम्हें प्रयत्नपूर्वक आकाशके जानने चाहिये॥ ३०॥

मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। अन्तःकरणमुद्दिष्टं पूर्वकर्माधिवासितम्॥ ३१॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं ज्ञानेन्द्रियाणि च। वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि च॥ ३२॥

दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः । ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च देवताः परिकीर्तिताः ॥ ३३ ॥

पूर्वजन्मके कर्मोंसे अधिवासित मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त—यह अन्तःकरणचतुष्टय कहा जाता है ॥ ३१ ॥ श्रोत्र (कान), त्वक्, जिह्वा, चक्षु (नेत्र), नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा वाक्, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ—ये कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ३२ ॥ दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता और अश्विनीकुमार—ये ज्ञानेन्द्रियोंके तथा वह्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र तथा प्रजापति—ये कर्मेन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं ॥ ३३ ॥

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णाख्या तृतीयका । गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ॥ ३४ ॥
अलम्बुषा कुहूश्चापि शंखिनी दशमी तथा । पिंडमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडिकाः ॥ ३५ ॥
प्राणोऽपानः समानाख्य उदानो व्यान एव च । नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ३६ ॥

देहके मध्यमें इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी—ये दस प्रधान नाडियाँ स्थित हैं ॥ ३४-३५ ॥ प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय—ये दस वायु हैं ॥ ३६ ॥

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले । उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ३७ ॥
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः । कृकलः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ ३८ ॥
न जहाति मृतं वाऽपि सर्वव्यापी धनञ्जयः । कवलैर्भुक्तमन्नं हि पुष्टिदं सर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥

हृदयमें प्राणवायु, गुदामें अपानवायु, नाभिमण्डलमें समानवायु, कण्ठदेशमें उदानवायु और सम्पूर्ण शरीरमें व्यानवायु व्याप्त रहते हैं॥ ३७॥ उद्गार (डकार या वमन)-में नागवायु हेतु है, जिसके द्वारा उन्मीलन होता है वह कूर्मवायु कहा जाता है। कृकल नामक वायु क्षुधाको उद्दीप्त करता है। देवदत्त नामक वायु जम्भाई कराता है, सर्वव्यापी धनञ्जयवायु मृत्युके पश्चात् भी मृतशरीरको नहीं छोड़ता। ग्रासके रूपमें खाया हुआ अन्न सभी प्राणियोंके शरीरको पुष्ट करता है॥ ३८-३९॥

नयते व्यानको वायुः सारांशं सर्वनाडिषु। आहारो भुक्तमात्रो हि वायुना क्रियते द्विधा॥ ४०॥
संप्रविश्य गुदे सम्यक्पृथगन्नं पृथग्जलम्। ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा कृत्वाऽन्नं च जलोपरि॥ ४१॥
अग्नेश्चाधः स्वयंप्राणः स्थित्वाऽग्निं धमते शनैः। वायुना ध्मायमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम्॥ ४२॥
कुरुते व्यानको वायुर्विष्वक्सम्प्रापयेद्रसम्। द्वारैर्द्वादशभिर्भिन्नं किट्टं देहाद्बहिः स्त्रवेत्॥ ४३॥

उस पुष्टिकारक अन्नके सारांशभूत रसको व्यान नामका वायु शरीरकी सभी नाडियोंमें पहुँचाता है। उस वायुके द्वारा भुक्त आहार दो भागोंमें विभक्त कर दिया जाता है॥ ४०॥ गुदाभागमें प्रविष्ट होकर सम्यक् रूपसे अन्न और जलको पृथक्-पृथक् करके अग्निके ऊपर जल और जलके ऊपर अन्नको करके अग्निके नीचे वह प्राणवायु स्वतः स्थित होकर उस अग्निको धीरे-धीरे धौंकता है। उसके द्वारा धौंके जानेपर अग्नि किट्ट (मल) और रसको पृथक्-पृथक् कर देता है॥ ४१-४२॥ तब वह व्यानवायु उस रसको सम्पूर्ण शरीरमें पहुँचाता है। रससे पृथक् किया गया

किट्ट (मल) शरीरके कर्ण, नासिका आदि बारह छिद्रोंसे बाहर निकलता है॥ ४३॥

कर्णाऽक्षिनासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्नखा गुदम्। गुह्यं शिरा वपुर्लोम मलस्थानानि चक्षते॥ ४४॥
एवं सर्वे प्रवर्तन्ते स्वस्वकर्मणि वायवः। उपलभ्यात्मनः सत्तां सूर्याल्लोकं यथा जनाः॥ ४५॥

कान, आँख, नासिका, जिह्वा, दन्त, नाभि, नख, गुदा, गुह्याङ्ग तथा शिराएँ और समस्त शरीर (में स्थित छिद्र) एवं लोम—ये बारह मलके (निवास-) स्थान हैं॥ ४४॥ जैसे सूर्यसे प्रकाश प्राप्त करके प्राणी अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं, उसी प्रकार (चैतन्यांशसे सत्ता प्राप्त करके) ये सभी वायु अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं॥ ४५॥

इदानीं नरदेहस्य शृणु रूपद्वयं खग। व्यावहारिकमेकं च द्वितीयं पारमार्थिकम्॥ ४६॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च रोमाणि व्यावहारिके। सप्तलक्षाणि केशाः स्युर्नखाः प्रोक्तास्तु विंशतिः॥ ४७॥
द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ताः सामान्याद्विनतासुत। मांसं पलसहस्रं तु रक्तं पलशतं स्मृतम्॥ ४८॥
पलानि दश मेदास्तु त्वक्पलानि च सप्ततिः। पलद्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम्॥ ४९॥
शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं कुडवं शोणितं स्मृतम्। षष्ट्युत्तरं च त्रिशतमस्थ्नां देहे प्रकीर्तितम्॥ ५०॥
नाड्यः स्थूलाश्च सूक्ष्माश्च कोटिशः परिकीर्तिताः। पित्तं पलानि पञ्चाशत्तदर्धं श्लेष्मणस्तथा॥ ५१॥

हे खग! अब नरदेहके दो रूपोंके विषयमें सुनो—एक व्यावहारिक तथा दूसरा पारमार्थिक है॥ ४६॥ हे विनतासुत! व्यावहारिक शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोम, सात लाख केश, बीस नख तथा बत्तीस

दाँत सामान्यत: बताये गये हैं। इस शरीरमें एक हजार पल[1] मांस, सौ पल रक्त, दस पल मेदा, सत्तर

पल त्वचा, बारह पल मज्जा और तीन पल महारक्त होता है॥ ४७—४९॥ पुरुषके शरीरमें दो कुडव[2] शुक्र और स्त्रीके शरीरमें एक कुडव शोणित (रज) होता है। सम्पूर्ण शरीरमें तीन सौ साठ हड्डियाँ कही गयी हैं॥ ५०॥ शरीरमें स्थूल और सूक्ष्मरूपसे करोड़ों नाडियाँ हैं। इसमें पचास पल पित्त और उसका आधा अर्थात् पच्चीस पल श्लेष्मा (कफ) बताया गया है॥ ५१॥

सततं जायमानं तु विण्मूत्रं चाप्रमाणत:। एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं व्यावहारिकम्॥ ५२॥
भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागरा:। आदित्याद्या ग्रहा: सन्ति शरीरे पारमार्थिके॥ ५३॥
पारमार्थिकदेहे हि षट्चक्राणि भवन्ति च। ब्रह्माण्डे ये गुणा: प्रोक्तास्तेऽप्यस्मिन्नेव संस्थिता:॥ ५४॥

सदा होनेवाले विष्ठा और मूत्रका प्रमाण निश्चित नहीं किया गया है। व्यावहारिक शरीर इन (उपर्युक्त) गुणोंसे युक्त है॥ ५२॥ पारमार्थिक शरीरमें सभी चौदहों भुवन, सभी पर्वत, सभी द्वीप एवं सभी सागर तथा सूर्य आदि ग्रह (सूक्ष्मरूपसे) विद्यमान रहते हैं॥ ५३॥ पारमार्थिक शरीरमें मूलाधार आदि छ: चक्र[3] होते हैं। ब्रह्माण्डमें जो गुण कहे गये हैं, वे सभी इस शरीरमें स्थित हैं॥ ५४॥

१. पल—६४ माशेकी एक तौल, २. कुडव—कुडवं दशमाषकं—दस माशेका एक कुडव होता है। ३. इन चक्रोंके विवरणके लिये आगे श्लोक ७२ से ८२ तक देखें।

तानहं ते प्रवक्ष्यामि योगिनां धारणास्पदान्। येषां भावनया जन्तुर्भवेद्वैराजरूपभाक्॥ ५५॥

पादाधस्तात्तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा। जानुनोः सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम्॥ ५६॥
तलातलं सक्थिमूले गुह्यदेशे रसातलम्। पातालं कटिसंस्थं च सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः॥ ५७॥

योगियोंके धारणास्पद उन गुणोंको मैं बताता हूँ, जिनकी भावना करनेसे जीव विराट् स्वरूपका भागी हो जाता है॥ ५५॥ पैरके तलवेमें तललोक तथा पैरके ऊपर वितललोक जानना चाहिये। इसी प्रकार जानुमें सुतल-लोक और जाँघोंमें महातल जानना चाहिये। सक्थिके मूलमें तलातल, गुह्यस्थानमें रसातल, कटिप्रदेशमें पाताल—(इस प्रकार पैरोंके तलवोंसे लेकर कटिपर्यन्त) सात अधोलोक कहे गये हैं॥ ५६-५७॥

भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वके। स्वर्लोकं हृदये विद्यात् कण्ठदेशे महस्तथा॥ ५८॥
जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके। सत्यलोकं ब्रह्मरन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश॥ ५९॥
त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधः कोणे च मन्दरः। दक्षकोणे च कैलासो वामकोणे हिमाचलः॥ ६०॥
निषधश्चोर्ध्वरेखायां दक्षायां गन्धमादनः। रमणो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः॥ ६१॥

नाभिके मध्यमें भूर्लोक, नाभिके ऊपर भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्लोक, कण्ठमें महर्लोक, मुखमें जनलोक, ललाटमें तपोलोक और ब्रह्मरन्ध्रमें सत्यलोक स्थित है। इस प्रकार चौदहों लोक पारमार्थिक शरीरमें स्थित हैं॥ ५८-५९॥ त्रिकोणके मध्यमें मेरु, अधःकोणमें मन्दर, दाहिने कोणमें कैलास, वामकोणमें हिमाचल,

ऊर्ध्वरेखामें निषध, दाहिनी ओरकी रेखामें गन्धमादन तथा बायीं ओरकी रेखामें रमणाचल नामक पर्वत स्थित है। ये सात कुलपर्वत इस पारमार्थिक शरीरमें हैं॥ ६०-६१॥

अस्थिस्थाने भवेज्जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः। कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च॥ ६२॥
त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये। नखस्थं पुष्करं विद्यात् सागरास्तदनन्तरम्॥ ६३॥

अस्थिमें जम्बूद्वीप, मज्जामें शाकद्वीप, मांसमें कुशद्वीप, शिराओंमें क्रौञ्चद्वीप, त्वचामें शाल्मलीद्वीप, रोमसमूहमें गोमेदद्वीप और नखमें पुष्करद्वीपकी स्थिति जाननी चाहिये। तत्पश्चात् सागरोंकी स्थिति इस प्रकार है— ॥ ६२-६३॥

क्षारोदो हि भवेन्मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः। सुरोदधिः श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः॥ ६४॥
रसोदधिं रसे विद्याच्छोणिते दधिसागरः। स्वादूदो लम्बिकास्थाने जानीयाद् विनतासुत॥ ६५॥
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः। लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये ज्ञः प्रकीर्तितः॥ ६६॥
विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः। नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः॥ ६७॥
वायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम्। एवं सर्वस्वरूपेण चिन्तयेदात्मनस्तनुम्॥ ६८॥
सदा प्रभातसमये बद्धपद्मासनः स्थितः। षट्चक्रचिन्तनं कुर्याद्यथोक्तमजपाक्रमम्॥ ६९॥

हे विनतासुत! क्षारसमुद्र मूत्रमें, क्षीरसागर दूधमें, सुराका सागर श्लेष्म (कफ)-में, घृतका सागर मज्जामें,

रसका सागर शरीरस्थ रसमें और दधिसागर रक्तमें स्थित समझना चाहिये। स्वादूदकसागरको लम्बिकास्थान (कण्ठके लटकते हुए भाग अथवा उपजिह्वा या काकल)-में समझना चाहिये॥ ६४-६५॥ नादचक्रमें सूर्य, बिन्दुचक्रमें चन्द्रमा, नेत्रोंमें मङ्गल और हृदयमें बुधको स्थित समझना चाहिये। विष्णुस्थान अर्थात् नाभिमें स्थित मणिपूरक चक्रमें बृहस्पति तथा शुक्रमें शुक्र स्थित हैं, नाभिस्थान नाभि (गोलक)-में शनैश्चर स्थित है और मुखमें राहु स्थित कहा गया है। वायुस्थानमें केतु स्थित है, इस प्रकार समस्त ग्रहमण्डल इस पारमार्थिक शरीरमें विद्यमान है। इस प्रकार अपने इस शरीरमें समस्त ब्रह्माण्डका चिन्तन करना चाहिये॥ ६६—६८॥ प्रभातकालमें सदा पद्मासनमें स्थित होकर षट्चक्रोंका चिन्तन करे और यथोक्त क्रमसे अजपा-जप करे॥ ६९॥

अजपानाम गायत्री मुनीनां मोक्षदायिनी। अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७०॥
शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्येऽहमजपाक्रममुत्तमम्। यं कृत्वा सर्वदा जीवो जीवभावं विमुञ्चति॥ ७१॥
मूलाधारः स्वाधिष्ठानं मणिपूरकमेव च। अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते॥ ७२॥
मूलाधारे लिङ्गदेशे नाभ्यां हृदि च कण्ठगे। भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत्॥ ७३॥
आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालान्तषट्पत्रकम्।
रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यं फकारान्तकं पत्रैर्द्वादशभिः स्वनाहतपुरं हैमं कठान्तावृतम्॥ ७४॥

अजपा नामकी गायत्री मुनियोंको मोक्ष देनेवाली है। इसके सङ्कल्पमात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७०॥ हे तार्क्ष्य! सुनो, मैं तुम्हें अजपा-जपका उत्तम क्रम बताता हूँ—जिसको सर्वदा करनेसे जीव जीवभावसे मुक्त हो जाता है॥ ७१॥ मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा—इन्हें षट्चक्र कहा जाता है॥ ७२॥ इन चक्रोंका क्रमशः मूलाधार (गुद प्रदेशके ऊपर)-में, लिङ्गदेशमें, नाभिमें, हृदयमें, कण्ठमें, भौंहोंके मध्यमें तथा ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार)-में चिन्तन करना चाहिये॥ ७३॥ मूलाधारचक्र चतुर्दलाकार, अग्निके समान और व से स पर्यन्त वर्णों (अर्थात् ब, श, ष और स)-का आश्रय है। स्वाधिष्ठानचक्र सूर्यके समान दीप्तिमान् ब से लेकर ल पर्यन्त वर्णों (अर्थात् ब, भ, म, य, र, ल)-का आश्रयस्थान और षड्दलाकार है। मणिपूरकचक्र रक्तिम आभावाला, दशदलाकार और ड से लेकर फ पर्यन्त वर्णों (अर्थात् ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ)-का आधार है। अनाहतचक्र द्वादशदलाकार, स्वर्णिम आभावाला तथा क से ठ पर्यन्त वर्णों (अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ)-से युक्त है॥ ७४॥

पत्रैः सस्वरषोडशैः शशधरज्योतिर्विशुद्धाम्बुजं हंसेत्यक्षरयुग्मकं द्व्यदलं रक्ताभमात्राम्बुजम्।
तस्मादूर्ध्वगतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं सत्यानन्दमयं सदा शिवमयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम्॥ ७५॥
गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः। व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमाच्चक्रेषु चिन्तयेत्॥ ७६॥
एकविंशत्सहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च। अहोरात्रेण श्वासस्य गतिः सूक्ष्मा स्मृता बुधैः॥ ७७॥

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंसो हंसेति मन्त्रेण जीवो जपति तत्त्वतः॥ ७८॥

विशुद्धचक्र षोडशदलाकार, सोलह स्वरों (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः)-से युक्त कमल और चन्द्रमाके समान कान्तिवाला होता है, आज्ञाचक्र 'हं सः' इन दो अक्षरोंसे युक्त, द्विदलाकार और रक्तिम वर्णका है। उसके ऊपर (ब्रह्मरन्ध्रमें) देदीप्यमान सहस्रदलकमलाकारचक्र है, जो कि सदा सत्यमय, आनन्दमय, शिवमय, ज्योतिर्मय और शाश्वत है॥ ७५॥ इन चक्रोंमें क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीवात्मा, गुरु तथा व्यापक परब्रह्मका चिन्तन करना चाहिये। अर्थात् मूलाधारचक्रमें गणेशका, स्वाधिष्ठानचक्रमें ब्रह्माजीका, मणिपूरकचक्रमें विष्णुका, अनाहतचक्रमें शिवका, विशुद्धचक्रमें जीवात्माका, आज्ञाचक्रमें गुरुका और सहस्रारचक्रमें सर्वव्यापी परब्रह्मका चिन्तन करना चाहिये॥ ७६॥ विद्वानोंने एक दिन-रातमें २१६०० श्वासोंकी सूक्ष्मगति कही है। 'हं' का उच्चारण करते हुए श्वास बाहर निकलता है और 'सः' की ध्वनि करते हुए अंदर प्रविष्ट होता है। इस प्रकार तात्त्विकरूपसे जीव 'हंसः, हंसः' इस मन्त्र (से परमात्मा)-का निरन्तर जप करता रहता है॥ ७७-७८॥

षट्शतं गणनाथाय षट्सहस्रं तु वेधसे। षट्सहस्रं च हरये षट्सहस्रं हराय च॥ ७९॥
जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा। चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत्॥ ८०॥
एतांश्चक्रगतान् ब्रह्म मयूखान् मुनयोऽमरान्। सत्सम्प्रदायवेत्तारश्चिन्तयन्त्यरुणादयः॥ ८१॥

जीवके द्वारा अहोरात्रमें किये जानेवाले इस अजपा-जपके छः सौ मन्त्र गणेशके लिये, छः हजार ब्रह्माके लिये, छः हजार विष्णुके लिये, छः हजार शिवके लिये, एक हजार जीवात्माके लिये, एक हजार गुरुके लिये और एक हजार मन्त्रजप चिदात्माके लिये निवेदित करने चाहिये॥ ७९-८०॥ श्रेष्ठ सम्प्रदायवेत्ता अरुण आदि मुनि इन षट्चक्रोंमें ब्रह्ममयूख (किरण)-के रूपमें स्थित गणेश आदि देवताओंका चिन्तन करते हैं॥ ८१॥

शुकादयोऽपि मुनयः शिष्यानुपदिशन्ति च। अतः प्रवृत्तिं महतां ध्यात्वा ध्यायेत्सदा बुधः॥ ८२॥
कृत्वा च मानसीं पूजां सर्वचक्रेष्वनन्यधीः। ततो गुरूपदेशेन गायत्रीमजपां जपेत्॥ ८३॥
अधोमुखे ततो रन्ध्रे सहस्रदलपङ्कजे। हंसगं श्रीगुरुं ध्यायेद्वराभयकराम्बुजम्॥ ८४॥

शुक आदि मुनि भी अपने शिष्योंको इनका उपदेश करते हैं। अतः महापुरुषोंकी प्रवृत्तिको ध्यानमें रखकर विद्वानोंको सदा इन चक्रोंमें देवताओंका ध्यान करना चाहिये॥ ८२॥ सभी चक्रोंमें अनन्यभावसे उन देवताओंकी मानस पूजा करके गुरुके उपदेशके अनुसार अजपा गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ८३॥ इसके बाद ब्रह्मरन्ध्रमें अधोमुखरूपमें स्थित सहस्रदलकमलमें हंसपर विराजमान, वर तथा अभयमुद्रायुक्त दोनों हस्तकमलोंकी स्थितिवाले श्रीगुरुका ध्यान करना चाहिये॥ ८४॥

क्षालितं चिन्तयेद्देहं तत्पादामृतधारया। पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्तत्स्तवेन च॥ ८५॥

ततः कुण्डलिनीं ध्यायेदारोहादवरोहतः। षट्चक्रकृतसञ्चारां सार्धत्रिवलयां स्थिताम्॥ ८६॥

ततो ध्यायेत् सुषुम्णाख्यं धाम रन्ध्राद् बहिर्गतम्। तथा तेन गता यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ८७॥
ततो मच्चिन्तितं रूपं स्वज्योतिः सनातनम्। सदानन्दं सदा ध्यायेन्मुहूर्ते ब्राह्मसंज्ञके॥ ८८॥
एवं गुरूपदेशेन मनो निश्चलतां नयेत्। न तु स्वेन प्रयत्नेन तद्विना पतनं भवेत्॥ ८९॥

गुरुचरणोंसे निकली हुई अमृतमयी धारासे अपने शरीरको प्रक्षालित होता हुआ-सा चिन्तन करे। फिर पञ्चोपचारसे पूजा करके स्तुतिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये॥ ८५॥ तदनन्तर कुण्डलिनीका ध्यान करना चाहिये, जो षट्चक्रोंमें साढ़े तीन वलयमें स्थित है और आरोह तथा अवरोहके रूपमें षट्चक्रमें संचरण करती है॥ ८६॥ तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्रसे बहिर्गत सुषुम्णा नामक धाम (प्रकाशमार्ग)-का ध्यान करना चाहिये। उस मार्गसे जानेवाले पुरुष विष्णुके परम पदको प्राप्त करते हैं॥ ८७॥ इसके अनन्तर ब्राह्म[1] नामक मुहूर्तमें मेरे द्वारा चिन्तित आनन्दस्वरूप स्वप्रकाश, सनातनरूपका सदा ध्यान करना चाहिये॥ ८८॥ इस प्रकार गुरुके उपदेशसे मनको निश्चल बनाये, अपने प्रयत्नसे ऐसा नहीं करे; क्योंकि गुरुके उपदेशके बिना साधकका पतन हो सकता है॥ ८९॥

अन्तर्यागं विधायैवं बहिर्यागं समाचरेत्। स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा कुर्याद्धरिहरार्चनम्॥ ९०॥

१. सूर्योदयसे चार घड़ी (लगभग डेढ़ घण्टे) पूर्वका समय ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है।

देहाभिमानिनामन्तर्मुखीवृत्तिर्न जायते । अतस्तेषां तु मद्भक्तिः सुकरा मोक्षदायिनी ॥ ११ ॥
तपोयोगादयो मोक्षमार्गाः सन्ति तथापि च । समीचीनस्तु मद्भक्तिमार्गः संसरतामिह ॥ १२ ॥
ब्रह्मादिभिश्च सर्वज्ञैरयमेव विनिश्चितः । त्रिवारं वेदशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥ १३ ॥

इस प्रकार अन्तर्याग[1] सम्पन्न करके बहिर्याग[2] का अनुष्ठान करना चाहिये। स्नान तथा संध्या आदि कर्मोंको करके विष्णु और शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥ ९० ॥ देहका अभिमान रखनेवाले (अर्थात् पाञ्चभौतिक शरीरको ही अपना शरीर समझनेवाले) व्यक्तियोंकी वृत्ति अन्तर्मुखी नहीं हो सकती। इसलिये उनके लिये सरलतापूर्वक की जा सकनेवाली मेरी भक्ति ही मोक्षसाधिका हो सकती है ॥ ९१ ॥ यद्यपि तपस्या और योगसाधना आदि भी मोक्षके मार्ग हैं तो भी इस संसारचक्रमें फँसे हुए व्यक्तियोंके उद्धारके लिये मेरा भक्तिमार्ग ही समीचीन उपाय है ॥ ९२ ॥ ब्रह्मा आदि देवोंने वेद और शास्त्रका पुनः-पुनः विचार करके तीन बार यही सिद्धान्त सुनिश्चित किया है ॥ ९३ ॥

यज्ञादयोऽपि सद्धर्माश्चित्तशोधनकारकाः । फलरूपा च मद्भक्तिस्तां लब्ध्वा नावसीदति ॥ १४ ॥

१-२. अन्तर्यागं मानसोपचारैः पूर्वोक्तचक्रेषु श्रीगणेशादिपूजनं बहिर्यागं यथालब्धोपचारैः श्रीहरिहरपूजनम्।

अर्थात् मानसिक उपचारोंके द्वारा पूर्वोक्त स्वाधिष्ठानादि चक्रोंमें श्रीगणेश आदि देवोंका पूजन अन्तर्याग कहलाता है और उपलब्ध उपचारोंसे श्रीविष्णु तथा श्रीशिवका पूजन बहिर्याग कहलाता है।

एवमाचरणं तार्क्ष्य करोति सुकृती नरः। संयोगेन च मद्भक्त्या मोक्षं याति सनातनम्॥ ९५॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥



यज्ञादि सद्धर्म भी अन्तःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं और इस शुद्धिके फलस्वरूप मेरी भक्ति प्राप्त होती है, जिसे प्राप्त करके व्यक्ति पुनः जन्म-मरणादि दुःखोंसे पीडित नहीं होता॥ ९४॥ हे तार्क्ष्य! जो सुकृती मनुष्य इस प्रकारका आचरण करता है, वह मेरी भक्तिके योगसे सनातन मोक्षपद प्राप्त करता है॥ ९५॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपण' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥



सोलहवाँ अध्याय

मनुष्य-शरीर प्राप्त करनेकी महिमा, धर्माचरण ही मुख्य कर्तव्य, शरीर और संसारकी दुःखरूपता तथा नश्वरता, मोक्ष-धर्म-निरूपण

गरुड उवाच

श्रुता मया दयासिन्धो ह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः। अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम्॥ १ ॥
भगवन् देवदेवेश शरणागतवत्सल। असारे घोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे॥ २ ॥
नानाविधशरीरस्था ह्यनन्ता जीवराशयः। जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते॥ ३ ॥
सदा दुःखातुरा एव न सुखी विद्यते क्वचित्। केनोपायेन मोक्षेश मुच्यन्ते वद मे प्रभो॥ ४ ॥

गरुडजीने कहा—हे दयासिन्धो! अज्ञानके कारण जीव जन्म-मरणरूपी संसारचक्रमें पड़ता है, यह मैंने सुना। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ॥ १॥ हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे शरणागतवत्सल! सभी प्रकारके दुःखोंसे मलिन तथा साररहित इस भयावह संसारमें अनेक प्रकारके शरीर धारण करके अनन्त जीवराशियाँ उत्पन्न होती हैं और मरती हैं, उनका कोई अन्त नहीं है॥ २-३॥ ये सभी सदा दुःखसे पीडित रहते हैं, इन्हें कहीं सुख नहीं प्राप्त होता। हे मोक्षेश! हे प्रभो! किस उपायके करनेसे इन्हें इस संसृति-चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है, इसे आप मुझे बतायें॥ ४॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः॥ ५ ॥
अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः। सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलोऽद्वयः॥ ६ ॥
स्वयंज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः। निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशाज्जीवसंज्ञकः॥ ७ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे तार्क्ष्य! तुम इस विषयमें मुझसे जो पूछते हो, मैं बतलाता हूँ सुनो, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ५॥ वह परब्रह्म परमात्मा निष्कल[1] (कलारहित) परब्रह्मस्वरूप, शिवस्वरूप,

---

१. परमपुरुषको षोडश कलाओंसे युक्त बतलाया गया है। प्रश्नोपनिषद् (६।२)-में षोडश कलाओंवाले पुरुषको देहमें स्थित बतलाया गया है। **इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति।** जैसे समुद्रमें मिलनेपर नदियोंके अपने नाम और रूप समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार परमपुरुष परमात्माकी कलाएँ उससे सङ्गत होनेपर अपने नाम और रूपको उसीमें विलीन कर देती हैं उनका पृथक् अस्तित्व रह ही नहीं पाता और इसीलिये वह परमात्मा अकल (कला-रहित) कहलाता है (प्रश्नोपनिषद् ६।५)। ब्रह्मविद्योपनिषद् (श्लोक ३७—३९)-में अनेक दृष्टान्तोंके द्वारा यह बोध कराया गया है कि निष्कलकी कोई स्थूल सत्ता नहीं होती, अपितु वह नितान्त सूक्ष्म होता है। ब्रह्मविद्योपनिषद् (श्लोक ३३)-के अनुसार ब्रह्म या परमात्मा जब देहगत (शरीरावच्छिन्न) होता है तो उसे सकल समझना चाहिये और शरीररहित-अवस्थामें उसे निष्कल समझना चाहिये—**देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः।** शाण्डिल्योपनिषद्‌में ब्रह्मके तीन रूप बतलाये गये हैं—सकल, निष्कल और सकल-निष्कल। सत्य, विज्ञान और आनन्दमय, निष्क्रिय, निरञ्जन, सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, सर्वतोमुख, अनिर्देश्य और अमरस्वरूपको ही निष्कल कहा जाता है।

सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश्वर, निर्मल तथा अद्वय (द्वैतभावरहित) है॥ ६॥ वह (परमात्मा) स्वत:प्रकाश है, अनादि, अनन्त, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण और सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। यह जीव उसीका अंश है॥ ७॥

अनाद्यविद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः। देहाद्युपाधिसम्भिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः॥ ८ ॥
सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः। तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम्॥ ९ ॥
प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते येषामपि परं पुनः। सुसूक्ष्मलिङ्गशारीरमामोक्षादक्षरं खग॥ १० ॥
स्थावराः कृमयश्चाब्जाः पक्षिणः पशवो नराः। धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥ ११ ॥
चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः। सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात्॥ १२ ॥

जैसे अग्निसे बहुत-से स्फुलिंग (चिनगारियाँ) निकलते हैं उसी प्रकार अनादिकालीन अविद्यासे युक्त होनेके कारण अनादि कालसे किये जानेवाले कर्मोंके परिणामस्वरूप देहादि उपाधिको धारण करके जीव भगवान्से पृथक् हो गये हैं॥ ८॥ वे जीव प्रत्येक जन्ममें पुण्य और पापरूप सुख-दुःख प्रदान करनेवाले कर्मोंसे नियन्त्रित होकर तत्तत् जातिके योगसे देह (शरीर), आयु और कर्मानुरोधी भोग प्राप्त करते हैं। हे खग! इसके पश्चात् भी पुनः वे अत्यन्त सूक्ष्म लिङ्गशरीर प्राप्त करते हैं और यह क्रम मोक्षपर्यन्त स्थित रहता है॥ ९-१०॥ ये जीव कभी स्थावर (वृक्ष-लतादि जड़) योनियोंमें, पुनः कृमियोनियोंमें तदनन्तर जलचर, पक्षी और पशुयोनियोंको प्राप्त करते हुए मनुष्ययोनि प्राप्त करते हैं। फिर धार्मिक मनुष्यके रूपमें और पुनः देवता तथा देवयोनिके पश्चात् क्रमशः मोक्ष

प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं ॥ ११ ॥ उद्भिज्ज, अण्डज, स्वेदज और पिण्डज (जरायुज)—इन चार प्रकारके शरीरोंको सहस्रों बार धारण करके उनसे मुक्त होकर सुकृतवश (पुण्यप्रभावसे) जीव मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है और यदि वह ज्ञानी हो जाय तो मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ १२ ॥

चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम्। न मानुषं विनाऽन्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥ १३ ॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः। कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥ १४ ॥
सोपानभूतमोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्। यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः ॥ १५ ॥

जीवोंकी चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्ययोनिके अतिरिक्त अन्य किसी भी योनिमें तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होता ॥ १३ ॥ पूर्वोक्त विभिन्न योनियोंमें हजारों-हजार करोड़ों बार जन्म लेनेके अनन्तर उपार्जित पुण्यपुञ्जके कारण कदाचित् मनुष्य-योनि प्राप्त होती है ॥ १४ ॥ मोक्षप्राप्तिके लिये सोपानभूत यह दुर्लभ मनुष्य-शरीर प्राप्त करके इस संसृतिचक्रसे जो अपनेको मुक्त नहीं कर लेता, उससे अधिक पापी और कौन होगा ॥ १५ ॥

नरः प्राप्योत्तमं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम्। न वेत्यात्महितं यस्तु स भवेद् ब्रह्मघातकः ॥ १६ ॥
विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते। तस्माद्देहं धनं रक्षेत् पुण्यकर्माणि साधयेत् ॥ १७ ॥
रक्षयेत् सर्वदात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्। रक्षणे यत्नमातिष्ठेज्जीवन् भद्राणि पश्यति ॥ १८ ॥

उत्तम मनुष्य-शरीरमें जन्म प्राप्त करके और समस्त सौष्ठवसम्पन्न अविकल इन्द्रियोंको प्राप्त करके भी जो व्यक्ति

अपने हितको नहीं जानता वह ब्रह्मघातक होता है॥ १६॥ शरीरके बिना कोई भी जीव पुरुषार्थ नहीं कर सकता, इसलिये शरीर और धनकी रक्षा करता हुआ इन दोनोंसे पुण्योपार्जन करना चाहिये। मनुष्यको सर्वदा अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शरीर सभी पुरुषार्थोंका एकमात्र साधन है। इसलिये उसकी रक्षाका उपाय करना चाहिये। जीवन धारण करनेपर ही व्यक्ति अपने कल्याणको देख सकता है॥ १७-१८॥

पुनर्ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम्। पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनः पुनः॥ १९॥
शरीररक्षणोपायाः क्रियन्ते सर्वदा बुधैः। नेच्छन्ति च पुनस्त्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः॥ २०॥
तद्गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च। ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिरात् प्रविमुच्यते॥ २१॥

गाँव, क्षेत्र, धन, घर और शुभाशुभ कर्म पुनः-पुनः प्राप्त हो सकते हैं, किंतु मनुष्य-शरीर पुनः-पुनः प्राप्त नहीं हो सकता॥ १९॥ इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति सदा शरीरकी रक्षाका उपाय करते हैं। कुष्ठ आदिके रोगी भी अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छा नहीं करते॥ २०॥ शरीरकी रक्षा धर्माचरणके उद्देश्यसे और धर्माचरण ज्ञानप्राप्तिके उद्देश्यसे (उसी प्रकार) ज्ञान ध्यान एवं योगकी सिद्धिके लिये और फिर ध्यानयोगसे मनुष्य अविलम्ब मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २१॥

आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्। कोऽन्यो हितकरस्तस्मादात्मानं तारयिष्यति॥ २२॥
इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः। गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति॥ २३॥

व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत् । निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥ २४ ॥

यदि मनुष्य स्वयं ही अपने आत्माका अहितसे निवारण नहीं कर लेता तो आत्माका दूसरा कौन हितैषी होगा जो आत्माको तारेगा ॥ २२ ॥ जो जीव मनुष्यके शरीरमें रहकर इसी जन्ममें नरकरूपी व्याधिकी चिकित्सा नहीं कर लेता, वह परलोकमें जानेपर जहाँ औषध नहीं प्राप्त है, नरक-व्याधिसे पीडित होनेपर फिर क्या कर सकेगा? ॥ २३ ॥ वृद्धावस्था व्याघ्री (बाघिन)-के समान सामने खड़ी है, फूटे हुए घड़ेसे गिरनेवाले जलकी भाँति प्रतिक्षण आयु समाप्त होती जा रही है, रोग शत्रुकी भाँति प्रहार कर रहे हैं, अतः श्रेयःप्राप्तिके लिये जीवको अभ्यास करना चाहिये ॥ २४ ॥

यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः । यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥ २५ ॥
यावत् तिष्ठति देहोऽयं तावत् त्वं समभ्यसेत् । संदीप्ते को नु भवने कूपं खनति दुर्मतिः ॥ २६ ॥
कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः । सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः ॥ २७ ॥

जबतक दुःख प्राप्त नहीं होता, जबतक आपत्तियाँ घेर नहीं लेतीं और जबतक इन्द्रियोंमें वैकल्य (शिथिलता) नहीं आ जाता, तबतक श्रेयःप्राप्तिके लिये अभ्यास करते रहना चाहिये ॥ २५ ॥ जबतक यह शरीर है, तभीतक तत्त्वज्ञानका अभ्यास करना चाहिये। भवनमें आग लग जानेपर कौन ऐसा दुर्बुद्धि मनुष्य है जो कुँआ खोदना प्रारम्भ करता है ॥ २६ ॥ बहुविध सांसारिक कार्यप्रपञ्चोंमें व्यस्त रहनेके कारण कालका ज्ञान नहीं होता। यह क्लेशकी

बात है कि मनुष्य अपने सुख-दुःख और हितकी बातको नहीं समझता॥ २७॥

जातानार्तान् मृतानापद्ग्रस्तान् दृष्ट्वा च दुःखितान्। लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन॥ २८॥

सम्पदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम्। तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः॥ २९॥

संसारमें जीवोंको उत्पन्न होते हुए, रोगादिसे दुःखी होते हुए, मृत्यु प्राप्त करते हुए और आपत्तिग्रस्त तथा दुःखी देखकर भी सांसारिक मनुष्य मोहरूपी मदिराको पीकर (पूर्वोक्त जन्म-मरणादिरूपी विविध क्लेशोंसे) कभी भी भयभीत नहीं होता॥ २८॥ (भौतिक) सम्पत्ति स्वप्नके समान (नश्वर—क्षणभङ्गुर) है, यौवन भी पुष्पके समान (मुरझा जानेवाला) है, आयु बादलोंमें चमकनेवाली बिजलीके समान चञ्चल है—यह सब जानते हुए भी मनुष्यको कैसे धैर्य हो सकता है॥ २९॥

शतं जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम्। बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्॥ ३०॥

प्रारब्धव्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः। विश्वस्तव्यो भयस्थाने हा नरः को न हन्यते॥ ३१॥

तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते। अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः॥ ३२॥

अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः। अनर्थे चार्थविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः॥ ३३॥

एक तो मनुष्यकी सौ वर्षकी आयु ही बहुत थोड़ी है, उसमें भी निद्रा और आलस्यके वशीभूत होकर उसका आधा भाग बीत जाता है और जो शेष है वह भी बाल्यावस्था, रोग और जरामें होनेवाले दुःखसे चला जाता

है और जो थोड़ा बचा, वह भी निष्फल ही बीत जाता है॥ ३०॥ प्रारम्भ करनेयोग्य कार्यके विषयमें जो उद्योग नहीं करता और जहाँ ब्रह्मचिन्तन आदिमें जागरूक रहना चाहिये वहाँ वह सोता रहता है। (इसके विपरीत) जहाँ सदा-सदा भय विद्यमान है (उस संसारमें), वहाँ वह विश्वस्त है, ऐसा जो मनुष्य है, वह (अभागा) क्यों नहीं मारा जायगा॥ ३१॥ जलमें उठनेवाले फेनके समान अतीव क्षणभङ्गुर देहको प्राप्त करके जीवात्मा उसमें स्थित रहता है। यह शरीर ही उसको प्रियसंवासके रूपमें प्रतीत होता है, किंतु इस अनित्य शरीरमें (जीवात्मा) निर्भय होकर कैसे रह सकता है?॥ ३२॥ जो अहित करनेवाले विषयभोगोंमें ही हितबुद्धि रखता है तथा अनिश्चित (पुत्र-कलत्र-देह-गेहादि)-को स्थायी समझता है और भौतिक धन-सम्पत्ति आदि अनर्थकारी वस्तुओंमें जो अर्थबुद्धि रखता है, वह अपने परमार्थको नहीं जानता॥ ३३॥

पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुद्ध्यति। पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः॥ ३४॥
संनिमज्जज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे। मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुद्ध्यते॥ ३५॥
प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते। आमकुम्भ इवाम्भःस्थो विशीर्णो न विभाव्यते॥ ३६॥
युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्। ग्रन्थनं च तरङ्गाणामास्था नायुषि युज्यते॥ ३७॥

जो 'यह जगत् किसीका नहीं हुआ'—ऐसा देखते हुए भी गिर रहा है और आत्मज्ञानविषयक वचनोंको सुनते हुए भी जिसे बोध नहीं होता, पढ़ करके भी उसका अर्थ नहीं समझता—ऐसा इसलिये होता है कि जीव

भगवान्‌की मायासे मोहित है*॥ ३४॥ मृत्यु, रोग और जरारूपी ग्राहोंके द्वारा गम्भीर कालसागरमें डूबते हुए इस जगत्‌को कोई भी नहीं जान पाता॥ ३५॥ प्रतिक्षण क्षीण होते हुए (बीतते हुए) इस कालकी सूक्ष्म गतिको जीव वैसे ही नहीं जान पाता जैसे कच्चे घड़ेमें स्थित जलके विगलित होनेका ज्ञान नहीं हो पाता॥ ३६॥ कदाचित् वायुका बाँधना सम्भव हो सकता है, आकाशको खण्ड-खण्ड करनेकी और तरंगोंके गुम्फनकी कल्पना भी सम्भव हो सकती है, परंतु आयुके शाश्वत होनेकी आस्था कथमपि सम्भव नहीं हो सकती॥ ३७॥

पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते। शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा॥ ३८॥
अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे। जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात्॥ ३९॥
इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत् कृताकृतम्। एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम्॥ ४०॥

जिस कालके द्वारा पृथ्वी जल जाती है, मेरु पर्वत भी चूर-चूर हो जाता है, सागरका जल भी सूख जाता है, उस कालसे मनुष्य-शरीरकी रक्षाकी क्या कथा?॥ ३८॥ मेरा पुत्र, मेरी पत्नी, मेरा धन, मेरे बान्धव—इस प्रकार

* तात्पर्य है कि ईश्वरकी मायासे मोहित होनेके कारण मनुष्य आँखोंसे देखते हुए भी गिर पड़ता है अर्थात् आत्मज्ञान और ध्यानयोगसे मोक्ष होता है—यह तथ्य जानते हुए भी मोक्षमार्गसे भ्रष्ट हो जाता है, वह ज्ञानकी बातों या आत्मज्ञानविषयक उपदेशोंको सुनते हुए भी उनका तात्पर्य नहीं समझ पाता और धर्म एवं मोक्षकी प्राप्तिके उपायोंका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंको पढ़ते हुए भी उनका अर्थ नहीं जान पाता।

मैं-मैं कहते हुए मनुष्यरूपी बकरेको हठपूर्वक कालरूपी भेड़िया मार डालता है॥ ३९॥ यह मैंने कर लिया, यह करना शेष है, यह दूसरा कार्य अभी कुछ करना बाकी है—इस प्रकारकी इच्छासे युक्त मनुष्यको यमराज अपने वशमें कर लेते हैं॥ ४०॥

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्। न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाऽप्यथवाऽकृतम्॥ ४१॥
जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्। मृत्युशत्रुमधिष्ठोऽसि त्रातारं किं न पश्यसि॥ ४२॥

कल किये जानेवाले कार्यको आज, अपराह्णमें किये जानेवाले कार्यको पूर्वाह्णमें ही कर लेना चाहिये; क्योंकि मनुष्यने अपना कार्य कर लिया है अथवा नहीं—इसकी प्रतीक्षा मृत्यु नहीं करती॥ ४१॥ वृद्धावस्था जिसको रास्ता दिखानेवाली है, अत्युग्र रोग ही जिसके सैनिक हैं, ऐसे मृत्युरूपी शत्रुके तुम सम्मुख स्थित हो फिर (उस प्रबल शत्रुसे) रक्षा करनेवाले (परमात्मा)-की ओर क्यों नहीं देखते अर्थात् उनकी ओर उन्मुख क्यों नहीं होते?॥ ४२॥

तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा। रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥ ४३॥
बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि। सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतमिदं जगत्॥ ४४॥
स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्। स्त्रीमातृपितृपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना॥ ४५॥

तृष्णारूपी शूलमें बिंधे हुए और विषयवासनारूपी घीसे सींचे हुए तथा राग-द्वेषरूपी अग्निमें पके हुए मनुष्यको

मृत्यु खा जाती है॥ ४३॥ यह जगत् ऐसा है कि इसमें मृत्यु बालकों, युवकों, वृद्धों और गर्भस्थ जीवों—सभीको ग्रस लेती है॥ ४४॥ जब जीव अपने देहको भी यहीं छोड़कर यमलोकको चला जाता है तो फिर स्त्री-माता-पिता और पुत्रादिसे किस प्रयोजनसे सम्बन्ध स्थापित किया जाय॥ ४५॥

दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः। तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्॥ ४६॥
प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्। आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥ ४७॥
लौहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन॥ ४८॥

यह संसार दुःखका मूल कारण है, इसलिये इस संसारसे जिसका सम्बन्ध है, वही दुःखी है और जिसने इस जगत्का त्याग किया, वही मनुष्य सुखी है। दूसरा कोई भी, कहीं भी, सुखी नहीं है॥ ४६॥ यह संसार सभी प्रकारके दुःखोंका उत्पत्तिस्थान है, सभी आपत्तियोंका घर है और सभी पापोंका आश्रय-स्थान है, इसलिये ऐसे संसारको क्षणमात्रमें त्याग देना चाहिये॥ ४७॥ लौह एवं लकड़ीसे बने हुए पाशोंसे बँधा हुआ मनुष्य मुक्त हो सकता है, किंतु पुत्र और पत्नीरूपी पाशोंसे बँधा मनुष्य कभी भी मुक्त नहीं हो सकता॥ ४८॥

यावन्तः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्। तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥ ४९॥
वञ्चिताशेषविषयैर्नित्यं लोको विनाशितः। हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः॥ ५०॥
मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशंकुं न पश्यति। सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति॥ ५१॥

मनुष्य अपने मनको प्रिय लगनेवाले (जगत्में) जितने पदार्थोंसे सम्बन्ध बनाता जाता है, उतने ही अधिक

शोकके कीले उसके हृदयमें गड़ते जाते हैं॥ ४९॥ यह बड़े खेदकी बात है कि (मनुष्यके देहमें स्थित शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध) विषयोंका आहार करनेवाले इन्द्रियरूपी चोरोंने इस लोकके समस्त धनको अपहृत करके इसे नष्ट कर दिया है अर्थात् परलोकके लिये हितकारी धर्मरूपी जो धन है, उसका इन्द्रियोंने हरण कर लिया है॥ ५०॥ मांसलोभी मत्स्य जैसे बंसीमें लगे हुए लोहेके अङ्कुशको नहीं जान पाता, उसी प्रकार विषयोंसे प्राप्त होनेवाले (प्रातिभासिक) सुखके लोभसे जीव यमयातनाकी परवा नहीं करता॥ ५१॥

हिताहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः। कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग॥ ५२॥
निद्रादिमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः। ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः॥ ५३॥

हे गरुड! जो अपने हित और अहितको नहीं जानते, सदा कुमार्गपर चलनेवाले हैं और मात्र पेट भरनेमें ही जिनका सारा अध्यवसाय रहता है, वे मनुष्य नरकगामी हैं॥ ५२॥ निद्रा, मैथुन और आहार आदिकी स्वाभाविक प्रवृत्ति सभी प्राणियोंमें समानरूपसे विद्यमान रहती है। उनमें जो (वास्तविक हित-अहितको जाननेवाला) ज्ञानवान् है, वह मनुष्य कहा जाता है और उस ज्ञानसे जो शून्य है, वह पशु कहलाता है॥ ५३॥

प्रभाते मलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ। रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मूढमानवाः॥ ५४॥
स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः। जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः॥ ५५॥

तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः सर्वस्त्यक्तुं न शक्यते। महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम्॥ ५६॥

मूर्ख मनुष्य प्रातःकाल मल-मूत्रोंके वेगसे, मध्य दिनमें क्षुधा और तृषासे तथा रात्रिमें कामक्रीडा और निद्रासे बाधित रहते हैं॥ ५४॥ हाय! यह खेदकी बात है कि अज्ञानसे मोहित होकर सभी जीव अपनी देह, धन, पत्नी आदिमें आसक्त होकर बार-बार पैदा होते हैं और मर जाते हैं, इसलिये (देह-गेह, पुत्र-कलत्र आदिके साथ) सदा आसक्तिका त्याग कर देना चाहिये और यदि (अपने विवेकबलसे) उसका सर्वथा त्याग न हो सके तो (उस आसक्तिभावको देह-गेहादिसे हटाकर) महापुरुषोंके साथ सम्बन्ध बनाना चाहिये; क्योंकि संत पुरुष संसारासक्तिरूपी रोगके भेषज हैं॥ ५५-५६॥

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्। यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥ ५७॥
स्वस्ववर्णाश्रमाचारनिरताः सर्वमानवाः। न जानन्ति परं धर्मं वृथा नश्यन्ति दाम्भिकाः॥ ५८॥

सत्सङ्ग और विवेक—ये दोनों ही व्यक्तिके दो निर्मल नेत्र हैं। जिस व्यक्तिके पास ये नहीं हैं, वह अंधा है, वह अंधा मनुष्य कुमार्गगामी क्यों नहीं होगा?॥ ५७॥ अपने-अपने वर्ण और आश्रमके लिये शास्त्रबोधित आचारोंका पालन करनेमें संलग्न रहनेवाले सभी मनुष्य यदि परम धर्म (भगवान्‌के चरणोंमें स्वारसिक प्रीति सम्पादन-साधनीभूत भगवद्भक्ति)-को नहीं जानते तो वे दम्भाचारी व्यर्थमें नष्ट हो जाते हैं॥ ५८॥

क्रियायासपराः केचिद् व्रतचर्यादिसंयुताः। अज्ञानसंवृतात्मानः संचरन्ति प्रतारकाः॥ ५९॥

नाममात्रेण संतुष्टाः कर्मकाण्डरता नराः। मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः॥ ६०॥
एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः। मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः॥ ६१॥

कुछ लोग अनेक प्रकारकी क्रियाओंको करनेका प्रयत्न करते हैं और कुछ अन्य व्रत, उपवास आदिमें संलग्न रहते हैं, अज्ञानसे आवृत आत्मावाले कुछ लोग ढोंगी बनकर विचरण करते हैं॥ ५९॥ कर्मकाण्डमें आस्था रखनेवाले मनुष्य शास्त्रबोधित नाममात्रकी फलश्रुतियोंसे संतुष्ट हो करके मन्त्रोच्चारण और होमादि कृत्योंसे तथा यज्ञके विस्तृत विधानोंसे भ्रान्त रहते हैं, उन्हींमें उलझे रहते हैं॥ ६०॥ मेरी मायासे विमोहित होकर शरीरको सुखानेवाले मूर्खलोग एकभुक्त, उपवास आदि व्रतोंका आचरण करके परोक्ष (परमगति)-को प्राप्त करना चाहते हैं॥ ६१॥

देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम्। वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः॥ ६२॥
जटाभाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः। भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि॥ ६३॥

शरीरको दण्ड देनेमात्रसे क्या अविवेकी पुरुषोंको मुक्ति प्राप्त हो सकती है? वल्मीक (बाँबी)-को ताडन करनेमात्रसे क्या कहीं महासर्पकी मृत्यु होती है?॥ ६२॥ बड़ी लम्बी जटाओंके भारको ढोनेवाले और मृगचर्म आदिसे युक्त दाम्भिक पुरुष (साधु पुरुषोंका) वेष धारण करके ज्ञानीकी भाँति ही लोकमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको भी भ्रमित करते हैं॥ ६३॥

संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम्। कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥ ६४॥

गृहारण्यसमालोके गतव्रीडा दिगम्बराः। चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम्॥ ६५॥
मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः स्युर्यदि मानवाः। मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा सः किं मुक्तो भविष्यति॥ ६६॥
तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः। जम्बुकाऽऽखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम्॥ ६७॥
आजन्ममरणान्तं च गङ्गादितटिनीस्थिताः। मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम्॥ ६८॥

सांसारिक सुख (विषयासक्ति)-में आसक्त जो व्यक्ति 'मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ', ऐसा कहता है वह कर्म-मार्ग तथा ब्रह्मज्ञानमार्ग—दोनों मार्गोंसे भ्रष्ट हो जाता है, उसे चाण्डालकी भाँति छोड़ देना चाहिये॥ ६४॥ संसारमें, घरमें और अरण्यमें लज्जा त्यागकर समानरूपसे नग्न होकर गर्दभ आदि पशु भी विचरण करते हैं तो क्या इस (आचरण)-से वे (संसारसे) विरक्त हो जाते हैं॥ ६५॥ यदि मिट्टी और भस्मके धारण करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाय तो मिट्टी और भस्ममें शयन करनेवाला वह कुत्ता भी क्या मुक्ति प्राप्त कर लेगा?॥ ६६॥ घास-पात और जलका आहार करनेवाले तथा निरन्तर जंगलमें निवास करनेवाले शृगाल, चूहे तथा मृग आदि पशु भी क्या तपस्वी—योगी हो जाते हैं अर्थात् अन्न छोड़ देने, ग्राम या नगरमें निवास छोड़कर वनमें रहनेमात्रसे कोई संन्यासी नहीं हो जाता॥ ६७॥ मण्डूक (मेढ़क) और मत्स्य आदि जलचर जीव जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त गङ्गादि नदियोंमें निवास करते हैं तो क्या वे योगी हो

जाते हैं॥ ६८॥

पारावता: शिलाहारा: कदाचिदपि चातका:। न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम्॥ ६९॥

तस्मादित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम्। मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्त्वज्ञानं खगेश्वर॥ ७०॥

षड्दर्शनमहाकूपे पतिता: पशव: खग। परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियन्त्रिता:॥ ७१॥

वेदशास्त्रार्णवे घोरे उह्यमाना इतस्तत:। षडूर्मिनिग्रहग्रस्तास्तिष्ठन्ति हि कुतार्किका:॥ ७२॥

कबूतर शिलवृत्ति (कंकड़)-का आहार करनेवाले हैं तथा चातक कभी भी भूमिपर स्थित जलको नहीं पीते तो क्या इससे वे व्रती हो जाते हैं?॥ ६९॥ इसलिये हे खगेश्वर! पूर्वोक्त सम्पूर्ण कर्मानुष्ठान केवल लोकरञ्जनमात्रके लिये हैं। मोक्षका कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान ही है॥ ७०॥ हे खग! षड्दर्शनरूपी महाकूपमें पड़े हुए मनुष्यरूपी पशु[1] परमार्थको नहीं जानते हैं; क्योंकि वे पशुपाश[2]से नियन्त्रित रहते हैं॥ ७१॥ वेद और शास्त्ररूपी घोर समुद्रमें

१. शैवमतमें जीवात्माको 'पशु' कहा गया है जो कि पाशोंसे बँधा रहता है। पाश-मुक्त होनेपर वह शिवस्वरूप हो जाता है।

२. शैवमतमें बन्धनको 'पाश' कहते हैं। पाश-बद्ध होनेके कारण जीवात्मा शिवस्वरूप नहीं हो पाता। पाश चार प्रकारके होते हैं—मल, कर्म, माया और रोध। मलरूपी पाशसे जीवात्माकी ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति तिरोहित हो जाती है। फलकी इच्छासे किया जानेवाला कर्म भी पाश बन जाता है। यह कर्मरूप पाश भी धर्म और अधर्मके भेदसे दो प्रकारका माना गया है। मायारूप पाशसे प्रलयकालमें समस्त संसारका संहार और सृष्टिकालमें उसका उद्भव होता है। उपर्युक्त तीन पाशोंसे बद्ध पशुके यथार्थ स्वरूपको ढकनेवाले पाशको रोध कहते हैं।

इधर-उधर ले जाये जाते हुए कुतार्किक व्यक्ति षडूर्मियों[1] से ग्रस्त होकर स्थित रहते हैं॥ ७२॥

वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः। विडम्बकस्य तस्यैव तत्सर्वं काकभाषितम्॥ ७३॥

इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः। पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः॥ ७४॥

वाक्यच्छन्दोनिबन्धेन काव्यालङ्कारशोभिताः। चिन्तया दुःखिता मूढास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः॥ ७५॥

वेद-शास्त्र और पुराणोंको जाननेवाला भी जो मनुष्य परमार्थको नहीं जानता, विडम्बनाग्रस्त उसका पूर्वोक्त सम्पूर्ण ज्ञान कौएके काँव-काँव करने-जैसा है॥ ७३॥ परम तत्त्वसे पराङ्मुख जीव यह ज्ञान है, यह ज्ञेय है, इसी चिन्तासे व्याकुल होकर रात-दिन शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं॥ ७४॥ काव्योचित अलङ्कारोंसे सुशोभित गद्य वाक्य-रचना या छन्दोबद्ध कविताकी रचना करनेपर भी विषयोपभोगके प्रति लालायित इन्द्रियोंवाले तत्त्वज्ञानरहित मूढ व्यक्ति नाना चिन्ताओंके कारण दुःखी रहते हैं॥ ७५॥

अन्यथा परमं तत्त्वं जनाः क्लिश्यन्ति चान्यथा। अन्यथा शास्त्रसद्भावो व्याख्यां कुर्वन्ति चान्यथा॥ ७६॥

कथयन्त्युन्मनीभावं स्वयं नानुभवन्ति च। अहङ्काररताः केचिदुपदेशादिवर्जिताः॥ ७७॥

परम तत्त्वकी प्राप्ति तो अन्य प्रकारसे होती है, किंतु लोग अन्य प्रकारके उपाय करके क्लेश प्राप्त करते हैं। शास्त्रका भाव तो कुछ और होता है परंतु वे उसकी व्याख्या कुछ दूसरे प्रकारसे करते हैं॥ ७६॥ कुछ

१. क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जन्म-मृत्युको 'षडूर्मि' कहा जाता है। (श्रीमद्भागवत ११।१५।१८)

अहंकारी व्यक्ति गुरूपदेश आदिको प्राप्त न करके भी उन्मनीभावके विषयमें कहते हैं, पर वे स्वयं उसका अनुभव नहीं करते॥ ७७॥

पठन्ति वेदशास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम्। न जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा॥ ७८॥
शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका। पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधकः॥ ७९॥
तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति। गोपः कुक्षिगते छागे कूपे पश्यति दुर्मतिः॥ ८०॥
संसारमोहनाशाय शाब्दबोधो न हि क्षमः। न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया॥ ८१॥
प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम्। अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य लक्षणम्॥ ८२॥

बहुत-से लोग वेद और शास्त्रका अध्ययन तो करते हैं और परस्पर एक-दूसरेको बोध भी कराते हैं, तात्पर्य समझाते हैं, पर वे परम तत्त्वके विषयमें उसी प्रकार कुछ नहीं जानते जिस प्रकार दर्वी (कलछी) पाकरस (भोजन आदि)-को नहीं जानती॥ ७८॥ पुष्पको धारण तो सिर करता है किंतु उस पुष्पकी गन्धको नासिका ही जानती है, इसी प्रकार वेद और शास्त्रका अध्ययन तो लोग करते हैं, किंतु वेद और शास्त्रके भावका बोध करनेवाला दुर्लभ है॥ ७९॥ मूर्ख मनुष्य अपने हृदयमें स्थित परम तत्त्वको—परमात्माके अंशको नहीं जानता और उसे जाननेके लिये शास्त्रोंके अध्ययनमें उसी प्रकार भटकता फिरता रह जाता है, जैसे कोई मूर्ख ग्वाला अपनी कोखमें बकरेको पकड़े रखनेपर भी उसको खोजनेके लिये कुँएमें देखता है॥ ८०॥ संसारके मोहका नाश करनेके

लिये शास्त्रके शब्दोंके अर्थको जाननामात्र पर्याप्त नहीं है। दीपककी बातसे कभी भी अन्धकारकी निवृत्ति नहीं हो सकती॥ ८१॥ बुद्धिहीन मनुष्यका पढ़ना अन्धे व्यक्तिके दर्पण देखनेके समान व्यर्थ है। अतः बुद्धिमान् व्यक्तिको ही शास्त्रीय तत्त्वज्ञानका लक्षण हो सकता है अर्थात् बुद्धिमान्‌को ही तत्त्वज्ञान लक्षित हो सकता है॥ ८२॥

इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वं तु श्रोतुमिच्छति। दिव्यवर्षसहस्त्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति॥ ८३॥
अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः। तस्मात् सारं विजानीयात् क्षीरं हंस इवाम्भसि॥ ८४॥
अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वाथ बुद्धिमान्। पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्राणि संत्यजेत्॥ ८५॥

जो यह ज्ञान यहाँ है, इसे जानना चाहिये—इस प्रकार बुद्धि करके (शास्त्रमें प्रतिपाद्य सब कुछ) सुनना चाहता है, वह हजार दिव्य वर्षोंकी आयु प्राप्त करके भी शास्त्रोंका अन्त प्राप्त नहीं कर सकता॥ ८३॥ अनेक शास्त्र हैं, आयु अत्यल्प है, जिसमें करोड़ों विघ्न हैं, इसलिये जैसे हंस जलके मध्यसे दूधको ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् व्यक्तिको भी शास्त्रके सारतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये॥ ८४॥ वेद-शास्त्रोंका अभ्यासकर वहाँसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करके बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि जैसे धान चाहनेवाला व्यक्ति (धान ग्रहण करके) पलाल (पुआल)-को छोड़ देता है, उसी तरह उसे भी अन्य सभी शास्त्रोंको छोड़ देना चाहिये॥ ८५॥

यथाऽमृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम्। तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य न शास्त्रेण प्रयोजनम्॥ ८६॥

न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि । ज्ञानादेव हि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज ॥ ८७ ॥

जैसे अमृतसे तृप्त व्यक्तिके लिये भोजनकी कोई आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार हे तार्क्ष्य! तत्त्वज्ञको शास्त्रसे कोई प्रयोजन नहीं होता ॥ ८६ ॥ हे विनतात्मज! न वेदाध्ययनसे मुक्ति प्राप्त होती है और न शास्त्रोंके अध्ययनसे ही। मोक्षकी प्राप्ति ज्ञानसे ही होती है, किसी दूसरे उपायसे नहीं ॥ ८७ ॥

नाश्रमः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणम् । तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ॥ ८८ ॥
मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा विडम्बिकाः । काष्ठभारसहस्रेषु ह्येकं सञ्जीवनं परम् ॥ ८९ ॥
अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं क्रियायासविवर्जितम् । गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाधीतागमकोटिभिः ॥ ९० ॥
आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते । शब्दब्रह्मागममयं परब्रह्मविवेकजम् ॥ ९१ ॥
अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे । समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥ ९२ ॥
द्वे पदे बन्धमोक्षाय ममेति न ममेति च । ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते ॥ ९३ ॥

जिस प्रकार मुक्तिके लिये न तो आश्रमधर्मका अनुष्ठान कारण है, न दर्शनोंका अध्ययन कारण है, उसी प्रकार (श्रौत-स्मार्त) कर्म भी कारण नहीं है। मात्र ज्ञान ही मोक्षका उपाय है ॥ ८८ ॥ गुरुका वचन ही मोक्ष देनेवाला है, अन्य सब विद्याएँ विडम्बनामात्र हैं। लकड़ीके हजारों भारोंकी अपेक्षा एक संजीवनी ही श्रेष्ठ है ॥ ८९ ॥ कर्मकाण्ड और वेद-शास्त्रादिके अध्ययनरूपी परिश्रमसे रहित केवल गुरुमुखसे प्राप्त अद्वैतज्ञान ही कल्याणकारी कहा गया है, अन्य करोड़ों

शास्त्रोंको पढ़नेसे कोई लाभ नहीं ॥ ९० ॥ वेदादि आगम शास्त्रोंका अध्ययन तथा विवेक—इन दो साधनोंसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। आगमसे शब्दब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होता है और विवेकसे परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ कई विद्वान् अद्वैतको वास्तविक परमतत्त्व स्वीकार करते हैं और कुछ अन्य विद्वज्जन द्वैततत्त्वकी ही प्रतिष्ठा चाहते हैं। किंतु द्वैत और अद्वैतसे पृथक् सभीके लिये समानरूपसे स्वीकार्य परमतत्त्वको कोई नहीं जानता ॥ ९२ ॥ '**न मम**' (मेरा नहीं है) और '**मम**' (मेरा है)—ये दो पद (भावनाएँ) ही बन्धन और मोक्षके कारण हैं। (देह-गेह और पुत्र-कलत्रादिमें) मम-बुद्धि करनेसे प्राणी बन्धनको प्राप्त होता है और 'मेरा नहीं है', इस प्रकारकी भावना करनेसे मुक्त होता है ॥ ९३ ॥

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा। आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम्॥ ९४॥
यावत्कर्माणि दीयन्ते यावत्संसारवासना। यावदिन्द्रियचापल्यं तावत् तत्त्वकथा कुतः॥ ९५॥
यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेव हि। यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना॥ ९६॥
यावन्नो मनसस्थैर्यं न यावच्छास्त्रचिन्तनम्। यावन्न गुरुकारुण्यं तावत् तत्त्वकथा कुतः॥ ९७॥

कर्म वही है, जो बन्धनका हेतु नहीं होता तथा विद्या वही है, जो मोक्ष प्रदान करा दे और इससे अतिरिक्त कर्म केवल श्रममात्रके हेतु हैं, जो शरीरके लिये क्लेशप्रद हैं तथा अन्य प्रकारकी विद्या शिल्पचातुर्यमात्र है ॥ ९४ ॥ जबतक कर्म किये जाते हैं, जबतक संसारमें आसक्ति रहती है, जबतक इन्द्रियोंका चाञ्चल्य बना रहता है, तबतक तत्त्वज्ञानकी बात ही कहाँ हो सकती है ? ॥ ९५ ॥ जबतक देहाभिमान (देहको अपना स्वरूप मानना) है, जबतक ममता रहती है, जबतक प्रयत्नोंका

वेग रहता है, जबतक सङ्कल्पकी कल्पना होती रहती है, जबतक मन स्थिर नहीं हो जाता, जबतक शास्त्रका चिन्तन नहीं किया जाता तथा जबतक गुरुकी कृपा नहीं प्राप्त होती, तबतक तत्त्वज्ञानकी चर्चा ही कहाँ होती है ? ॥ ९६-९७ ॥

तावत् तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम् । वेदशास्त्रागमकथा यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ ९८ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा । तत्त्वनिष्ठो भवेत् तार्क्ष्य यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः ॥ ९९ ॥

तप, व्रत, तीर्थ, जप, होम और पूजा आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान तथा वेद, शास्त्र और आगमकी कथा तभीतक उपयोगी है, जबतक जीवको तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता ॥ ९८ ॥ इसलिये हे तार्क्ष्य ! यदि अपने मोक्षकी इच्छा हो तो सर्वदा सम्पूर्ण प्रयत्नोंका सभी अवस्थाओंमें निरन्तर अनुष्ठान करके तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमें संलग्न रहना चाहिये ॥ ९९ ॥

धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च । तापत्रयादिसंतप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत् ॥ १०० ॥
तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात् । सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात् ॥ १०१ ॥
तत्त्वज्ञस्यान्तिमं कृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना । येन मोक्षमवाप्नोति ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञकम् ॥ १०२ ॥

जो प्राणी (आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक) तापत्रयसे सदा संतप्त रहता है, उसे मोक्षवृक्षकी छायाका आश्रयण करना चाहिये, जिस (मोक्षवृक्ष)-का पुष्प धर्म और ज्ञानस्वरूप है तथा फल स्वर्ग एवं मोक्ष है ॥ १०० ॥ इसलिये श्रीगुरुमुखसे आत्मतत्त्वविषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। (ज्ञान हो जानेपर) प्राणी इस घोर संसारबन्धनसे सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है ॥ १०१ ॥ (हे तार्क्ष्य !) मैं तत्त्वज्ञानी पुरुषके द्वारा किये जानेवाले अन्तिम कृत्यके विषयमें तुम्हें

बताता हूँ, सुनो, जिस उपायको करके जीवको ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञक मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ १०२॥

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः। छिन्द्यादसंगशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनुये च तम्॥ १०३॥
गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः। शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने॥ १०४॥
अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्। मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन्॥ १०५॥

अन्तकालके आ जानेपर पुरुष भय छोड़कर अनासक्तिरूपी शस्त्रसे देह-गेहादि विषयक ममत्वको काट डाले॥ १०३॥ वह धीरपुरुष घरसे निकलकर पवित्र तीर्थके जलमें स्नान करके पवित्र और एकान्त देशमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय॥ १०४॥ और शुद्ध परम त्रिवृत् ब्रह्माक्षर अर्थात् ओंकारका मनसे अभ्यास करे तथा ब्रह्मबीजस्वरूप ओंकारका निरन्तर स्मरण करके श्वासको जीतकर मनको नियन्त्रित करे॥ १०५॥

नियच्छेद् विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः। मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया॥ १०६॥
अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्। एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥ १०७॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥ १०८॥
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः परमव्ययं तत्॥ १०९॥
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥ ११०॥

बुद्धिरूपी सारथिकी सहायतासे मनरूपी लगामके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे निगृहीत कर ले और कर्मोंके द्वारा आक्षिप्त मनको बुद्धिकी सहायतासे शुभ अर्थमें अर्थात् परमब्रह्मके चिन्तनमें लगा दे॥ १०६॥ मैं ब्रह्म हूँ, मैं परम धाम हूँ और परम पदरूपी ब्रह्म मैं हूँ—ऐसी समीक्षा करके अपनी आत्माको निष्कल परमात्मामें लगा दे और 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ तथा मेरा स्मरण करता हुआ जो मनुष्य देह-त्याग करता है, वह इस संसारसे तर जाता है और परमगति प्राप्त करता है॥ १०७-१०८॥ मान और मोहसे रहित तथा आसक्ति उत्पन्न होनेवाले दोषोंको जीत लेनेवाले, नित्य अध्यात्म-चिन्तन करनेवाले, सभी प्रकारकी कामनाओंसे निवृत्ति प्राप्त कर लेनेवाले, सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे मुक्त ज्ञानी पुरुष उस शाश्वत अविनाशी परमपदको प्राप्त होते हैं॥ १०९॥ जो व्यक्ति राग और द्वेषरूपी मलोंका अपहरण करनेवाले ज्ञानरूप जलाशय और सत्यस्वरूप जलवाले मानसतीर्थमें स्नान करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ११०॥

प्रौढं वैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक्। पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥ १११॥
त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः। म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥ ११२॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥ ११३॥
इति ते कथितं तार्क्ष्य मोक्षधर्मं सनातनम्। ज्ञानवैराग्यसहितं श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥ ११४॥
मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः। पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥ ११५॥

इत्येवं सर्वशास्त्राणां सारोद्धारो निरूपितः। मया ते षोडशाध्यायैः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११६॥

जो प्रौढ़ वैराग्यको धारण करके अन्य भावोंका परित्याग कर केवल मद्विषयक भावनाके द्वारा मेरा भजन करता है, ऐसा पूर्ण दृष्टि रखनेवाला अमलान्तरात्मा संत ही मोक्षको प्राप्त होता है॥ १११॥ 'तीर्थमें मृत्यु हो जाय'—इस उत्कण्ठासे उत्सुक होकर जो अपने घरका परित्याग करके तीर्थमें निवास करता है और मुक्तिक्षेत्रमें मरता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है॥ ११२॥ अयोध्या, मथुरा, माया (कनखल-हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारावतीपुरी—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। हे तार्क्ष्य! मैंने सनातन मोक्षधर्मको तुम्हें बता दिया; ज्ञान और वैराग्यके सहित इसे सुनकर पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है॥ ११३-११४॥ तत्त्वज्ञ पुरुष मोक्ष प्राप्त करते हैं (सकाम धर्मानुष्ठान करनेवाला) धार्मिक पुरुष स्वर्गको प्राप्त होते हैं। पापियोंकी दुर्गति होती है और पशु-पक्षी आदि पुनः पुनः जन्म-मरणरूपी संसारमें भ्रमण करते हैं। इस प्रकार सभी शास्त्रोंका सारोद्धार मैंने सोलह अध्यायोंमें कह दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ११५-११६॥

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा वचो राजन् गरुडो भगवन्मुखात्। कृताञ्जलिरुवाचेदं तं प्रणम्य मुहुर्मुहुः॥ ११७॥

सूतजीने कहा—हे राजन्! गरुडजीने भगवान्‌के मुखसे ऐसा वचन सुनकर उन्हें बार-बार प्रणाम करके अञ्जलि बाँधकर इस प्रकार कहा— ॥ ११७॥

भगवन् देवदेवेश श्रावयित्वा वचोऽमृतम्। तारितोऽहं त्वया नाथ भवसागरतः प्रभो॥ ११८॥

स्थितोऽस्मि गतसंदेहः कृतार्थोऽस्मि न संशयः। इत्युक्त्वा गरुडस्तूष्णीं स्थित्वा ध्यानपरोऽभवत्॥ ११९॥

स्मरणाद्दुर्गतिहर्ता पूजनयज्ञेन सद्गतेर्दाता।
यः परया निजभक्त्या ददाति मुक्तिं स मां हरिः पातु॥ १२०॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे भगवद्गरुडसंवादे मोक्षधर्मनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥



गरुडजीने कहा—हे देवाधिदेव भगवन्! हे नाथ! हे प्रभो! अपने अमृतमय वचनोंको सुनाकर आपने मुझे भवसागरसे तार दिया है। अब मेरा संदेह समाप्त हो गया और मैं कृतार्थ हो गया हूँ, इसमें संशय नहीं—ऐसा कहकर गरुडजी मौन होकर भगवद्ध्यानपरायण हो गये॥ ११८-११९॥ स्मरण करनेसे जो दुर्गतिका हरण कर लेते हैं, पूजन और यज्ञके द्वारा जो सद्गति प्रदान करते हैं और अपनी परम भक्तिके द्वारा जो मुक्ति प्रदान करते हैं, वे हरि मेरी रक्षा करें॥ १२०॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें भगवान् विष्णु और गरुडके संवादमें 'मोक्षधर्मनिरूपण' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥



गरुडपुराण-श्रवणका फल

श्रीभगवानुवाच

इत्याख्यातं मया तार्क्ष्य सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् । दशाहाभ्यन्तरे श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
इदं चामुष्मिकं कर्म पितृमुक्तिप्रदायकम् । पुत्रवाञ्छितदं चैव परत्रेह च सुखप्रदम् ॥ २ ॥
इदं कर्म न कुर्वन्ति ये नास्तिकनराधमाः । तेषां जलमपेयं स्यात् सुरातुल्यं न संशयः ॥ ३ ॥
देवताः पितरश्चैव नैव पश्यन्ति तद्गृहम् । भवन्ति तेषां कोपेन पुत्राः पौत्राश्च दुर्गताः ॥ ४ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवेतरेऽपि च । ते चाण्डालसमा ज्ञेयाः सर्वे प्रेतक्रियां विना ॥ ५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! इस प्रकार मैंने और्ध्वदैहिक कृत्योंके विषयमें सब कुछ कह दिया। (मरणाशौचमें) दस दिनके अंदर इसे सुनकर व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ यह परलोकसम्बन्धी कर्म पितरोंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है और परलोकमें तथा इस लोकमें भी पुत्रको वाञ्छित फल देकर सुख प्रदान करनेवाला है ॥ २ ॥ जो नास्तिक अधम व्यक्ति प्रेतका यह और्ध्वदैहिक कर्म नहीं करते, उनका जल सुराके समान अपेय है, इसमें कोई संशय नहीं ॥ ३ ॥ देवता और पितृगण उसके घरकी ओर नहीं देखते (अर्थात् दोनोंकी ही कृपादृष्टि उनपर नहीं होती) और उनके (पितरोंके) कोपसे पुत्र-पौत्रादिकी भी दुर्गति होती है ॥ ४ ॥ प्रेतक्रियाके

बिना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इतरजनोंको भी चाण्डालके समान जानना चाहिये ॥ ५ ॥

प्रेतकल्पमिदं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः । उभौ तौ पापनिर्मुक्तौ दुर्गतिं नैव गच्छतः ॥ ६ ॥
मातापित्रोश्च मरणे सौपर्णं शृणुते तु यः । पितरौ मुक्तिमापन्नौ सुतः संततिमान् भवेत् ॥ ७ ॥
न श्रुतं गारुडं येन गयाश्राद्धं च नो कृतम् । वृषोत्सर्गः कृतो नैव न च मासिकवार्षिके ॥ ८ ॥
स कथं कथ्यते पुत्रः कथं मुच्येत् ऋणत्रयात् । मातरं पितरं चैव कथं तारयितुं क्षमः ॥ ९ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं गारुडं किल । धर्मार्थकाममोक्षाणां दायकं दुःखनाशनम् ॥ १० ॥
पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् । शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि ॥ ११ ॥
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियः पृथिवीं लभेत् । वैश्यो धनिकतामेति शूद्रः शुद्ध्यति पातकात् ॥ १२ ॥

जो इस पुण्यप्रद प्रेतकल्पको सुनता और सुनाता है—वे दोनों ही पापसे मुक्त होकर दुर्गतिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ माता और पिताके मरणमें जो पुत्र गरुडपुराण सुनता है, उसके माता-पिताकी मुक्ति होती है और पुत्रको संततिकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ जिस पुत्रने (माता-पिताकी मृत्यु होनेके अनन्तर) गरुडपुराणका श्रवण नहीं किया, गयाश्राद्ध नहीं किया, वृषोत्सर्ग नहीं किया, मासिक तथा वार्षिक श्राद्ध नहीं किया, वह कैसे पुत्र कहा जा सकता है और ऋणत्रयसे उसे कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है और वह पुत्र माता-पिताको तारनेमें कैसे समर्थ हो सकता है ? ॥ ८-९ ॥ इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंको करके धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयको देनेवाले तथा सर्वविध दुःखका विनाश करनेवाले

गरुडपुराणको अवश्य सुनना चाहिये ॥ १० ॥ यह गरुडपुराण पुण्यप्रद, पवित्र तथा पापनाशक है, सुननेवालोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, अतः सदा ही इसे सुनना चाहिये ॥ ११ ॥ इस पुराणको सुनकर ब्राह्मण विद्या प्राप्त करता है, क्षत्रिय पृथिवी प्राप्त करता है, वैश्य धनाढ्य होता है और शूद्र पातकोंसे शुद्ध हो जाता है ॥ १२ ॥

श्रुत्वा दानानि देयानि वाचकायाखिलानि च। पूर्वोक्तशयनादीनि नान्यथा सफलं भवेत्॥ १३ ॥
पुराणं पूजयेत् पूर्वं वाचकं तदनन्तरम्। वस्त्रालङ्कारगोदानैर्दक्षिणाभिश्च सादरम्॥ १४ ॥
अन्नैश्च हेमदानैश्च भूमिदानैश्च भूरिभिः। पूजयेद्वाचकं भक्त्या बहुपुण्यफलाप्तये॥ १५ ॥
वाचकस्यार्चनेनैव पूजितोऽहं न संशयः। सन्तुष्टे तुष्टितां यामि वाचके नात्र संशयः॥ १६ ॥

॥ इति गरुडपुराणश्रवणफलं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीगरुडपुराणं समाप्तम् ॥



इस गरुडपुराणको सुनकर सुनानेवाले आचार्यको पूर्वोक्त शय्यादानादि सम्पूर्ण दान देने चाहिये, अन्यथा इसका श्रवण फलदायक नहीं होता ॥ १३ ॥ पहले पुराणकी पूजा करनी चाहिये तदनन्तर वस्त्र, अलङ्कार, गोदान और दक्षिणा आदि देकर आदरपूर्वक वाचककी पूजा करनी चाहिये ॥ १४ ॥ प्रचुर पुण्यफलकी प्राप्तिके लिये प्रभूत अन्न, स्वर्ण और भूमिदानके द्वारा श्रद्धाभक्तिपूर्वक वाचककी पूजा करनी चाहिये। वाचककी

पूजासे ही मेरी पूजा हो जाती है, इसमें संशय नहीं और वाचकके संतुष्ट होनेपर मैं भी संतुष्ट हो जाता हूँ, इसमें भी कोई संशय नहीं ॥ १५-१६ ॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके श्रवणका फल सम्पूर्ण हुआ ॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराण (सारोद्धार) सम्पूर्ण हुआ ॥

